

483034

महामहोपाध्याय सार्त श्रीरवनन्दन भट्टाचार्य कतम्।

एकादशी तत्त्वम्।

- 20-1/22

योगधामोहन गोस्थामि-विरचित टीकासमैतम्। चुँचुड़ा-विखनाय चतुष्पाठीस्थाध्यापक

श्रीहरिनाय स्मृतिभूषणेन

संगोधितम्।

COMPILED

यो हरिनाय स्मृतिभूषणेन, योनिवारण भट्टाचार्येण च प्रकाशितम्।

• इग्लि

विधीदय यन्त्रे यीकाशीनाथ भहाचार्थिय

मुद्रितम्।

शकाव्दाः १८१६।

224,76



भू त्यमेकमुद्रा।

पुस्तक पर सर्व मकार की निशानियां लगाना वर्जित है। कोई महाशय १९ दिन से अधिक देर तक पुस्तक अपने पास नहीं रख सकता। अधिक देर तक रखने के लिये पुनः आज्ञा मास करनी चाहिये। महामहोपाध्याय स्नार्त श्रीरष्ठनन्दन भट्टाचार्यंकतम्।

एकारशी तत्वम्।

श्रीराधासोहन गोखासि-विरचित टीकासमितम्। जुँचुड़ा-विखनाय चतुष्पाठीस्थाध्यापक

श्रीहरिनाय स्मृतिभूषणेन

संगोधितम्।

2/8/

ञ्जी हरिनाय स्मृतिभूषणेन, श्रीनिवारण भट्टाचार्य्यणच् प्रकाशितम्।

हग्नि Initial

वुधोदय यन्त्रे

श्रीकाशीनाय भहावार्थेष

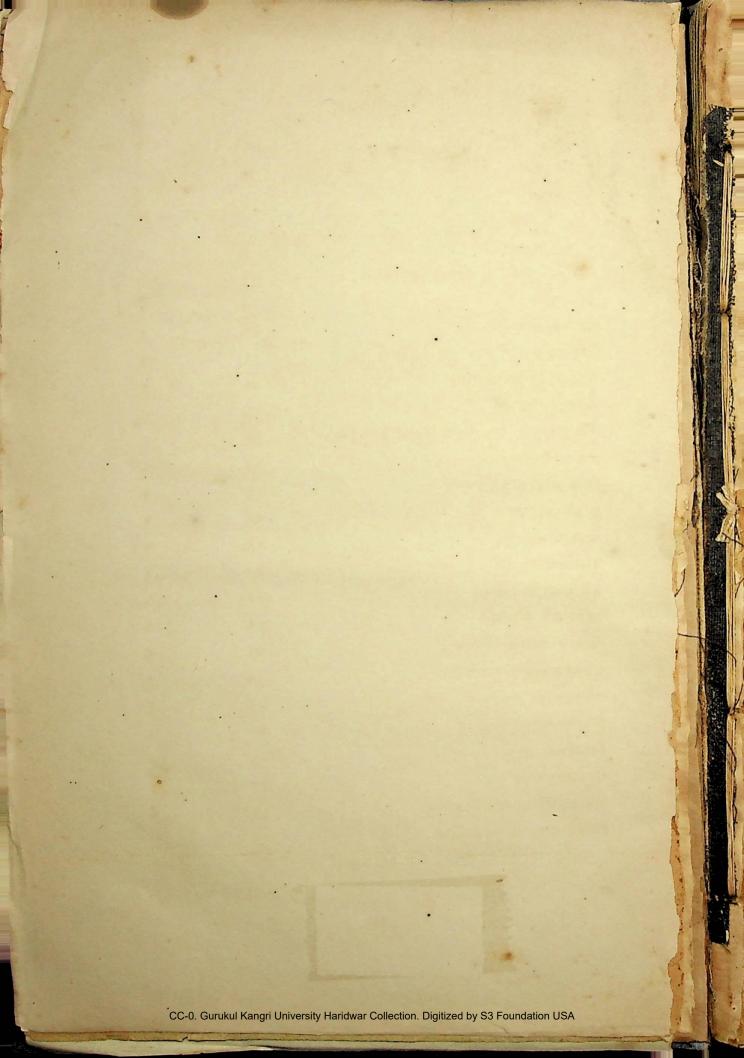
सुद्रितम्।

शकाव्दा १८१६।

1894

मूल्यमेकामुद्रा।





सूची पत्रम्।

| एकादशीतस्य निर्धग्रः | पृष्ठा | पंति |
|--|--------------|---|
| भं ङ्गलाचरणम् | The state of | The last |
| प्रतिज्ञा | · 351 | 8 |
| एकादशी-व्रतं | 8 | 10 10 10 |
| कलञ्जाधिकरणं | THE STATE OF | 2 |
| संज्ञान्ते: पुरखकाले विधिवत्प्रतिषेधनं | 6,9 | 3 |
| व्रत-लच्चणं | 22 | 8 |
| ग्रहसम्मार्जनन्यायः | 29 | 8 |
| वैदिवकभीमाचे नारायण नमस्कार सार्णे | ३५ | १५ |
| साङ्गार्थं विष्णुनामादिकीर्त्तनं | ₹€ | 2 |
| अ च्छिद्रावधारणं | ₹É | 2 |
| वैदिककमीण प्रथमतः ॐ तत्सदिति निर्देशः | ₹£ | 99 |
| सङ्जल्पविषयो व्रतम् | 88 | ٤ |
| नित्य-कास्यैकादभी वतम् | 38 | ą |
| विषिणादविषय: | H. | ¥ |
| उपवास-समन्वयः | प्र | 6 |
| दयादिलचणानि | ५ २ | É |
| वर्ते गन्धादि-वर्ज्जं मम् | पू ३ | 3 |
| ऋती वर्त स्त्रीगमनं | ųų | ¥ |
| श्राबाहे स्त्रीगमननिषेध: | पृ ह | ą |
| प्रयस्तस्तार्थं चतुर्धाहत्यागः | цо | 9 |
| एकादशीभोजन निन्दा | पूद | 2 |
| नित्यत्व साधवंनित्यादि | ye | 2 |
| विश्वजिद्याय: | ye | 90 |
| यावज्जीवन्याय: | 44 | -9 |
| त्रश्ती मनसा कर्मानुष्ठानम् | 44 | • |
| नित्यक्रमीणः पापच्यादिकं | Ø3 | 2 |
| | 1958 | A STATE OF |

| एकादगी व्रतफलम् | ७६ | . 8 |
|---|-------|------|
| रात्रिसचन्यायः | . 00 | ₹ |
| संयोग पृथक्तवन्यायः | E6 . | 8 |
| वृद्धियाड स्य नित्यता एकस्य नित्यत्वकास्यत्वे च | EE | 8 |
| योषित्या दविवेचनम् | ٤٤ | 9 |
| उपवासाधिकारिण: | وت | ¥ |
| क्षणीकादथ्यां सपुच्च-वैष्णवानामधिकारः | १०६ | ¥ |
| वैषाव-लचग्रम् | . ,, | |
| नित्योपवासे रव्यादि-दोषाभावः | १०८ | 88 |
| सप्तवारेषूपवासः | 888 | ₹ |
| उपवासे पित्रशेषाघाणम् | " | €. |
| पृर्भ तिथि खरूपम् | ११२ | ₹ |
| पूर्ची कादम्युपवासः | 888 | 80 |
| विस्मृश्वेकादशी | १२३ | 9 |
| दशमीविडैकादशी नोपोष्या | १२५ | १३ |
| एकादशी-संचेप: | 88€ | 80 |
| द्रम्भी नियमः | 683 | ą |
| एकादशी-नियम: | 682 | १५. |
| संङ्गला: | १५० | 8 \$ |
| त्रीग्रपृजा-विवेचनम् | १५२ | 3 |
| षट्तिंग्रदुपचारादि | १५३ | ₹ |
| जपपर्वि निरूपग्रम् | 850 | 90 |
| हादगी नियमाः | १८७ | 66 |
| उपवास-समर्पण्यम् | 0.39 | É |
| पारणाकाल: | ,, | 80 |
| सङ्ग्टे जलपारणम् | - 8€€ | , |
| तुलसी-महिमा | 835 | २ |
| क्ट्राच-धारणम् | ,, | 5.5 |
| खदत्तदेवनैविद्यभ चगम् | १६५ | ₹ |

| स्त्रियाः श्राद्वपिग्डादनम् | १८५ | = |
|-------------------------------|------------|-----|
| क्पादित्यागयागता | ₹08 | |
| कूपादी त्य तुरुपयीगः | " | 2 |
| रजस्र ला-स्तिकनोर्वतम् | ₹.0€ | • |
| उपवासानुकल्प: | 209 | 15 |
| जह न्य वस्य । | 305 | . 3 |
| एक भक्तम् । | २२५ | 8 |
| नत्तम् | २२६ | . 3 |
| ह्रविष्य द्रव्य-निर्मा य: | " | 3.0 |
| स्विन्धान्यस्य भच्चतम् | २२७ | 8 |
| प्रातिनिध्य-विवेचनम् | २ ३० | 20 |
| चान्द्रायणादी ग्रास-परिसंख्या | २४२ | = |
| प्रारणा-नियमः | ₹88 | ₹ |
| जलपानिऽप्रजानम्भी | 28% | 4 |
| <u>भ्यनादिव्यवस्था</u> | २४६ | 11 |

| project of a religion | 131 | 39 |
|--|-------|------|
| gorfennana. | 8 . 9 | , |
| mispasto ring | | 3 |
| महायाना मान्या वर्षा | | |
| (महामान्या) | 0.03 | 0.7 |
| Lank he A. F. | 5.9 | 4 |
| ршини | MFF | H |
| THE RESERVE THE PARTY OF THE PA | 977 | 3 |
| प्रायम हम्प्राणियाः | | 0.7 |
| | ese | |
| व्यक्तिमध्य-विवेचनस् | | sed. |
| जानावानी पास पविसंदा | 688 | 7 |
| प्रसार्थनाम्बर्स | 888 | |
| | X82. | 2 |
| | 515 | 3.9 |

एकादशी तत्वम्।

प्रणस्य सचिदानन्दं परमात्मानमी खरं। मृनीन्द्राणां स्मृतेसत्त्वं वित्त श्रीरघनन्दनः। (१) अञ्चानितिमरध्वंसिहरि-पादनखित्वं। नत्वा वच्मि तव तत्त्वमे कादशीव्रतादिषु। एकादशीव्रतं तव कलञ्चन्यायिनिर्णयः। पुण्यकालेतु संक्रान्तिर्विधवत्प्रतिष्धनं। व्रतस्य लच्चणं तव यहसस्मा-च्यां नन्तया। वैदिके कर्ममाचे तु नारायणनितस्मृती। विष्णुनामादिसाङ्गायं तथाऽच्छिद्रावधारणं। ॐ-तत्स-दितिनिर्देणः कर्मणां प्राग्भवेद्वतं। सङ्ख्यविषयो निय्यं कास्यञ्चेकादशीव्रतं। दिष्ठशाहस्य विषय उपवास-

ॐ हरये नमः। भवेऽस्मिन् कान्तारे सुहरटनदुःखेकविकलः, समीहे संलब्धं तव चरणपायोज ग्ररणं। न योगोज्ञानंवा भजनमिष वा यद्यपि हरे, तथाप्याग्रादीर्घा तव च करुणा किं न कुरुते। वन्दे श्रीकृष्णमानन्द्यनं परममीखरं। राधा खर्णलता सङ्गतमालरुचिविग्रहं। श्रीराधामोहनोदीपं करोति ग्रभदर्भनं। एकादश्यादितत्त्वानां पूर्वाचार्यभतेच्यां। ग्रम्थारभे विन्नविघाताय मङ्गलमाचरन् श्रिष्यश्चिचाये निवन्नाति प्रणम्येत्यादि। संश्वामी चिच्चासावानन्दश्चेति व्रात्पत्या सचिदानन्दश्चेन नित्यो ज्ञानस्कृष श्वानन्दस्कृष्य यस्तमित्यर्थों लभ्यते। हैतवादिनस्त

समन्वयः। द्यादिलकणान्यत्र व्रते गमादिवर्जनं। क्ती व्रते स्रोगामित्वं याद्वाहे न च तद्भवेत्। चतुर्याहे परित्यागः प्रयस्तमुतकाङ्गिणः। एकाद्योभोजने तु निन्दा नित्यत्वसाधकं। नियं सदादि विश्वजिद्यावज्जीवन्यो तथा। यणकौ मनसा कम्म नित्यात् पापचयादिकं। एकाद्योद्वतफलं राचिसत्रनयस्त्याः। न्यायः संयोगपार्थक्यं दृष्टियाद्वस्य नित्यता। एकस्य नित्यकाम्यत्वे योषित्याद्वविचनं। उपवासाधिकारी च कृष्णायामधिकारिता। वेषावानां सप्रसाणां तत्र वेषावच्चां। नित्योववासे स्व्यादिदोषाभाव उपोषणं। सप्तवच्चां। नित्योववासे स्व्यादिदोषाभाव उपोषणं। सप्तवच्चां। नित्योववासे स्व्यादिदोषाभाव उपोषणं। सप्तवच्चां प्रमित्याद्वेयः प्रित्योव उपोषणं। सप्तवच्चां प्रमित्याद्वेयः प्रमित्वयाद्वेयः प्रमित्वयाद्वेषः प्रमित्वयाद्वेयः प्रमित्वयाद्वेयाः प्रमित्वयाद्वेयः विच्याद्वेयः प्रमित्वयाद्वेयः प्रमित्वयाद्वेयः प्रमित्वयाद्वेयः प्रमित्वयाद्वेयः प्रमित्वयाद्वयाद्वेयः प्रमित्वयाद्वेयः प्रमित्वयाद्वेयः प्रमित्वयाद्वेयः प्रमित्वयाद्वेयः प्रमित्वयाद

सन्ती चिदानन्दी यस्येति विग्रहं वर्णयन्ति । परमात्मानं सर्व्यान्तिशास्म ईश्वरं जगन्त्रसादिकारणं । सनीन्द्राणामिति वहुवचन सरणात् स्नृतिश्वित्र एकवचनार्थांऽविवित्तित्ते न सुनीन्द्रकतस्मृतिवचनानामित्वर्थः सकल् स्मृतिर्यास्थातत्वात् स्नृतिपदस्य स्नृतिवचनपरत्वात् । तत्र स्मृतिर्धं में संहिता, घर्मः प्रयोजन्त्रवार्थं विवचनसस्मृहात्मको थय्थ इति यावत् । धर्मः प्रयोजन्त्रत्वं साचात् परम्परया ग्राष्टं तेन पापार्थंक तद्वचनानां प्रायिश्वत्ताद्यर्थंक वचनानाञ्च दृष्टार्थंकानां द्वायक्षागादि वचनानाञ्च संग्रहः । तथाहि नरकादि साधनतया पापकम् यवणात् ततो निव्हित्तभंवित,पायिश्वत्तादिना च संजात, पापानां विनाशस्त्रतो निष्पापतया ज्ञानादिसाधनता सहकारेणज्ञानाद्यत् पत्तिरिति, एवं यथा प्रास्त्रोपात्तदायादि धनद्वारा कर्मान्तुष्टानेन विलचण धर्मोत्पत्तितिः, तेषां परम्परया धर्मार्थंकत्वं । तथाच स्मृतिः, तपसा-वित्वित्वं हन्ति विद्ययाऽस्त्रसन्त्रते, ज्ञानसत्पद्यते पुंसां चयात् पापस्य कर्मण इति । तथा याज्ञवल्कावचनं, न्यायागतधनस्त्रत्वज्ञाननिष्ठोऽतिथि प्रियः । त्याद्वत् सत्यवादी च ग्रहस्थोऽपि हि सुच्यत इति । तत्वं तात्वा प्रयाविषयीभृतमर्थं वक्तीति वचधातोः ग्रव्होऽर्थः, तत्विमित्यच द्वितीयायाः विव्वविषयीभृतमर्थं वक्तीति वचधातोः ग्रव्होऽर्थः, तत्विमित्यच द्वितीयायाः

पृणैंकादणिका तथा। विस्पृथैकादणी चैव दणस्यासंयुता सदा। नोपोष्या तासु संचेपोदणमी नियमास्तथा। एका-द्रग्याञ्च सङ्कल्पः श्रीणपूजा विवेचनं। षट्विंणदुपचारादि जपपर्व्वनिरूपणं। हादणीनियमास्तहदुपवास-समर्पणं। पारणायास्तथा कालः सङ्कटे जलपारणं। तुलसीमहिमा तव तथा कट्राचधारणं। खदत्तदेवनैवेद्याद्युपयोगः स्वियास्तथा। श्राह्विग्रहादनन्तव क्रुपादित्याग्यागता। त्यतुस्तवोपयोगञ्च रजः सूत्रकिनोर्द्रतं। उपवासानुकल्पञ्च

व्यापारानुवन्धिविषयित्वमर्थः, भाख्यातस्य क्वति भविष्यत्सामीप्यरूप वर्तमानत्वञ्चार्यः, भविष्यत् सामीप्यञ्चान्यविष्ठतीत्तरत्वं। यहा वचधाती-निंरूपणमर्थः, निरूपणं ज्ञानानुकूलशब्दः, विषयित्वं द्वितीयार्थः, तस्य धात्व-र्थस्यैकदेशे ज्ञानेऽन्वयः। तेन स्मृतितत्त्वविषयकग्रन्दानुसूला व्यवहितोत्तर क्तिमान्, स्मृतितत्त्वविषयकज्ञानानुकूलग्रव्दानुकूलाव्यवहितीत्तर क्रति-सान् वा खीरघुनन्दन इत्यर्थः। यद्यि पूर्वं मङ्गलाचरणं सातितत्वनिकः यणप्रतिज्ञानच कतं तथापि विष्नवाहत्यग्रङ्गया पुनर्साङ्गलाचरणं, पुनः प्रतिज्ञा च एकादगीतत्वनिरूपण्यत्यस्य स्मृतितत्त्वनिरूपण् ग्रत्थान्तर्भतत्व-जापनेन स्मृतितत्त्वअवणेच्छोः शिष्यस्य एकादगीतत्त्वअवणप्रवर्त्तनाय। ननु, इत्यष्टाविंशतिस्थाने तत्त्वं वन्तामि यह्नत इति सन्तमासतत्त्वारसे प्रतिज्ञातलारेकादशीतत्वस्य स्मृतितत्त्वान्तर्गतत्वं पूर्वे ज्ञातमेवेतिचेत् ; तथापि प्राक् प्रतिज्ञातं यत्स्मृतितत्त्वान्तर्गतमेकादभीतत्त्वं तदेवेदानीं निरुष्यत इति ज्ञायनार्थं पुनः प्रतिज्ञाचरणसिति । (१) अज्ञानेति अज्ञानं मिथाज्ञानमात्मनो देहायभिमानक्ष्पं, वेदान्तसम्पता माया वा तदेव-तिमिरं तहुंसिलं हरिपादनखिलां ध्यानादियोगेन, लिट्पदेन प्रवा-ग्कतासाम्येन ज्ञानं वा लच्यते, एतेन हरिचरणध्यानादि, संसारमूला-ज्ञाननिरसनदारा मोचार्धमवश्यं कर्तव्यं स्मृतितत्त्वज्ञानमपि चित्त श्रुद्धरादिद्वारा इरिभजनानुकू खेन ज्ञानसाधनद्वारा सी चार्यसिति प्रयी-जनञ्च दर्भितं । अतएव पुनः पुनरेव क्षण्यणासः क्षतः । अन्यत् कलञ्चा- तथैवोच्च्यवस्थितिः। एकभक्तं तथा नक्तं चिव्यद्रव्य-निर्णयः। खिद्मधान्यस्य भन्यत्वं प्रातिनिध्यविवेचनं। चान्द्रायणादौ यासानां परिसंख्याच्यवस्थितिः। पारणा-नियमः पानित्वपासनणनाणनं। व्यवस्था णयनादीनां संकथ्यन्ते जगत्पतेः। (२)

अथैकादगीव्रतं। तत्र वराहपुराणं। एकादग्यां निरा-हारो यो भुङ्को हादगीदिने। शुक्को वा यदि वा क्षणो

धिकरणन्यायादिकं प्रसङ्गतः, प्रसङ्गसङ्गतिरस्य एकादशीतत्वेष्यन्वयः। सलमासादि व्यवहारतत्त्वादिग्रयोन कतिपयधर्मातत्त्वे व्यवहारतत्त्वे च ज्ञाते तदुत्कर्षसम्बर्धन स्मृतस्यैकादग्रीतत्त्वस्य निरूपणादिति भावः। यदापि यज्ञानितिमिरध्वंसित्वं हरेरवयवमात्रस्य तथापि भक्त्यातिश्येन पादनखे-त्युतं, प्रण्म्येत्यव नत्यर्थः खापकर्षवोधकव्यापारः प्रशब्देन भक्तियदाति-श्ययुत्तत्वं योत्यते स्वपदं कर्नृपरं भवकर्षश्च भयमसादपक्षष्ट इति प्रतीति-साचिकोऽविधिमान् गुणविशेषः विशेषत्वच वैजात्यं, एवच्चापकर्षस्यावधि-म लेग तदन्वितावधिताययवाचक कर्मापदमाकाङ्गं स्वापकर्ववोधक व्यापा-रार्थकक्रियापदं, तत्याविधलं डितीयार्थः, तस्य निरूपकलमस्वन्धेन धाल-र्थताव च्छेदक घटकापका वें उन्वयात् निक्तो खर निष्ठाविधल निक्ष्यक स्वाप-कर्षवीधक व्यापारांनन्तरं खसमान कर्त्तकेकादग्रीतत्त्वनिरूपणानुकूल क्षतिमान् श्रीरघुनन्दन इति वोधः पर्यवसितः । एतेन धात्वर्घतावच्छेदक-क्रियाजन्य फलस्य स्वापकर्षवीधस्य पुरुषान्तरिष्ठत्वेन तस्य कर्माता-पत्तिरिति निरस्तं। नत्यर्धकधातुः व्युत्पत्तिवै च च्यादिति संचेपः। प्रतिषेधनं प्रतिषेधः। तत्र व्रतलचणप्रसङ्गे यहसम्पार्ज्ञनं यहसम्पा-र्ज्जनन्याय:। नित स्मृती कर्त्तव्ये तत्र स्मृतिर्घ्यानं विष्णुनामानि उचा-र्थानि संकल्पविषयो व्रतमिति लच्च । एकादशीव्रतमेकादश्युपवासव्रतं निखं काम्य इ संकथन्ते सम्यक्तिचारेण निरूपन्ते। (२) भ्रयैकादशी-व्रतमिति यथगव्द यानन्तय्यार्थः, व्यवहारतत्त्वनिरूपणानन्तरमिति पर्थ-एकादशीपदमेकादश्युपवासपरं तदालकं व्रतमिति सम्-विसतं।

तद्वतं वैषावं महत्। महत्त्वमाह। यदीक्छे दिषाुनावासं पुलसम्पदमात्मनः। एकाद्य्यां न भुद्धीत पचयोक्षभयो-रिष। एतदिद्वन् सुघोराणि हन्ति पावानि पार्धिव। यो ग्रहीत्वा वतं मोहादेकादशीदिने नरः। न समा-पयते तस्य गतिः पाषीयसी भवेत्। अव, एकाद्य्यां प्रकुर्वन्ति उपवासं मनीषिण द्वति भविष्यपुराणे उपवासपदाद्विराहारपदं नेकादशीकालमावाभोजनपरं,

दितार्थः, निरूप्यत इति पूरणीयं एतादृश प्रतिज्ञाफलं, शिष्यावधानं अववानच शिष्यग्रसूषा। तचे ति तत्पदं एकादशीव्रतपरं वोधकतुं सप्तस्यर्थः, तस्य वराहपुराणिऽन्वयः तद्वतिमिति तस्य व्रतं भवति निराहारतुमेव व्रतं भवतीत्यर्थः। यदीच्छेदिति तथाच विशालो-कवासादि पुर्खननकलं सुघोरपापवहुलनाशकलच्च सहस्विमित्यर्थः। ग्ट हीत्वा यारभ्य संकल्पेरित यावत्, यारमी वरणं यज्ञे संकल्पी व्रतजाप-योरिति वचनात्। न समापयते चरमकालपर्यन्तं नाचरतीत्वर्धः। एतच निरित्रयपापाय अजतमंत्रत्यस्यायेकादशीव्रतानाचरणे पाप-यवणात्। यदा गृहीला धारभ्य न समापयते दादशीदिनक्कत्य पोरणा-दिकं न कुर्यादिति। निराहारपदिमिति, एकादस्यामिति वाक्यसहकारे-णिति श्रेयः, तद्युक्तेति एकाद्शीयुक्तदिनसम्बन्ध्य हीराचाभीजनपरमित्यर्थः। एतेनैकादस्या यव दिवसमावसम्बन्धो न तु राची तव तयुक्तत्वस्याही-रानेऽसलेपि न चितिः। एकाइग्रीदिनसम्बन्धिलमेकादृश्यासिल्यनेन लभ्यते, तदन्वययाचीराचाभीजने, इत्येकादशीयुक्तदिने उपवासलाभ इति, तत्रैव यहोरात्राभोक्षन एव, लचणापसङ्गात् स्वारसिकलचणा प्रसङ्गात्, उपवासपरत्वे उपवासवत् परत्वे, न लचणा न खारसिकलचणा किन्तु निरूद्वचिषयर्थः निरूद्वच यनादिप्रयोगसिष्ववेन यक्ति-तुल्यतं, सामान्यशब्दश्य सामान्यधर्माविच्छत्रशक्तपदस्य विशेष तात्-पर्य्यकलात् विभेषधभाविच्छन्नेतात्पर्ययाहकनिकदलचणया विभेष-धर्माावच्छिन्भोधकालात्। नास्त्याहारो यस्थेति वियहवाक्येन निरा-

किन्तु तद्युक्ताहोराचाभोजनपरं तचैवोपवासपद्व्यवहा-रात्। न च वैपरीत्यं उपवासपदस्याहाराभावमाचपरत्वे लचणाप्रसङ्गात्। निराहारपदस्योपवासपरत्वे तु न लचणा सामान्यशाससा विशेषतात्पर्ध्यकत्वात्। तथाच कात्यायनः। नित्योपवासी यो मर्च्यः सायं प्रातर्भुजि-क्रियां। सन्यजन्मतिमान् विप्रः संप्राप्ते हरिवासरे। सायंप्रातरिति राचिदिवोपलचणं। सुनिभिर्द्धिरणनं-

हारपदं याहाराभाववत्परं समस्तपदस्य विशिष्टार्थे शक्तिस्वीकाराद-पवासपरत्वञ्च, निराहारत्वंविशेषधर्म इत्यग्रे व्यत्ती भविष्यति, समस्त पदस्य मित्रस्वीकारे तस्य पदलस्वीकार एव वीजं। तदस्वीका-रेतु निराहारपद्घटकानिर्पद्खाहाराभाववति निरूढलच्णास्वीकारात् समासस्य च ताद्यार्थतात्पर्यपाहकालं सामान्यधमीविच्छने निरूद-ल तकपदस्य विशेषधभाविक्छ बेऽपि ल चणाया निरूद्वात्। नच निराहारपदस्य उपवासपरलेऽपि एकादशीपदस्य तसुक्रादिनपरत्वा वश्यकले एकादगीयुक्तदिनसाले निराहारलान्वये ग्रर्थवग्रहम्पन एव उपवासलाभ इति, कथं निराहारपदस्य उपनास परत्विमिति वाचां, केवल निराहारतस्य व्रतताभावेन तत्व्रतं वैषावं भहदित्युक्तवाधापत्ते। एकादगीयुक्तदिने उपवासं कुर्यात्, याहारं वर्ज्जयदिति विधिद्वय कल्प-नापत्तेय, नचैकादशीपदस्य तद्युक्तदिनपरत्वे तस्प्रतिऽपि लच्चणित वाच्यं, गुण्याचक गुक्तादिपदस्य गुण्पिरत्ववत् एकादगीवाचकपदस्य तदाको ल व गाया निरुद्धात्। यदा निराहारपदं निराहारपदघटकासार पदं, उपवासवरं उपवासवटकाहोरातावच्छित्रभोजनद्यपरं, एवञ्चाहारपदं सामान्य ग्रदंतस्य विशेषपरत्वं यहोरावाविच्छित्रभोजनद्वयपरत्वं स्फुटमिति। ननु उपवासपदस्य निराहार एव शक्ताः, नत्व होरावाविक्शन भोजनाभावेः इ.खतोऽहोरात्राविच्छ बभोजनाभावपरत्वमुपवासपदस्याह,तथाचेति,नित्यो-पवासी सायं पातर्भिजिक्रियां वर्ज्जयिदित्यन्थये य इति पटवैयर्थं उपवास-पदस्य सायं प्रातभीजनाभावपरले उद्देश्यताव च्छेदकाविधययोरेक्येनगाव्द

प्रोत्तं विप्राणां सर्च्यवासिनां नियं। यहनि च तथा
तमिक्नां सार्द्वप्रह्मानात्ति क्रन्दोगपरिणिधेकवाक्यत्वात्। यतएव खण्डतियेरव्यहोरावत्वकीर्त्तनं यहोरावसाध्यक्रमाङ्गत्वायं। तथाच विकाधस्मित्तरे। सा
तिथिस्तदहोराचं यस्यामस्युदितोरिवः। तथा कर्म्माणि
कुर्व्वीत हासव्वी न कारणं। सा तिथिस्तदहोरावं
यस्यामस्तमितोरिवः। तथा कर्म्माणि कुर्व्वीत हासविधी न कारणं। शुक्रपचे तिथिर्याद्या यस्यामस्युदितोरिवः। कुष्णपचे तिथिर्याद्या यस्यामस्तमितोरिवः।
तच तिथ्यन्तरसहायभावं विना प्रायो न सस्भवति यतएव

वीधानुपपत्तिश्रेत्यतः संप्राप्ते हिर्विसरे यो. मर्च्या मरणधर्मकोऽतएव मतिमान् प्रेचावान् विष्ठः सायं प्रातर्भुजिक्रियां वर्जयेत् स नित्वीपवासीत्व-न्वयः, यत्पदात्तत्पदाध्याहारः यत्तत्पदानुक्ती सायंप्रातर्भुजिक्रियां वर्ज्जये-दिप्रो निलोपवासीत्यन्वयो न सम्भवति, ऋाख्यातार्थस्य धर्मितावकेदक विध-यान्वये व्युत्पत्तिविरोधात्, सं नित्योपवासीतात्र तत्पदस्वैकादस्वविस्त्र सायं प्रातमांजनाभाववत्परत्वमुपवासपदञ्जोपवासपदार्थपरं एकादस्य विच्छित्र सायं प्रातमीजनाभाव विशिष्टे नित्योपवासपदार्थवतोऽभेदान्द्ये उदेश्यतावच्छेदके ताद्यभोजनामावे विषयतावच्छेदकस्य नित्रीदवास पदार्थस्याभेदान्वयः, एकविशिष्टेऽपरविशिष्टान्वये तथा व्युत्पत्तेरीत्सर्गिक-त्वात्, तत्र चैकाद्यविच्छन्न सायं प्रातभीजनाभावत्वे प्रत्यवाय जनकीभूता भाव प्रतियोगित्वरूप नित्यत्वस्थाव च्हेदकतापर्याप्तिः, धर्मिताव च्हेदक पारतन्त्रेण भासते, तथैकोपवासपदार्थतावच्छेदकलं एकाद्यवच्छिन्नलोप-लचिते सायं पातभौजनाभावलमाचे भासते तथा व्युत्पत्ते: सिडान्त सिद्धतात्। तथाच सायं पातभींजनाभाकताविक्वत्रस्य उपवासपदार्थत्वं प्रमाणसिडमिति। संप्राप्ते दशमीविधादिरचिते चरिवासरे एकादशी दादश्यन्यतरयुक्तदिने, एकादशीमुपवसेत् दादशीमथवा पुनः, विभिन्नां- ग्रह्मपरिणिष्टे युग्मानीक्षभिधाय तिथ्योर्थुग्मं सहामल-सित्युक्तं यस्य प्रयोजनन्तु तिथिः एग्छ विशेष नियमनं। खितिथ्या कर्म्मानिर्व्यां सहायभावेनान्य तिथ्यनुप्रविशेना-होरा यसाध्योपवासायाचरणञ्च। एवञ्च प्रातः काले तिन-ध्यलाभे तिथान्तरे प्रयुपवाससङ्ख्यः यहोरा याभोजन-कृषस्य तस्य प्रातरारक्षाईत्वात्। संवत्सरप्रदीपेऽपि प्रातः सन्ध्यां ततः क्रत्वा सङ्ख्यं वुध याचरे दिख्युक्तं। यत्र कर्म्मणस्तावदपूर्व्यजनकत्वेन विधेयत्वेन च प्राधान्यं। तिथ्यादे गुण्यत्वेन क्रचिद्यलचणत्वमा ह गर्गः। तिथिनच्च न वारादि साधनं पुण्यपाययोः। प्रधानगुणभावेन स्वातन्त्रे गण् न ते चमा द्रति प्रधानस्य विधेय कर्म्मणो गुणभावेनाङ्गत्वेन, एवञ्च निराहारप्रदस्योपवासपरत्वेन कलञ्जाधिकरणन्या-

वापि कुर्ळीत न दमस्यायुतां कचिदित्यादि वच्चमाणवचनात्। राचिदिवोपलचणं राविदिनपरं सार्डप्रहरयामान्तरित्यनेन राचेः प्रमुहूर्तानन्तरं
महानिमात्वेन भोजनिषेयः, भत्रपव सर्ज्वेत्र वचने एकादमीपदस्यैका
दमीयुक्तदिन परत्वादेव। सा मूर्य्योदयसम्बन्धिनी तिथिः तिथिविहित
कार्य्योपयोगिनी, एतच पूजाद्यभिपायेण भ्रहोराचं भ्रहोराव्यापतुत्या
एतचाहोराव्रसाध्योपवासयोग्यत्वाय, तत्तदिहितिधिवोधकपदानां तत्तद्वागयुक्तदिनपत्व ग्राहकं, हृ।सहबी तिथः स्वत्यकात्तसम्बन्ध वह काल
सम्बन्धी भ्रमावस्यास्थलवत्तत्तिथिच्यष्टि न कारणं न कर्माणि
नियामको, वेदाःप्रमाणिमितिवदेकत्वाविवच्याकारणिमत्येकवचननिर्देशः
तिष्योर्थममिति एतयोरित्यर्थः युग्मं योगः, महाफलं तत्तिथिद्वयविहित कर्माजन्यपरमापूर्वसाधनं एतत्पदेन युग्मादिपदाहत्या वा तत्ततिथिद्वय परामर्थः। युग्मक्रमेण तत्तिविधिक्रिति, युग्माक्नीत्यादि,
तच युग्मच भ्रम्ब युग्माग्नी क्रतस्व भूतच क्रतभूते युग्माग्नीच क्रतभूतेच
युग्माग्निकतस्रतानीति विग्रहेण युग्मदयलामः। भ्रपूर्वजनकत्वेन

याज्ञैकारणीचणसतिवाह्य भोजनं किन्वेकारध्यासिति विहितेकारणीयुक्ताहोराचाधिकरणपरं। (३) यथ कलझा-धिकरणं। तच युति:, नकलझं भचयेरिति, कलझभचणा-

य्यूर्वदारा फलजनकालेन प्राधान्यं साचादपेचणीयलं, यन्यया फलासावः स्थादितिभावः। गुणलेनसाचादसाधनलेसित साधनलेन साधनतावच्छेदक्वच्याक्व नेति यावत्। कचिदुपवासादिस्यने पूजादेस्तियाखण्डेऽपि समाप्ति संभवतिवोपलचणतां, उपवासादेस्तवासम्भवादेवीपलचणलकस्पना-दितिभावः। उपलचणलं कथ्रकालाव्यापकाले सित कसीकालहित्तलं। यहलेन प्रधानजन्यफले परम्परया उपयोगिलेन, तथाच तिथिपदं कचित्तिथियुक्तदिनपरिमितिसावः। (३)

अधिक्रियते विचारविषयीक्रियते यत्तद्धिकरणं, त्वाङ्गानि पञ्च, ययाह भट्टः, विषयो विश्रयसैव पूर्वपन्नस्तयोत्तरं। निर्णयसित पञ्चाङ शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतं। अत्र यसधिक्षत्यं विचारः सविषयः, तत्रविप्रतिपच्या संगयो विगय:, विरोधिवादिनी सतं पूर्व्वपचः, वादिनिरासकवान्यमुत्तरं त राप्रामा एवं रंगयनिराधिनी पशंहारी निर्णय:। न कलं सं भचें येदिति चुति:, खर्गकासीयजेत, इत्यादी लिङ्ग्यस्य कार्यस्य यागादावन्वये याग इष्टमाधनताज्ञानं योग्यता-ज्ञानविधया हेतु-रन्वय-प्रयोजकरूपस्य योग्यतात्वात्, कार्यान्वय प्रयोजकरूपञ्च कान्यस्थले दष्टसाधनत्वं निख-भस्यावन्द्रनादी नित्यत्वं प्रत्यवायजनकीस्त्राभावप्रतियोगिलक्षं घटादी जलाहरणाद्यन्वये क्रिद्रेतरत्वसिव इष्टसाधनत्वादिरूपयोग्यता ज्ञानमपि शब्देनैव स्वीकार्थं * प्रमाणान्तरासंजिधानात्। तत्वच, इष्टसाधन-तान्वये फलपर्यन्तस्थायित्व-फलपर्यन्तस्थायित्यापारीपधायकत्वान्यतर-घीग्यता, यागे च कालान्तरभाविस्तर्गक्षपफलपर्थन्तस्थायित्वस्थाभा-वात् अपूर्वकपयापारस्य प्रागजानाच प्रथमतः स्वर्गक्षेष्टसाधन-वान्वयासभव इति, कार्य्यलेन कार्य्यलिङ:शक्तिः, कार्यविशेषेघटादी मित्रहात योग्यतावलात् विधिजन्यमाञ्द्वीधे कार्यविनापूर्वे भाषते

[ः] स्वर्गकामीयजितेत्यादी तत्तवाकाघटकपदिनैव, अन्यथा तादृशेष्टसाधनतादिरूपयोग्यताज्ञानस्यं. कृतीलाभः। नापदार्थः शान्दवीधे भाषत इति नियमादित्यभिप्रायः।

भावविषयकं कार्ध्यमित्यर्थः । तत्र कालविशेषानुवादानाः विषिध्यमानिवयायां प्रवित्तमतानिषेधविधाविधकाराद्-यावत्कालमेव तस्यां तस्य निवृत्तिः । न हि कलञ्जभचणा-

समानप्रकारलेन गाव्दवोधं प्रति गतिग्रहपदार्थोपस्थित्योर्हेत्लात्, एवज्र खर्गकामो यजेतित्यादी यागविषयकं खर्गकामकार्थिमिति प्रथ-सतोऽन्वयवोधः। तत्र कार्यं लिङ्यं स्त्रत कार्यत्वं यदि साध्यत्वंलिङ-र्यें करेगे कार्यावे निरूपितलसम्बर्धन खर्गकासाउन्ययः यदिच धर्माल-रूपकार्थ्यत्वमेव लिङ्पदार्थतावच्छेदकं लाघवात् तदा लिङ्र्यधर्भे साध्यता सम्बर्धन खर्गकामान्वयः, खर्गकामकार्थे च यागस्य जन्यता-सम्बर्धनान्वय इति, यागजन्यं खर्गकामकार्यसित्यन्यवोधः। विष-जनकार्यकत्वात् याग्विष्यकंखर्गकामकार्यमित्वभिलापः यशब्दस्य क्रियते, वस्तुतस्तु आख्यातसामान्यशक्त्या क्रातिरिप लिङोऽर्थः क्रतौ खर्गकामस्याधेयतासम्बन्धेनानुयः क्रतेय कार्ये साध्यतासम्बन्धेनानुयः। तेन खर्गकामज्ञतिसाध्यं यागविषयकं कार्यमित्यन्यः, क्षतिसाध्यत्वज्ञानं विना विधिवाक्यस्य प्रवर्त्तकानुपपत्तेः। निषेधस्यले च प्राख्यातार्घ-क्तर्तिनिविविच्ता कलञ्जभच्णाभावादी तत्कार्ये च प्रवृत्तिसाध्यतानद्गी कारात् किन्तु प्रवृत्तिमतएव साध्यतासम्बन्धेनानुय इति । अनन्तरञ्च यागविषयककार्यस्य स्वर्गकामकतिसाध्यत्वं यागे स्वर्गकामकतिसाध्यत्वं विजा अतुपपन्नसित्यनुपपत्तिज्ञानात् विधिवाक्येन यागे स्वर्गकामकतेः साध्यता सम्बर्धनानुयवोधः स च ग्रीपादानिकवोध इत्युचते, इदानीं कार्यत्वेनापूर्वीपस्थित्या स्मिपर्यन्तस्थाय्यपूर्वस्पयापारोपधायकत-ज्ञानाधीनेष्टसाधनत्वरूपयोग्यताज्ञानसभवादिति प्रभाकरसतं। त्याते निषेधवैदिकवाको न कलजं भचयदित्यादी लिङ्ग्वेकार्यो कलज-श्चणाभावस्थानुयात् कलच्चभचणाभावविषयकं कार्य्यमित्यनुयवोधो-भवति, नित्यनिषेवस्यले, तै:पण्डापूर्वस्वीकारात्, तत्य कलन्त्रभचणाभावे साध्यतासम्बद्धेन कर्त्त्रीपादानिकः शाब्दबोधः, कलन्त्रभचणाभावः प्रवृत्ति-मत्पुर्षीय इत्याकारको जायते। श्रव च कार्यतान्यप्रयोजकरूपयोग्यता. प्रत्यवायजनकप्रतियोगिकाभावत्वं तज्ज्ञानं योग्यताज्ञानत्यापे ज्ञितं

ट्यतः कुतिश्वत् कारणान्निष्टत्तस्य निषेधानुपालनं सक्तहृत्त-सिति कालञ्जभचणनिषेधो न पुनस्तं निवर्त्तयति, किन्तु

कलञ्जभन्यणाभावे तज्ज्ञाने सति कलञ्जभन्यणे जायत इति ततो निष्ठत्तिः। न च प्रक्तत्वर्धानितस्वार्धवोधकत्वं प्रत्य-यानामिरीतन्यायात् क्यं नज्याभावेन सह लिङ्येकार्थस्यान्य इति वाचं, व्युत्पत्तिवैचित्रगत् नवर्धमन्तराक्तवापि प्रक्रतिप्रत्यया-र्खयोः कचिदनुयवीधसीकारात्। न कलच्चं भच्चयेदित्वत्र कर्नुविशेषा-व्यवणात् कर्त्राकाङ्गायां प्रवित्तमान् अध्यान्नियते भचणप्रवित्तरिहतं प्रति, निषेधवैफल्यादिति। अत्र निषेधस्य सार्व्वकालिकत्वयुक्तिप्रदर्भनेन तदैल ब ए मेनाद् थां दर्भयितुमा इ तत्रेत्यादि, निषिध्यमानिक्रयायां कलञ्जभचणादी प्रवृत्तिमतः प्रवृत्तियीग्यतावतः, यथा युतार्थे निषिध्य-मानिक्रयायां प्रवत्यभावदारा तत्क्रियारिहतस्य साध्यतासम्पादनस्य बच्चमाणस्यासङ्खापत्ते:। योग्यता च न सामग्री, तत्सलेपवच्य-वय्यभावात्, किन्तु प्रवत्यसाधारणकारणं तचकार्य्यताज्ञानादि, वस्तृतस्त प्रवृत्तिपदं यथा अतमेव न हि प्रवृत्तिमात्रेण कलञ्जभचणादिनिष्यत्तिः, 🖓 किन्तु प्रहत्तिपरम्पर्या साधनसम्पत्या, तथाच भचणखरूपयोग्यप्रहत्ति-मन्तं निषेवविधिभे चणोपधायकप्रवृत्तं प्रतिरुध्य-निवर्त्तयित्वा भच्चणा-भावं सम्पाद्यति। तत्र क्रियायामिति सप्तस्या अनुकूलत्वसर्थः न त विषयत्वमनादिभचणं विषयीक्रत्व प्रवृत्तिमतो दैवात् कलञ्जभचण-निषेधादावनिधिकारापत्ते: * केचित्तु प्रहित्तमतः व्यापारवत इत्यर्धः, तेन मनसा तु प्रवृत्तस्य द्रत्यादिकारिकासङ्गतिरित्याद्यः। निषेधविधावधि-कारात् नियोज्यत्वात् निषेधवाच्याधीनकलञ्चभचणाभावे स्वकार्य्यता ज्ञान।दिसत्वादिति यावत्। यद्वा अधिकारात् निषेधाननुपालननिव-न्धनदोषव लात्,तस्यामिति निषिध्यमाणिक्रयायामित्यर्थः,निवृत्तिरप्रवृत्तिः, नहीति न निवर्त्तयतीत्यनेनानुयः, कुतिश्वत्कारणात् कलञ्जभचणादि

अद्वादिभचणं विषयीक्तलेति यच अव्वमाचभचणे प्रश्तिरिक्त न कलञ्चभचणे परन्तुः अविभिन्नतं कलञ्चं भचयित तचावभचणविषयिणौ या प्रश्तिः सा निषिध्यमानिक्तयानुकृत्वा भवित न तु निषिध्यमानिक्तयाविषया।

भचणप्रवृत्तिस्तामाचमधिकारिविशेषणं यदा यदा भवति तदा तदेव निषेधविधिरिप तं निवर्त्तयति। (४) निष्ठ कलञ्जभवणसुपक्रस्य यावत्कालं तद्वचयति, श्रतस्तदितरकाले तिव्ववृत्तिः सिद्वेविति विफलोविधिः। ननु नासीनिवृत्तिरप्रवृत्तस्य निवृत्यनुपपत्तेरिति, सत्यं प्रवृत्त्यप्राधिना विनाशं प्रास्मान् प्रागमावएव प्रवृत्तिनिराक्तरणात् साध्यमानोनिवृत्तिकच्यते, नतु प्रवृत्तिरिप

प्रवृत्त्य नुकूल-यत्किञ्चित् वस्तुविरहात्। प्रतियोगिकारणविरहस्यैवाभावः कारणत्वात्, निषेधो निषेधवाक्यं, प्रवृत्तिमत्तामात्रमितिमात्रपदेन गुचित्वा-दिख्दास: (8) न होति अन्ययेत्यर्थ:। तदितरकाले भचण।दितरकाले विफलोविधिः स्थादितिशेषः । स्त्रान्तः शङ्कते । ननु नासी निवृत्तिरिति, असी, निवृत्तिः सिडैवित्यव निवृत्तिग्रव्दार्थो न निवृत्तिः प्रयत्नविशेषः, निवृत्त्यनः पपत्तेरिति, तथाच कथं निषेधवैषाच्यसितिभावः। भ्यमं निराक्तत्य ममाथत्ते सत्यसितिप्रज्ञत्य्याधिना प्रवृत्तात्मकोपाधिना निविध्यमाण-क्रियोपधायक्रप्रस्था, प्राप्ताविति, सभावनायां स्यत्यस्ययः। तथाच प्रागभावस्य सामग्रीनाम्बतया यदिकलक्षभचणे प्रवित्तः स्थात् तदा तत्वागभावो नखेदिति सञ्चावनाविषय इत्वर्यः। यदा प्रवृत्तिकालमः पेच्य भविष्यत्वं स्यत्प्रत्ययार्थः प्रहत्युपाधिजन्यप्रहत्त्रत्तरकालीननाशी-त्पत्यायय इत्वर्धः। प्रपूर्वीपधातुना उत्पत्तिर्चते उत्पत्तेश्च प्रति-योगिताश्रयत्वमपिस्यत्वप्रत्ययार्थः, प्रवृत्तिचिटितसामग्रीनाभ्यताव्यक्टेदवः प्रागभावत्वात्रय दति यावत्, एतत् कथनञ्च प्रहत्त्यभावसाधरतायहार्थं व्यतिरेकसहचारप्रदर्भनार्थं संसर्गाभाववाचिना निषेववाकास्य-नजा निहत्तिंवोधयितुमश्कावादिति भावः, प्रहत्तिनिराकरणात् प्रहत्त्वभाव द्वारानिवृत्तिक्चते, निवृत्तिग्रव्देन प्रागभावएवी चते। तथाच निद्रादि-सहजत एव अच्णप्रागभावसत्त्वानिषेधवैपाः स्याद्यदि प्रवित्तरिविकारिविक्येषणं न स्यादिति भावः। ननु प्रवृत्तरकालीन निव्वत्तिरेव निषेववाकास्य नत्रा लल्लीया, तथाच तस्र साधातासम्बन्धेन साध्यतयोपदिश्यते किन्तु रागप्राप्तप्रवृत्तिमतएव निषध-विधावधिकारः। यत्तु, मनसा तु प्रवृत्तस्य, भूतचिष्टाव-तोपि वा। यदनागतभावस्य, वर्ज्जनं तिझवत्तनिमिति। तवापिणव्देनाप्रवृत्तमावसमुख्याञ्च विरोधः, भूतचिष्टावत इति भूतं स्मादी पिणाचादी जन्ती क्षीवं विषूचिते। प्राप्ते

क् तुरन्ये विशेषणीभूत प्रव ताविप साधातयान्यः खीक्रियत इति,निद्रादि-काले प्रवत्युत्तरकाली नत्व विशिष्टपागभावस्यासत्त्वानिषेधवैक्कल्यं, तथाच किमधं पहलेरिवकारिविशेषणतेति, श्रुत शाह न च प्रवृत्तिरपीति, यदा ननु कल जभच्णाभावविषयकं कार्यिसित्यव क्रितिसाच्यलमेव क्रार्थितं तत्र कार्यिकदेशे कती कर्तुरुवि कल अभचणाभावे कति-साध्यलंविना कार्यस्य साधालमनुपपनिमिति प्रवित्तसाधालं क्लाञ्च भवणाभावे स्वीत्रियते, तथाच निद्रादिदशायां न तादृशकल सम्बणाः भावसिडिरिति, कर्त्गतप्रवित्तिविशेषणं व्यर्थिमत्यत चाह, प्रवित्तर-प्रीति, तयाच लिङ: क्षतिसाधात्वेन कार्य्यं न शक्तिगीरवात् निषेध-क्रतिसाधालवाधाच, किन्तु धर्मालादि-लघुधर्मापुरस्कारेण लिङादिपदम्बिरिति, तादृश्यभ्री कर्तुः साध्यतासम्बन्धेनानुयेन कल सभ च णाभावस्य प्रहत्तिसाध्यतास्वीकार इति न कर्त्विशेषण-प्रवृत्तेव्वेषु त्यमितिभावः। साध्यत्या साध्यतान्यितया नञ्घे घटकतया च उपदिख्यत इति गौरवाचानासावाच, न च प्रवतेरसाध्यत्वे अधिकारिः विशेषणप्रवृते: कुतीलाभ इत्यत याह रागप्राहिति, लीकिकसामयी-व्याद्त्पनेत्यर्थः, मनसा तु प्रवत्तस्य क्रातिसाधातानिययादिमतो भचणानुकूलयत्मात्वत इति वा सात्रपदेन शरीरचेष्टाव्यवच्छेदः। भूतचेष्टावतः भरीरचेष्टावतो भवणोपादानकलञ्चादिग्रहणक्पचेष्टावत इति यावत्, यदा भूते प्राप्ते कल आही अच्णार्थं चेष्टावत इत्यर्थः। भूतं च्यादी पिशाचादी जन्ती क्षी । विवृचिते। प्राप्ते-तते-समे-सत्ये-देव-योन्यन्तरे तुना इति मेदिन्युक्तेः। वर्ज्जनं संसमीभाव इति यत्कारिकावाक्यं तवेत्वर्थः। अप्रहत्तमावेति प्रज्ञत्यभाववतीलाभादित्वर्थः। तथाच तहारा भच्णादिपागभावस्थैव निषेधपदार्थत्वे वचनतात्पर्यां, एवञ्च, वृत्ते समे सये देवयोन्यन्तरे तु ना, द्वित मेदिन्युत्ते भूते प्राप्ते निषेधा चेष्टावत द्वतार्थः। (५) ततस्य प्रागमाव एव कालान्तरसम्बन्धितया साधात्वेनोपदिश्यते। प्राग-भावस्थानादिसंसर्गाभावमात्रह्मः स चाप्रवृत्तस्य भच्च मावस्थानादिसंसर्गाभावमात्रह्मः स चाप्रवृत्तस्य भच्च मावस्थानादिसंसर्गाभावमात्रह्मः स चाप्रवृत्तस्य भच्च मावस्थाननुतिष्ठतः सिद्यात्येव, तस्थात् सकृत् क्रियापर्यवसायित्वे विफलोविधिः, कादाचित्काकरणस्य निष्ठधमन्तरेणापि प्राप्तेः। नच स्वर्गकामादिवत् साध्यत्याप्रवृत्तिमत्कर्तृकत्वमयङ्गं विषयमात्राननुष्ठानाधीन-सिद्यताक्षिधनियोगानामितिकर्त्तव्यताकाङ्गाविरहात्।

न विरोध इत्यस्य एतइचनवलाङ्गृतचेष्टादिमत्वाविक्छद-उर्ज्जनस्य निषेध-वाकाबोधात्वनाभेन केवनप्रागमावस्य तथात्वविरोधो नेत्यर्थः, (५) प्रागभावस्थानादिले ऽपिचैमिकसाधातास्तीत्याह कालान्तरसम्बन्धि-तयेति, अनेदे ढतीया कालान्तरसम्बन्धिता, उत्तरकालानुवृत्ति:। ननु यस्य पंसः कलञ्जभचणं न भविष्यति तस्य तत्प्रागभावी न सिड: प्रागभावस्य प्रतियोगिसमदेशत्वनियमादित्यत चाह, चनादि-संसर्गाभावसावपरः, अनादि संसर्गाभावले न तत्सामान्यपरः, अनादि-त्वेत विशेषणादध्वंसव्यावृत्तिः। एवच्च प्रागभावस्याप्रसिद्धलेऽप्यत्यन्ता-भावमादाय निषेत्रपर्यवसानं, वैयर्थमुपसंहरति स चाप्रवत्तस्यापी-त्यादि। अय कल सभवणाभावे, याख्यातसामान्यशस्यासाध्यतासम्बन्धेन क्तरेन्वये वाध इत्याग्रह्याह नचेति, साध्यतया साधातासम्बन्धेन, प्रवित मन्त्र तृं वं प्रवित्त न्त्रतिः, कार्थानुयितया विविच्तं विषयमा-वेति खप्रतियोगिकारणमाचाननुष्ठानसाध्यत्वादित्यर्थः, निषेधनियोगानां निषेववाकास नियीगो व्यापार: कार्य्यताज्ञानं येषु विषयेषु तेषां नञर्थ: संसर्गाभावस्त त्कार्याणामित्यर्थः तथाच वाधात् क्रतिरिष्ट, न विविचि-ननु निषेधसाभावस्य उपकासस्येव भावसम्बलितत्वे निति भावः। निविधिष्टा भोजनस्य जितमाधालमवाधितिमत्यतः याच, इति कर्तेव्यतितं, तथाच न तङ्गावचिटतिमितिभावः। अतएव निषेधनियोगानाम

चत्रपव श्रुचित्वसिष तच नाङ्गं। (६) तस्मान्निष्धविधिषु कालवन्तोदेवदत्तस्य रहा दूलादिवत्तरस्र लेनाधिकारि-विशेषणीसृतायाः प्रवृत्तेर्यावत्कालमनुवृत्तिस्तावत्काल-सेव निवृत्ती साफल्यं, न पुनर्निमत्तान्तर्वत् सक्तदन्-ष्ठानेनेव शाखार्थसिष्ठः, नैमित्तिक याद्वादावमावस्था-

ननुष्ठानाधीनत्वादेव, नाङ्गं नाधिकारिविश्रेषणं, (६) तस्मादिति, निषेध-नियोगानां प्रवत्यसाधात्वात्, इदच्च तटस्यत्वे नेत्यच हेतु:, यद्वा उप-संइरति तस्मादिति, प्रवृत्तेरिधकारिविश्रेषणत्वाभावे निषेधवैपः लगादि-त्यर्थः। इदच विशेषणीभूताया इत्यच हेतः। तटस्थलेन उपलच्य-त्वेन, अन्यया विशेषणविधया निविष्टत्वे विशेषानुयिनान्यित्वं विशेषण्विमितिनियमेन प्रवृत्तिविशिष्टस्य साधातासम्बन्धेनानुये तत विशेषणीभूतप्रवृत्तेरिय साधातासम्बन्धेन कलञ्जभचणाभावेऽन्ये निषे-ध्याप्रमाखापत्तः, विशेषणीभूतायाव्यावर्त्त्वीभूतायाः, यद्यपि दण्डी कुण्डलीत्यादी दण्डसमानकालीनत्वस्य कुण्डलादाववगाहनेन दण्डस्य विशेषण्वं तयातापि प्रवत्तेः समानकालीनवस्य कलञ्चभच्णाभावादी धिमी-पारतन्त्रेग भाने विशेषणत्वसम्भवः, तथापि साध्यतादिसम्बन्धेन विशिष्टस्यानुये विशेषणस्य साधातादि सम्बर्धनैवानुय इति व्युत्परी-क्पलच् एत्यमुन्नां, न पुनरिति न वेत्यर्थः। निमित्तान्तरवत् आवस्यवः-विह्तिकसीण इव शास्त्रार्थिसिडि:, प्रत्यवायानुत्पत्तिरूप-शास्त्रवोधित फलसिंडि:, निषेधस्य सक्तदनुपालनेन नैव प्रत्यवायानुत्पत्तिरित्यर्थः ॥ चावप्यकेति विशेषणात् काम्यानां नैमित्तिकानां कासनाभेदेन पुन-रनुष्ठानमस्ति किन्तु तत्रापि यत विशेषवाधीऽस्ति तत स्नानादी न पुनः पुनर्नुष्ठानं। नच नित्यस्यावन्दनादी ब्रह्मलोकादिपाष्ट्यादि-कामनया न कथं पुन: पुनरनुष्ठानिमिति वाचां नित्यकर्माणो यदार्थ-षादिकं फलं श्रूयते तद्गुणफलमिवानुषङ्गिकमिति न तद्धे पुनः क्रिया-रमः, तथीतां नित्यक्रियां तथाचान्येद्यनुष्रक्षपतां युतिमिति, विहित-नित्यक्रियायाः सञ्जदनुष्ठानेनैव शास्त्रार्थसिद्धित्वत युक्तिमाइ नैमित्तिक इति विधिगौरवापतेरिति ग्रमावस्थाकालं व्याप्य यादं कुर्व्वतित्यव

विक्ति विशिष्ट स्वाप्त स्वाप्

विधितात्पर्धिकत्पने गौरवापत्तेरित्यर्थः, न चात्रविधिवैफल्यसस्तीत्याह न होति श्रमावस्यामेरेनिति, श्रीवितारमेर एत क्रियामेर्नियम इति भावः। अत्रेटं वोध्यं निषेधस्थले कल सभचणाभावः दी प्रत्यव।यजन-वाभावलंग्रहे कल सभचणादी प्रत्यवाय-जनकत्वग्रही अविति सं चे काल जाम जाणवादाव च्छे देनैविति, काल जाभ जाणसा विदेषोदयेन सर्वदा तती निवृत्तिरिति, प्रवृत्तेरिवकारि-विशेषण्वप्रफलं, किन्तु कौटादि व्यात-त्तंये, नरतादिकमेवाधिकारि-विशेषणमुपयं, नित्यविधिस्थले संस्था-वैद्रादी प्रत्यवायानुत्पत्तिक्षेष्टसाधनत्वादिप्रहेण सँखदनुष्ठिते वायानुत्पादसिंद्या प्रयोजनाभाविन न पुनस्तदनुष्टानं, नित्यंकस्प्रीण यंत्फलान्तरं तद्यानुवङ्गिकसिति, न तद्र्यमिष पुनरारचाः, कारये दानादी फलवा हुल्याय पुनः पुनस्तत् क्रियत एव, कार्यप्रिच वार्खादी गङ्गास्त्रानादिकं पुन: पुनर्निक्रयते अजससानिविवादिति, न्यायसतेतु, निषेधस्येली कलञ्चसच्णासावादिजन्यसपूर्ञं न स्वीं क्रियते, किन्त वलबदनिष्टाननुविधालधापिविधार्थतया वलवदनिष्टाननुविधालक्प-तद-भाव एव नजा कलंद्धभचणादी वीधात इति, तंत्र देशोदयेन नियत-निव्वत्तिः।(७) एतत्र्यायसूलमविति, एतद्युक्तिसूलकमवित्यर्थः। वृत्तिः पालनं विधिनिषेधयोर्बिधिनिषेधवाक्यप्रतिपाद्यकमी नुष्टान कमी कर्ण्योः, पुज्य- हयं जीमृतवाहनेन लिखितं, यया, निमित्तं काल-मादाय हित्तिर्व्धि-निवेधयोः। तत्र पूज्ये विधेर्वृत्ति-निवेधः कालमानके। तिथीनां पूज्यता नाम कर्मानु-ष्ठानतोमता। निवेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमानमपेचते। पूज्ये युग्मादिनेतिश्रेषः। कालमाधवीये द्वह्याग्यः, निमित्तं कालमादाय हित्त-विधि-निवेधयोः। विधिः पुज्यतियौ तत्र निवेधः कालमानके। तिथीनां पूज्यता नाम कर्मानुष्ठानतोमता। निवेधस्तु निवृत्त्यात्मा काल-मानमपेचते। (८) रविसंक्रान्तौ तु तदुपलचितपुग्यकाल एव यास्त्रोविधिविज्ञविधेऽपि, कालान्तरकल्पने गौरवा-

तिथिख खे, तियाविति निधित्तकालमात्रीपलचणं, तेन संक्रान्यादि-परिग्रहः, तिथ्यादिकर्त्तव्योपवासादेश विशेषवचनप्राप्ततिथिखण्डाद्यप-लचितदिनस्य निभित्तत्वं वीध्यं, ऋहीरात्रादिसाध्यत्वाद्पवासादेरिति। तव तयोमीच्ये, कालसावक इति मावपदं साकल्यार्थकं, पूजारता युग्मादि-वचनप्राप्तकमीाङ्गता, कमीानुष्ठानतः कमी शीऽनुष्ठानं यच पूर्वीह्वादी तत्-सम्बन्धात्, यदा कस्त्रानुष्ठानतः पूजारता कस्त्रानुष्ठानविधानतः कसी-योग्यता, निहत्त्वात्मा अभावक्यः, कालमानमपेच्त इति, निक्तयुत्तीरिति-भाव:। (८) ननु निषेधस्यकालसातापेच्णे संक्रान्तिस्थले निषिद्वित्रयाया यकरणं संक्रान्यपराचितदिनमाने स्यादित्यत याह, संक्रान्ती विति, कालान्तरकल्पन इति, संक्रमणकालस्यातिसूच्यतया क्रियायोग्यताः भावात्, मानार्दादिकालविशेषस्य पुरायत्वेन विधानात्, तत्कालस्यैवोप-स्थितत्वेन निषेधनिभित्तत्वावधारणात्, कालान्तरकत्यने संक्रान्तरपलचित-दिनमात्रस्यनिषेधनिसित्तत्वकल्पने गौरवादिति, पुखकालस्याऽपि सं-क्रान्तुरपलचितदिनत्वेन प्राप्ततया तद्धिककालसम्बन्धकत्वनमेवगौरव-मितिभाव:। ननु प्राभाणिकं गौरवं न दोषाय, इत्यतश्राह, वचना-भावाचेति, साधकसप्याह, प्रत्युतिति, कालान्तरे निषेधानुपालने वाधकं, दचनाभावाच । संक्रान्त्रपवासस्य तु व्रतत्वेन भावस्त्य-त्वाद्वावघिटतत्वाद्वा उभयथापि, तन पूज्ये विधेवृत्ति-रिखनेन पुर्ण्यकालयुक्ताहोरानकर्त्तव्यता, एवमेव गुक-चरणाः । प्रत्युत एकस्मिन् काले विधेयप्रतिष्ठिध्ययोः प्रतिपादकं कामधेनु-नैयतकालिक-कल्पतरु-क्रव्यचिन्ता-मणि-हेमाद्रि-वाचस्पतिमिश्र-प्रतदेवीपुराणं । यतीताना-गतोभोगोनाद्याः पञ्चदण स्मृताः । साव्विध्यन्तु भवेत्तन यहाणां संक्रमे रवेः । व्यवहारो भनेत्रोके चन्द्रसूर्व्योप-लचिते । काले विकलते सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरं । पुर्ण्यपापविभागेन फलं देवी प्रयक्तति । एकधापि क्रतं तस्मिन् कोटि-कोटिगुणं भवेत् । धर्मादिवर्वते ह्यायू-राज्यं पुत्तसुखादि च । अधर्माद्याधिणोकादि-विषुवायन-सविधी । विषुवेषु च यद्दतं जप्तं भवित चाच्यं। एवं विषापदे चैव षड्णीतिमुखेषु च । भोगोव्याप्तिः

पुर्णकाले निषेधानुपालने साधकमपीत्यर्थः, रिवसंक्रान्ति-पूर्वापर-सिन-हितकालानां पापपुर्ण्यनिमित्ततायां कालसामान्ये कार्य्यसामान्य-निमित्ततावश्यकीत्यतस्तां वक्तुमारभते, व्यवहार इति, व्यवहारीवैदिक लीकिकिम्याविशेषप्रवृत्तः, लोके लोकानां, चन्द्रस्र्य्योपलचितेऽहिनरात्रीः चेत्यर्थः, सर्वत्र निमित्तत्वं सप्तस्यर्थः, तथाच दिनविहिते कमीणि दिनस्य, राविविहिते कमीणि राविनिमित्तत्वमित्यर्थः। विकलते उत्-पद्यते, नश्यति च। ननु कालस्य जगत्कर्तृत्वं न सम्भवति, स्र्यक्रियादि-स्थावेनाचेतनत्वात्, कार्यवैचित्रमपि कथमित्यत् श्राह, पुर्ण्यपाप विभागनिति, तथाच देवी तत्तत्कालकत-कमीजन्य-पुर्ण्यपाप-सहकारेण स्थादुःखादिक्तलं जनयतीत्यर्थे इति कालस्यापि निमित्तत्वं, ननु रिव-संक्रमणस्विहितनाङ्गिषु ग्रह्मानिष्ये कि फलमत श्राह, एकधा- स्त्यसंत्रमणकालसिवाने पुख्यतमत्विमिति यावदिति कल्पत्रः। (६) वस्तुतस्तु भुज्यत इति भोगोभोग्यः, संक्र-मणे रवरतीतानागतः कालोभोग्यस्तिविसत्तपुख्यपाप-जननयोग्य इति यावत्। अतएव, पुख्यपापविभागेन

यौत्यादि, तस्मिन् संक्रान्ति-पूर्व्वापरकाले, विषुवायनसन्निधाविति, अत विषुवपदं सहाविषुवपरं, वर्षप्रयसत्वात् प्रथसनिर्देशः, अयनस्य वत्त्यफलत्वात् एकत्रसमासेन लिखनं, अग्रे च विष्वपदं जलविष्वपरं, भोगोत्याधिरिति, स्र्वेस्येत्वर्धः, अतीतानागती यस्तिसिनिति, तत्पदपूरणेन फलितमर्थमाह सूच्मेति, अत पुख्तमतं अतिग्रयपुख जननयोग्यताप्रयोजकसम्बन्धः, यथवा भोगोलोकानां, यस्यां भूमी देवदत्तस्य भोग इत्यत देवदत्तकत्तृंकग्रहणविषयस्य जनकलमिव, अत जनकर्त्तकातिशयपुण्यक्रमीनिसित्तत्वं लभ्यत इति, अत यत्तत्पद-पूरणापेचेत्यतत्राह, (८) वस्तुतस्विति, अतीतानागत इत्यनन्तरं कालपदं पूरियता समुदितार्थमा इसंक्रमण इत्यादि। तिनिभित्तक इति संक्रान्ति-निमित्तनेत्वर्थः, अवायुर्वृतमित्यद्वेव पुर्ण्यपापजननद्वारा भोगजनकपरं भोगपदं, भुज्यते अनेनिति व्युत्पत्था वा भोगपदं तज्जनकपरमिति तत्त्वं। दिवा विश्वपदी विषयमितीति, नच पुखायां विश्वपदाच प्राक्पसादपि षोड्ग इति वहह विषठवचनेन विरोध इति वाच्यं, तस्यहा विशह ग्डान्युनदिन-मानस्थलाभिप्रायत्वात्, पञ्चदशनाडास्तु तत्र्यूनदिनमानाभिप्रायेणेति, दिन-मानाईस्य पूर्वापरगतस्य पुरुषकालले तात्पर्धमत्दे वोधां, अतीता-नाग्तोभोगोनाद्यः पञ्चदशस्त्रता दत्यस्य विश्वपदीमात्र विषयत्वे, एक-धापि क्यतं तिस्मिनित्यनेन पञ्चदग-नाद्यात्मक-कालमात्र-परामगीत्तदत्तरं विषुवायन-सनिधावित्यादिना समलसंक्रान्तापादानविरोधात्, प्रन्तु उभयतः पञ्चदश्रनाडीनां पुख्यतमत्वं, कल्पतस्यम्येऽपि भोगशब्देन पुख्य-तमलं व्याखातं, शातातप-जावालि-वृद्दस्पतिवचनैर्वर्तमाने तुलामेषे च्चेयच्चोभयतोद्रम दति यदुक्तं तत्पच्चदम्नाङ्गीतोऽप्याधिक्याय, एवं मन्दा मन्दाकिनीत्यादिनासंक्रमणे विचत्रादि घटिकानां पारमार्थिक पुर्णालम्त तद्याधिकाय, अतएव देवलेम, यायाः सनिहिता नाडास्तास्ताः

फलिमिख्पसंहृतं। यत्तु, अर्डशके व्यतीते तु संक्रान्ति-र्यदहर्भवेत्। पूर्चे वतादिकं कुर्यात्, परेदुाः स्नान-दानयोरिति, तदुपोष्येव च संक्रान्ताां स्नात्वा योऽभ्य-र्चयद्विं। प्रातः पञ्चीपचारेण स कासफलमाप्नुयादिति भीमपराक्रमीयैकवाक्यतया परिदक्षीयस्नानदानिनिम-त्तकं प्राग्दिनोयवाससंयमक्ष्यवतादिपरमन्यथा प्रागुक्त-विरोधापत्तेः। स च कालः कियानिव्याह, नाडाः पञ्च-

पुर्खतमा: स्मृता इति सामान्यत एवोक्तं, एवच्च देवीपुराणे षड्शीति मुखे-ऽतीत इत्यादिना षड्शीत्यादिषु पुर्खालसृत्तं यत् तत्पुर्खातमेष्वपि विशेष-त्वाय, श्रयनयोर्थत्पञ्चदग्रदण्डाधिकदण्डग्रहणं तत्पुण्यत्वाय, श्रक्ति-संक्रमणे पुण्यमहः कत्झमुदाइतमिति वचनखरसात्। विण्यपद्यां पुण्य-तरकालो देवीपुराणेनोक्त:, प्राक्षयश्चादिष षोड्शिति वचनसेव विष्णुपद्यां पुर्वतर कालपरं, एवमङ्किसंक्रमणे पुर्वमहः छत्स्रमुदा हतं। संक्रमण भानोहिनाईं स्नानदानयोरिति वृच्चित्रष्ठवचने क्रत्सदिनपदं क्रतस्रदिनमानपरं, पच्चदमनाडीकयनभपि दिनमानाद्वाभिप्रायेन, तथाच देवीपुराणवचनैकवाक्यतया कत्स्वदिनमानमपि संक्रान्तिपूर्वापरीभूत-लेन ज्ञेयमिति चेदलोचते, यहिसंक्रमणे पुण्यमितिवचनं यथा श्रुतार्थमेव, एतदेकवाक्यतया देवीपुराणे, श्रुतीतानागतपञ्चदश्रनाड़ी-पुर्णात्वकथनं दिनमध्यसंक्रान्यभिप्रायेण, तेन पञ्चदशपदं दिवासंक्रान्ति-पूर्व्वापरीभूतदिनसम्बन्धिकालपरसिति, सामान्यकालसुक्का संक्रान्तिविश्रेषे विशेषकालमाह, याविद्यक्तला भुक्तेत्यादिना, अतीतानागती भीग इत्यस्यातीतीऽनागतस भीग इत्यर्थः, एवच कचिद-सीतो भोग:कचिदनागत:कचिचातीतोऽनागतखेत्युभयं, तदेव विवृतं भवि-ष्यत्ययने पुर्णिमत्यादिना, विश्वपद्यां विश्वषानुक्तत्वात् विनिगमनाविर-हेण अतीतानागतीभयग्रहणं, अयनगीरिधककाल पुख्यत्वं यदुक्तं तत्पञ्च-दशनाड़ी गुख्यताविरोधि, अतीतत्वचात्र संक्रान्यव्यवहितपूर्वेचणमारभ्य तत्चण-पूर्वकालीनत्वं, श्रव्यवहित पूर्वत्वच तत्तत्संक्रान्ति प्रागभा-

एकादशी तत्त्वम्।

35

दशिति, उभयतः पञ्चदणदण्डानां पुण्यत्वं दिवा विषाप्रदी-विषयमिति तिथितच्वे वचाते। साझिध्यमित्यादिना तस्यैव कालस्य स्तुतिः, विकलते स्वभावात् प्रच्यवते, देवी संक्रान्तिकालं सक्ष्मा दुर्गा संक्रान्तापक्रमे देवीपुराण एव, समायनस्तुन्धासः पचोऽइश्च क्रमेण तु। स्यूलसूच्म-विभागेन देवी सर्चगता विभो, द्रत्यभिधानात्, कलाकाष्टा-दिक्षणेण परिणासप्रदायिनीति मार्कण्डेयपुराणाच। (१०) तस्मादमावस्थायां हरितमित न किन्द्रादित्यादिनि-

वाधिकरण तुर्यकिरणाविष्ठ बचणप्रागभावानधिकरणत्वे प्रागभावाधिकरण्लं, तेन रातिसंक्रान्तिस्थले दिवसग्रेषयामद्वयलाभः, संक्रान्तिदिनपूर्वदिवसीयपञ्चदग्रदण्डव्यवच्छेद्य, न च राविसञ्चारस्थले संकान्य यवहितपूर्वशाविचणमारभ्य तत्पूर्वकालीन-पञ्चदग्रदण्डपरि-ग्रहीऽपिस्यादिति वाचं संकान्यधिकरण्रातिचणभिन्नत्वस्य संकान्यव्यव-हितपूर्व्यच्चे निवेशात्, तत रातिपदच दिवसप्रथमसंकान्तिपूर्व-चण-लाभायेति, वस्तुतस्तु रात्रुग्त्पन्नध्वं सप्रतियोगिरातिचणभिन्नत्वं मिवेगंग तेन दिनाद्यच्णोत्पन्नसंकुान्तिपूर्व्यपूर्वचणस्यापि व्यावर्त्तनं, एव-मनागतवं संकान्ताव्यविहतोत्तरचणमारभ्य तदुत्तरकालीनवं तद-व्यवहितोत्तरत्वञ्च तत्संक्रान्तिचणध्वंसाधिकरणसूर्य्यकिरणाविच्छन्न-काल अंसानधिकरण वे सति तत् संकान्ति चणध्यं साधिकरणत्वं, तेन तत्परदिवसीयपूर्वयामदययच्चणं संक्रान्ता-कचिद्राविसंक्रान्तिस्थले व्यवहितोत्तरच्णे संजाल्यधिकरणराविचणभिन्नत्वमपि निवेश्यं, तेन रातिसंकान्यव्यवहितोत्तरचणमादाय पञ्चदशदण्डव्यवच्छेदः, स्वाधिकरणरातिव्यक्तिप्रागभावप्रतियोगिरात्रिचणभित्रत्वं निवेश्यं, तेनं दिवसचरमचणोत्पवसंकान्तियरवणस्यापि व्यावृत्तिः, संकान्तिचणस्य पुर्वा दर्ण्डापूपन्यायसिडमित्ये वं रीत्या सर्व्वं परिष्कार्यमिति । स्वभावात् प्रचुतिर्ज्ञन्ममरणं देवीकेत्यवेचायामाच, संकान्त्यादिकालस्वरूपा-दुर्गेति खरूपलमधिष्ठाढलं परिणामः प्रज्ञत्यादीनां कार्यक्षेपणीत्पत्तः। (१०)

षेधविधित्वेन कलञ्चभचणन्यायाद् यावत् कालभावित्वं, निराहारस्य तु वैधोपवासक्षपत्वाद् व्रतक्षपत्वाञ्च न तदव-सरः, तयोभावघटितत्वात्। (११)

यय व्रतलच्चणं। दीर्घकालानुपालनीय:संकल्पावत-मिति, नारायगोपाध्यायानां खरसः। खकर्त्तव्य-विषयो-नियतसंकल्पोब्रतमिति श्रीदत्त-इरिनाय-वर्डमानप्रस्तयः सङ्गल्पश्च भावे मयैतत् कत्त्रं व्यमेव, निषिधतु न कर्त्तव्य-मेवेति ज्ञानविश्रेष:। अतएव सङ्गल्यः कसीमानसिम-त्याभिधानिकाः। वस्तुतस्तु पूर्वीत्तवराइपुराणवचनेनै-काद्रयुपवासस्य व्रतत्वाभिधानात् एकभक्तेन नक्तेन तथै-वायाचितेन च। उपवासेन चैकेन पादक क्छ-उदाइत, द्रशादि याद्मवल्काायुक्तेषु एकभक्तनकायाचितभोजनीय-वासादिषु पादक च्छाद्यभिधानाच, न सङ्गल्पीत्रतं किन्तु सङ्गल्पविषयतत्तत्क सीव वतिमिति। अतएव व्रतानां सङ्गल्यसम्भवत्वमाच मनुः। सङ्गल्यमूलः कामोवै यत्ताः सङ्गल्पसमावाः । व्रतानियमधर्माश्च सर्वे सङ्ग-अनेन किस्मणा दूरिसष्टं फलं साध्यत ल्यजाः स्मृताः। याव त् काल म िल नमावस्थाकाल ल शापक हरितादि च्छेदनाभावपरत्वं, श्रव तु एकादध्यां निराहार द्रत्यादि वचने तु, तदवसर: कलञ्जाधि-करणन्याय सहकारः, तयोर्निराहारोपवासयोः, भावघटितत्वादिति, भावस्य आववटितस्यापि अनुष्ठानसाध्यत्वात् कलञ्जाधिकरण्यायस्थलीययुक्तेर-भावः । विधिः पूज्यतिथौ तत्रेत्यस्य विषयता चेति, (११) दौर्वकालानुपाल-नीय:, अहरन्यूनकालानुष्ठे यविषयकः, पुनः पुनरनुष्ठेयविषयको वा, अभाव-रूपव्रतस्य भावाङ्गकलेन तिहिशिष्टस्य क्षतिसाध्यल्यस्तुष्टे यल्यस्तीति भावः। स्वकत्तंत्र्यो विषयो यस्य म मंकल्पात्रयः पुरुषः नियतः सामानाधि- इत्यवंविषया वृद्धिः संकल्पः, तदनन्तरमिष्टसाधनतयाव-गते तिस्मिन्निच्छा जायते, ततस्तद्धें प्रयतं कुरूत द्रह्येवं यत्ताः सङ्गल्पसस्यवाः, व्रतानियम-धर्मााश्चत्रवाध्याये वच्चमाणाः सर्जे दूखनेनान्येऽपि गाद्यार्थाः संकल्पादेव जायन द्रित कुछ्कभट्टः । व्रते सङ्कल्पमाह वराहपुराणं। प्रातः सङ्कल्पये विद्यान्यवास्त्रतादिकां। नापराच्चे न मध्याक्ने पित्राकाली हि ती स्मृती। सङ्गल्पो वतस्या-रक्ष द्रत्याह राघवभट्ट धृतीविष्णुः, व्रतयज्ञविवाहेषु श्राहे होमेऽर्ज्ञने जपे। यार्थे स्तकं न स्वादनारक्षे तु सूतकां। आरक्शावरणां यज्ञे संकल्पीव्रतजापयीः। नान्दी श्राइं विवाहादी श्राइ पाक परिष्क्रिया। निसन्त्रणन्तु वा याहे यारसः स्यादिति युतिः। पाकपरिष्कियेति साम्नेर्दर्भश्राहविषयं तबैव तस्याम्युहरणविधानेन तद्गिन पाक खासाधारणत्वात्। संकल्पविधानन्तु संवत्सरप्रदीपे, प्रातः सन्धां ततः क्षत्वा संकल्पं वुध चाचरेत्। गान्ति-पर्वाण, गृहीतीं इस्वरं पातं वारिपूर्णसुदद्भुखः। वासन्तु ग्रच्चीयाद् यद्वा संकल्पयेद्वधः । देवतास्तस्य तुष्यन्ति कामिकं तस्य सिध्यति । अन्यया तु वया मर्चाः क्रिप्यन्ति

करण्य सम्बन्धेन नियमविशिष्टः नियमित-कालविशेष-विषयको वा, एतन्सत-ह्य प्रत्यहादिशव्दानां ज्ञानविशेषे तिहषये च प्रवृत्तिरतोव्रतपदस्य निर्ता-संकल्पे तिहषये च प्रवृत्तिरिति वोध्यं, संकल्पे व्रतपदप्रवृत्ती प्रमाणाभाव-माकलय्याह वस्तुतस्विति, पादकच्छ्रादीति तेषां व्रतत्वं मन्वादिप्रसिद्ध-मितिभावः। तत्तत्वर्मावेतीति, संकल्पविषयमात्रस्य व्रतत्वे यज्ञादीनामपि व्रतत्वापत्तिरत श्राह तत्तदिति, मन्वादिशास्त्रकारीयव्रतपदपरिभाषा- सक्यबुद्धयः। यद्देति पचान्तरं। तेन तास्वपाताभावे संकल्पमातं करणीयं। कल्पतरी तु यद्देति नक्ताद्वित-परं। तद्युक्तं, तत्पदाध्याचारापक्तेः, यत्संकल्पयक्त-द्वृत्तीयादित्यनेनेवोपपत्ती वाकारीपवासपदवेयद्धीपक्तेय। तथाच कालमाधवीये वराचपुराणं ग्रचीत्वीडुम्बरं पातं वारिपूर्णमृदद्मुखः। उपवासन्तु ग्रच्चीयात् यद्दा वार्य्यव-धारयेत्। (१२) यद्यपिव्रतं शास्वविच्दितोनियमः, नियमय कामचारस्य विशिषणावरोधः, यथा अथाद्यभोजी, अर्धि-त्वात् प्रवृत्ती नियमः, सित भाजने अथाद्यभेव भुङ्क्ते

विषयो व्रतसिति फलितं। संकल्पयेत् संकल्पपूर्व्वकं स्वकर्तव्यतयाऽभिलपेत् मनसा संजल्पयित वाचा अभिलपित इत्युतोः, संजल्पविधानन्वित्यादिना ग्रभिलापस्यैव वक्तव्यलाच, संकल्पः संकल्पविषयीभूताभिलापः। ग्रीडुम्बरं ताम्त्रं, उपवासपदं व्रतान्तराद्यपलचकं, ग्रह्लीयात् संकल्पयेत् वाचा अभि-लपेदिति यावत्। वार्य्यवधारयेदिति संजल्पवाक्यकल्पनार्थिसत्वर्धः, (१२) कामचारस्य रागप्राप्ततया सामान्यतः प्रवृत्तियोग्यस्य विशेषे विशेषधसी-अवरोधः नियतप्रवृत्तिः, भावे नियमस्ता अभावे तसाह यथेति, अपहत्ती प्रवृत्यभावे नियमो निख्यं। सति भोजन इत्यनेनासित भोजनीऽयादभोजनाभावे न दोष इति, ययादभोजने न नियतप्रवृत्तिः, किन्त यादमेवेत्येवकारेणायादभिन्नं यादमनं तद्वीजनाभावेनैयत्यं स्थते इत्यप्रवृत्ती नियम इति । इहैकाद्यीवत्सित्यादि संकल्पाङ्गकवत-घटितवाक्ये, ग्रह्मते विवच्यते, श्रन्यया तद्विवचणे ऋतुकालाभिगा-मीस्यादित्यत्रैतादृशस्मृतिवचनकित्ति, ऋती भार्थासुपेयादित्यादि विधिवोधिते ऋतुकालभार्थाभिगमने संकल्पादिकं स्थात प्रातः संकल्पये-दिदान् उपवासत्रतादिष्विति वचनात्, न चेष्टापत्तिः संकल्पेन विना राज-नित्यादिवचनस्वरसाददृष्टार्धककर्मार्खेव संकल्पस्याङ्गत्वात् ऋत्वभि-गमनादितः पुचक्षपफलस्य संकल्पाभावेन वार्यितुस्मक्यत्वात् नचा-दृष्टार्थकत्वाभावादेव न संकल्प इति वाचां, संकल्पोधतजापयोदित्यनेन द्वित वैयाकरणाः, तथा नियमो व्रतमस्त्री तन्नोपवासादिपुण्यक्षित्याभिधानिकाः, गास्त्रविहितोनियमोव्रतसिति तन्नोपवासादिलचणसिखर्थः, तथापि तावन्मात्रंव्रतमिह न ग्रम्तते, यन्यथा च्रतुकालाभिगामी स्यादित्यादाविपसंकल्पादिकं प्रसञ्चेत, यत्र च्रतुकाले यभिगमनं
यस्यास्तिस च्रतुकालाभिगामी,व्रतिणिद्वितिकल्पतकः। (१३)
यत्पव संकल्पाङ्गकमेव विचार्य्यत द्रति विशेषः।
ग्रहीतव्रताकरणे दोषमाह कागलेयः, पूर्व्यं व्रतं ग्रहीत्वा
यो नाचरेत् काममोहितः। जीवन् भवति चण्डालोस्ततः प्रवा चैव जायते। द्रादणीव्रतमादाय व्रतभङ्गं
करोति यः। द्रादणाद्यं व्रतं चीणं निष्फलं तस्य जायते,
द्रित नारदीयवचनाद्वाद्य्यां विशेषोऽपि वोध्यः। प्राययित्तमाह पद्यपुराणं, लोभान्मोहात् प्रमादाद्वा व्रतभङ्गो
यदा भवेत्। उपवासत्ययं कुर्य्यात् कुर्य्यादा केशमुण्डनं।
प्रायश्वित्तसदं कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत्। वाशन्दः

व्रतारश्रक्षपत्नेन संकल्पस्य निरूपणात्, नचादृष्टार्थकिनयमिविधिविषयो-व्रतमिति वाच्यं, नियमिविधिविषयत्वाभावेऽिष कास्यस्य पञ्चमीव्रतादेक्क्त-त्वात्। (१३) संकल्पाङ्गकमेवित्येवकारेण शास्त्रीयनियमवैशिष्टाय्यवच्छेदः। ननु संकल्पाङ्गकमात्रस्यव्रतत्वे वैदिकतयाविधकम्भमात्रस्य व्रतत्वापत्ति-रित्यत श्राह विचार्यत इति, विशेषेण कम्मेविशेषक्षपत्या निरूप्यत इत्यर्थः, पुनरेव वृतो भवेदिति पुनरेव व्रतमाचरेत्, नतु व्रतचटक-कित्ययपूजादिभङ्गे तदविशष्टं अर्थादित्यर्थः, नानापूजादिक्षपाणां प्रधानानामेकभङ्गे तत्सभुदितजन्यापूर्वासिडेईश्रादिवदिति, वस्तुतस्तु प्रायिस्तानन्तरं तदेव वृतं अर्थात् पुनरेविति स्वरसात् वृतान्तरकरण-स्यानुपस्थितत्वादिति, समुचय इति मुण्डनस्य वृतत्वाद्यभावात्, सर्वत्व समुचये तेन मुण्डनच्च कर्त्तव्यसिति प्रायिखत्तिविकः ।
प्रमाद्य सक्तत्त्वे प्रतिप्रसृते देवलः, सर्वभूतभयं व्याधः
प्रमादोगुरुणासनं । च्रवतप्तानि कथ्यन्ते सक्तदेतानि
पासतः । प्रति कर्त्तव्यतायां सण्व, च्रभुत्तृा प्रातराष्टारं
सालाचस्य समाष्टितः । सूर्य्यादिदेवतास्यच्च निवेद्य
वतमाचरेत् । वद्यच्यं तथा सत्यं भौचमामिषवर्ज्ञनं ।
वतिवेतानि चलारि वरिष्ठानीति निच्चयः । प्रातर्वतमाचरेदित्यन्वयः । प्रधानपदार्थान्वयस्यास्यर्षितत्वात्, प्रातःसंकल्पयेदितिवचनेकवाक्वत्वाच । (१४) च्रभुत्तृाष्टासत्वर्षात् पूर्वदिने एकभक्तत्वसायाति । नन्वाष्टास्य रामप्राप्तत्वादनुपादेयतयोद्देश्वरस्यैकत्वसंख्यायाः ग्रष्टसमार्जन-

मायस्ताक्रलेनोक्तलास्त, सकदेतानि यास्तत इति, व्रतहानिकराणां सकत् प्रमादादिकतले व्रतमङ्गो न भवति, तथास्त्र मासकर्जनादिनियमवतस्थले सकत्प्रमादादिकतमांसभोजने नियमक्रक्रदोषो न भवतीत्थर्थः, समारक्षे पश्चमीवतादी सकत् प्रमादादिना पश्चमां पृजायकर्षे व्रतमङ्गो भवत्थेविति । कस्तित् त्रतापि यास्त्रक्लात् व्रतमङ्गो न भवति, प्रलसिद्धिल्लाह्न, तिस्त्रत्थां (१८) स्थादिति, आरम्भात् पूर्व्वं तद्दिने प्रातमीजनस्याविहितलात् निषिद्धलास्त्रप्रसात्त्र्या निष्धायोमादित्यर्थः, स्कभक्तत्वस्तित् आहारमित्येकवचननिर्देशात्, स्कभोजनिनयेचे मुनिभिद्धिरानं प्रोक्षमित्वक्रमोजनान्तरप्राप्तेरित्याययः। तेन दिवा रात्रो वा सक्तभोजने न दोष इत्तर तात्पर्व्यं नत्वेकभोजने नियमस्त्रेन सन्दि द्यासीऽपि न दोष इति । व्रतमाचरिद्यव व्रतेष्वेनानि सल्लारीत्यक्ष पूर्वदिनेकभक्तलादिकपस्त्रान्वये पौनक्ष्व्यापत्तेः। वस्तुनो व्रतस्त्रं जातिः सस्तिविश्वजनकतावक्षेदकलादिना सिक्का, सैव व्रतसद्यक्तताकक्षेदका, स्वाविश्वजनकतावक्षेदकलादिना सिक्का, सैव व्रतसद्यक्तताकक्षीदका, स्वाविश्वजनकतावक्षेदकलादिना सिक्का, सैव व्रतसद्यक्तताकक्षीत्वान्तियायक्षानिविश्वयक्तताक्षित्रतान्तिविश्वयक्तताक्षित्वस्त्रानिविश्वयक्तताक्षमानिविश्वयक्ताक्षमानिविश्वयक्तताक्षसानिविश्वयक्तताक्षमानिविश्वयक्तताक्षसानिविश्वयक्तताक्षमानिविश्वयक्तिविष्वयक्तित्वस्तिविष्वयक्तताक्षसानिविश्वयक्तितानिविश्वयक्तिविष्वस्तिविष्वयक्तित्वस्तिविष्

न्यायेनाविविचित्ततं युक्तमिति। (१५) स च न्यायसृतीया-ध्याये निक्वितो यथा, ज्योतिष्टोमे कुशपविवेश यहं संमार्षीति श्रूयते तव संश्रयः, किमेक्रग्रहस्य सम्मार्ज्जनमृत-यहेर्जुहोतीति वाक्येन प्राप्तानां दशग्रहाणां तद्धं किमु-हेश्यगता संख्याऽविविचिता न वेति। यथा पश्चना यजे-तेत्यवैक्ववचनश्रुतिवलादुपादेयपश्चगता संख्या विव-

हित्तः, दानादिकतम्बभ्राणाभावादिज्ञानव्याहत्या तत्तदुपदेशव्यद्धा, व्रतस्य ज्ञानक्ष्यता च नियमो व्रतमित्यनुशासनवलादवसीयते, तत्र नियमशब्दस्य स्वकृतव्यतया ज्ञानविश्रेषपरत्वात् मनसा संकल्पयति वाचाभिलपति कर्मणा चोपपादयतीत्युक्तसंकल्पस्य कर्माण्यायकत्वाभावान् व्रतत्वं, किन्तु तस्याभिलायादिहारा प्रयोजकतामादायैव सङ्ख्यप्रभवत्वं व्रतादीनासुक्तं, व्रतपदवीध्यज्ञानविश्रेषात्मकसङ्ख्यस्य तदुत्तरकालौनस्य कर्मणा चोपपादयतीत्युक्तकर्मपदवीध्यप्रहत्त्वा चोपपादनमात्ममनोयोगादिजननहारा वोध्यं ताहश्रजातिमज्ज्ञानविषयकर्मादी व्रतपदप्रयोगो निक्दलं चणयित । यद्यपि श्रीदत्तादीनामतन्त्रतं सम्यक्तया भाति तथापि ताहश्रविषयकर्मादावेवं शास्त्रकर्तां भूरिवतपदप्रयोगात्ताहश्चाने च तथाप्रयोगाभावात्ताहश्चातिमज्ज्ञानविषयक्षप्रयोगात्ताहश्चाने च तथाप्रयोगाभावात्ताहश्चातिमज्ज्ञानविषयक्षप्रविषयकर्माद्याच्यात्रात्विषयक्षप्रविषयक्षित्वत्वक्षित्रकर्ताते । व्यतपद्रशक्तिस्त्रत्वक्षद्विषयत्त्रा अविधयत्या उद्देश्येति उद्देश्यता तु विधयतातद्घटकनिष्वयत्ताभिनविषयता (१५)।

यथेलादिपूर्विपत्तः, पशीरित्यनेनैवित्येकस्मिन् यागिऽनेकपश्चसम्बन्धस्याप्राप्तत्वमेकवचनेन ल्रम्थते, यागं प्रतीति, यागनिष्ठफलसाधनन्तायां पशीर्णीभावादवच्छेदकलात्, श्राष्ट्रस्यभावात् सम्बन्धाभावात्, प्रधानीत्यापिताकाङ्कयेवाङ्गविधानादङ्गीत्यापिताकाङ्कया प्रधानस्याविधानाचिति भावः, तदव च्छेदकलेन पश्चनिष्ठमुख्यफलसाधनतावच्छेदकतायान्यवच्छेदकलेन। युक्तमिति, एकस्मिन् यागिऽनेकपश्चसम्बन्धस्वीकारे गौरवादिति भावः, न चैकलविशिष्टपश्चलस्थावच्छेदकलमपेन्चर पश्चमान्वन्वविति भावः, न चैकलविशिष्टपश्चलस्थावच्छेदकलमपेन्चर पश्चमान्वन

चिता तथैव ग्रहमित्येकवचनश्रुतिवलादुद्देश्यगतापि
सङ्घा विविचिता भवितुमर्हतीति। तथादेकस्यैव ग्रहस्य
सम्मार्ज्जने प्राप्ते सिंबान्तयित, प्रशार्व्याक्यान्तरेखाप्राप्तत्वादनेनैव वाक्येन यागसस्बन्धावगमाद्यागं प्रति प्रशोगृंशीभावात् यावद्गुणं प्रधानस्य चाहत्त्राभावात् कियता
प्रश्ननेत्यवक्षेदकाकाङ्गायां तद्वक्षेदकत्वेनेकत्वसंख्या
सम्बध्यत दृत्युपादेयगतायाः संख्यायाविवचितत्वं गुक्तं।
ग्रहाशान्तु वाक्यान्तरेश यागसम्बन्धावगमात् सम्मार्ज्जनवाक्ये दितीयाश्रुत्या सम्मार्ज्जनं प्रति ग्रहस्य प्राधान्यावगमात् यावत् प्रधानं गुणस्य सम्मार्ज्जनस्थावर्त्तनीयत्वात्
कियन्तीग्रहाः सम्मार्ज्जनीयाद्रत्याकाङ्गायामनुपादेयग्रहगता संख्या न विविचितिति साधवाचार्यः (१६)।

स्यावच्छेदकत्वे लाघविमितिवाचं स्वर्गादिफलं प्रति यागस्य वैजात्य-पुरस्कारणेव हेतुत्वं नतु पश्चकरणकत्वमिप हेतुतावच्छेदकं किन्त्वेक-पश्चकरणक्याग एव तद्देजात्यस्त्रीकार इति वैजात्यप्रयोजकत्ययैकत्व-विशिष्टपशोर्यागाङ्गत्विमिति विधितात्पर्यात्। न च प्रयोजकतावच्छेद-कत्वे, एकच्चिनित्रश्चनगोरवं दोषायैवितिवाच्यं प्रामाणिकत्वादवच्छेदका-काङ्मयोद्यापितैकवचनश्चतिराकाङ्गायोग्यतादिसच्वे श्वतिवचनस्य निर्धक-त्वायोगात्। श्रवसंस्थाविशेषकत्वविवच्चेऽिप वद्यपश्चकरणेऽप्येकपश्चकरण-कत्वसच्चादेकत्वविवचणमफलिमित चेन्न सजातीयद्वितीयर्गहतत्वमेवाच विवचितं, साजात्यञ्च समिभव्याहृतपदार्थान्वियत्वेन तथाच स्वाश्यययाग-करणपश्चित्रभेदप्रतियोगितानच्छेदकेकत्वमेवात्रैकवचनवोधितिमितिसाम-च्चस्यादिति दिक्। दितीयाश्वत्या दितीयान्तपदघटितश्वत्या। इत्या-काङ्मायामिति, विनिगमकाभावेन सर्व्वधामेव ग्रहाणां मार्ज्यनाकाङ्गा-सन्त्वादितिश्वाः (१६)। उत्तरभीमांसायां कल्यतकस्तु किञ्चिदिधातुं सिंबविद्विर्धेग्रयत्नमुद्देग्यत्नं, अनुष्ठेयत्नेनिर्देग्र्यत्नमुद्देगत् ।
उद्देग्याविवचायां ग्रहं सम्माष्टीत्यचोद्देग्र्यग्रहस्थाविवच्या
स्थात् तथाच चमसादेरिय सञ्चार्गप्रसङ्गः स चायुक्तश्वमसाधिकरणे हि प्रक्रत्यागसम्बन्धिसोमनावत्वाविग्रिषेणा
ग्रहपदस्य चोपलचणार्थत्नेन चमसादीनामिय सम्मार्गमाणङ्का सिंबान्तितं। अनुवाद्यमनुक्ता तुन विधेयमुदौरयेत्। न इन्लश्चास्पदं किञ्चित् कुचित्
प्रतितिष्ठतीति न्यायेन केवलसम्मार्गविध्ययोगाद्रद्देश्येन
भाव्यं, तच ग्रहणव्देन समिततं। न च चमसोपलचणार्थौ ग्रहणव्दः ग्रहयागावान्तरापूर्व्वसाधन-

 स्थान्तरङ्गस्य तेन लचामाणत्वात्, अन्यथा तदसाधन-स्थापि यहसा सम्मार्गः प्रसच्येत । व्रीहियवयोस्त्ववान्तरा-पूर्व्वभेदाभावात् व्रीहीन् प्रोचतीत्यच व्रीहिश्रच्दो यवोप-लचणार्थ दत्युक्तं । ततश्च यहिष्येव सम्मार्ग द्रति । ननु यदि यहउद्देश्यत्वेन विधिपरिगृहीतस्तर्हि तदेकत्वमपि पश्चेकत्वविद्वित्तं सात्, मैवं यहगतन्त्वेकत्वं यहान् प्रत्यवक्षेदकत्वेन रूपेण न विविद्यतं (१९)।

युक्ता हि पशुना यजितेत्यचीपादेयविशेषणत्वादेकत्व-विवचा, एकप्रसवतयैकपशुविशिष्टयागविधिसस्भवात्।

समिश्याहारलभ्यस्य लच्चमाणलादुदेश्यतावच्छेदकविधया लच्चणया-वोध्यलात्, लच्चणावीजन्तू क्रमेविति विकल्पत्वेन एकस्मिन् यागे पर-स्पराभावसहकारेणाङ्गलेन। श्रवान्तरापूर्वंभेदाभावादिति, न च व्रीहि-यागयवयागयोः परस्परव्यभिचारेण क्रथमेकापूर्वं जनकत्विमिति वाच्यं, एकशिक्तमत्वेन तयोरेकजातीयापूर्वं जनकत्वसभवात्, न च तथाप्य-पूर्वं भेद इति वाच्यं, यागावान्तरित्यस्य यागजन्यतावच्छेदकधर्माविच्छित्र-परत्वात्, तथाच व्रीहियागजन्यतावच्छेदकाविच्छित्र परमापूर्वं साधनकिन्तिन्त्र वार्यं विद्यागजन्यतावच्छेदकाविच्छित्र परमापूर्वं साधनकिन्तिन्त्र यागे यहचमसयोरङ्गत्वे चैकजातीयकित्वकापूर्वे तयोरेकशिक्तमत्त्वेन हितृता न सभवित केवलयहात् केवलचमसाच तदुत्पच्यापत्तेरित । यहान् प्रतीति, उद्देश्यतानिकृषितत्वं प्रतिरर्थः, उद्देश्यतायामाध्यता-सम्बस्वेन ग्रहाणामन्वयः, तथाच ग्रहिनष्ठोद्देश्यतावच्छेदकत्वं नेत्यर्थः । न विविच्यतिमिति तत्तद्ग्रहिनष्ठकत्त्तदेकत्वानामिकत्वत्वेन विवच्चिष्ऽव्यावत्ते बात्वात् यावद्ग्रहिनष्ठकत्वस्थाप्रसिदेश्वेतिभावः (१७)।

ननु सजातीयिहतीयरहितत्वरूपिणैकत्वं कयं न विविच्चतिमत्यतं आह युक्ताहोति, उपादेयविभेषणत्वादिति, विधेययागविभेषणत्वादित्यर्थः। एकप्रसवतया, एकशुत्या विधेयतया, यागस्य तिहिभेषणत्या प्रशोस्त-हिभेषणैकत्वस्य च प्रथमतः प्राप्तत्वेन। एकप्रश्रविभिष्टेति तथाच अत त गहलैकालोहेशन सम्मार्गिवधावुहिम्यमानयोर्गुणा-नाच परार्थत्वादसम्बन्धः समत्वात् स्यादितिन्यायेन परस्परासम्बन्धाद्गृह एवोहेभ्यत्वेन पर्य्यवसानात् प्रत्यहेभ्यं वाक्यसमाप्तिः स्यात् ग्रहं समार्ष्टि तच्चेकमिति, ततस्व

पश्रनेत्यनेनैक्वचनीपस्थापितैकत्वस्य प्रक्तत्यर्थतावच्छेदकपश्रतावच्छिनै उन्वयादेकपथोलीभसास्य च कारणत्वे विधिष्टस्य तस्य यागेऽन्वयात् समुदितवाक्येन विशिष्टयागे विश्वेयलं खलेकपोतन्यायेन शाब्दवीधमतेऽपि युगपदेकलपश्चलविशिष्टस्य सागीऽन्वयात् विशिष्टविधेयत्वं विशिष्टीभूत-यागति द्विश्वणसंसर्गाणां प्रागप्राप्तत्वात्, विधेयता च विषयताविशेषः प्राथमिकवीधविषय एव स्वीक्रियते विश्विष्टविधिस्थले विश्वेषणान्तर्भावन पर्याप्ता, एकैविति न तत्र वाक्यभेद इतिभाव:। अत्र तु ग्रहं संमार्षी त्यत तु यहलैकलोहेशेन यहनिष्ठोहेश्यतावच्छेदकत्या यहलैकलयी-भीनेन संमार्गविधी यहं संमाष्टीति विधिजन्यवीधे उद्देश्यमानयीकः देश्यतावच्छेदकतयोद्देश्ययोः परसरासम्बन्धादित्यनेनास्यान्वयः, हितुमाह गुणानाञ्चेति सूत्रं गुणानासुद्देश्यविशेषणतयोद्देश्यानां विधेयाना स परार्थत्वात् विशेषमात्रसाकाङ्गलादसम्बर्धः परस्परासम्बर्धः गुणिभावेनान्वयाभावः, एकविषयतायामवच्छेदकत्वाभावश्व परस्परान्वये, आकाङ्वाविरहादिति। ननु यथाविधेयां ये पश्रत्वैकस्वयो र्यगपदन्वयाकाङ्कया एकविधेयताया अवच्छेदकलक्पविधेयत्वं तथाहै-कस्मिनुदेशीर युगपदन्वयाकाङ्घरा, एकोद्देश्यतायामवच्छेदकतयीभयी-भीनसभावात्रवाकामेद इत्यत आह यह एवेति यहत्विशिष्टएव उदेश्यलेंनी द्देश्यतया पर्यवसानात् ग्रहेर्ज्होतीत्यादि श्वत्या ग्रहमतैकत्स्याप्राप्ततया यहंसंमाष्टीत्यनेन तसा प्राप्ततया विषयतयैव स्यादिति तस्यानुदेश्य-तयोद्देश्यताव च्छेदकतासभवेन यहत्विशिष्ट खैवोद्देश्यत्मिति प्रत्यहेश्यमित्यहेश्यभेदेन वाक्यभेदः स्यादित्यर्थः, एकतुस्य विषेयत् ऽपि, उदेगाग्रहतुस्य विधेयैकातुस्य च दयोर्प्रहानिष्ठैकोदेगातावच्छेदकतु।सभाव-स्तयोग्हेग्रातुविधयतुलच्णविषयतयोवैं लच्छादिति। यहतु कत्वयो-विशेषणयोभेंदेर कसीव यह स्योदेशात्नेन भेद इति भावः। यह मिले-

वाक्यभेदः स्थात्। अतएवोक्तं। प्राप्ते कार्याण नानिकी विधातं शक्यते गुणः। अप्राप्ते तु विधीयन्ते वह-वीऽप्येक्षयद्भत इति। अतोग्रहत्वेन सर्व्यान् प्रक्षताननूद्य सम्मार्गमानं विधेयमिति। एवं यस्योभयं हविरात्ति- सर्व्येत् स ऐन्द्रं पञ्चणरावं चकं निर्व्यपिदित्यनोभय-त्वमिविचतं, तदुकं प्रक्षत्यर्थोऽपि खल्वं तदुद्देश्यस्य

कलस्योद्देश्यातावच्छे दक्तते विधियते वा विशिष्टार्थभेदेन घटं नील-चानयेत्यादाविव ग्रहं तमेकच संमाष्टीतिवाक्यभेदः स्यादित्यर्थः। ग्रह गतैकतुलाभाय तमिति प्रकृति विवच्छीयं खात्र्यसंमार्ज्जनकर्भग्रहनिष्ठ-भेदप्रतियोगितानव च्हे दक्षेक्षतुःविच्छितस्य तात्पर्ययाह्यकतयैव तत्पदोप-च्यास इति। एवच्चैकतुस्य विधियतया यहत्स्य चोद्देश्यतया तयोः प्रत्येकं धिर्भतावच्छे दकीकत्य समार्ज्जनस्य विधेयत्या वाक्यभेद इति भावः। अतएव वाक्यभेदापत्तिदोषादेव। प्राप्ते कर्धणीति विधातं शकात इत्यत हेत्राकाङ्गाया विरहरूप उद्याः। अपिना हयोः परि-यहः, तथाचापाप्तस्थले नानागुणविशिष्टस्वैकस्य विधेयता नानागुणेष विशेषे चैका पर्याप्ता, यहा गुणेषु विधियताव च्छे दकता नत् विधे-यता इति न वाक्यमेदः, प्राप्ते नानाग्णविधाने च विश्रेष्ये विधेयता-भावात् गुणेष्वेव भिन्नभिन्नविधेयतास्त्रीकारिण न वाक्येक्यसिति भावः। श्रत इति, एकतुस्य विवच्चण वाक्यभेदापत्तेरित्यर्थः। प्रकृतान् निरुक्त यागाङ्गीभूतान्, यस्थाभयभिति, ऋात्तिं विनाशं ऋच्छेत् प्राप्नीति। अवीभयतुहविस्वयोग्हेगातु वाक्यभेदापत्तिर्वोध्या वस्तुतोऽवोभयत्व-विवचण, एक इविविनामे किं कार्यिभित्याकाङ्गाया अनिवन्ते कहेगार-विशेष्रणविवद्यायाः अनियमाचीभयतुमविविद्यतस्यपदीपन्यासस्वे कः इविर्विनाशे यत् कर्तव्यमुभयनाशिपि तदेव नत्दिवसिति द्योतनायिति भावः। प्रक्रत्यवी इविरूपयतादः। तुल्यनीतितादिति यथा यागाइ-यहाणां सर्वेषामेवाविशेषेण समार्जनाकाङ्गासत्त्वेनैकतृतंख्या न विविचिता, तथैकस्योभयोर्वा नाशे किं कार्य्यक्रित्याकाङ्गीदयेनीभय-

विश्वषणं। संख्यया तुल्यनीतित्वादिववचां प्रपद्यते। एवं खर्गकाम द्रत्यचापि पुंस्त्वमविवच्चितं। किञ्च सर्वेषामेव संस्काराकाङ्कितत्वेनेकत्वाविवचायुक्ता, तस्मात् सर्वे ग्रहाः सन्मार्जनीया द्रति (१८)।

एवमभुक्ता प्रातराहारमिखनायेकलाविवचाऽस्तु, सख

त्यमिवविचितिमिति भावः। खर्गकाम इत्यत्नेति खर्गकामनाया एवीदेशाताव च्छे दक्तत्वेनाव च्छे दक्तान्तराकाङ्कानुदयेन स्त्रीणां निषेधाभावेन
च पुंस्व प्रविवच्चितिमिति भावः। यत्र च यागादौ स्त्रीणामनिषकारस्त्रतापि विधिवाक्य स्त्रस्त्रीकामादिपदेन न पुंस्वं विवच्चितं
निषधवचनादेव शूद्रादौनामिव स्त्रीणामनिधकारलाभादिति। वस्तुतस्तु
स्त्रीनिषिषयागादिविधौ स्वर्गकामादिपदेन पुंस्वं विवच्चितमन्यथा स्त्रीकृतयागादैः सफलत्वापत्तिस्तथाच यत्र वाक्यभेदादिदोषः प्रयोजनिवरच्य
तत्रैवाविवच्चितमुद्देश्रागतिवश्रेषणिमिति। (१८)।

यवापीति, यविगिषितिति, क्वित् व्रतपूर्विदिने ह्विष्णादिनियमस्य विहितत्वात् पूर्विदिन याहारसामान्याभावस्य वोधियतुमणकात्वादित्यर्थः विगिषापेचायां याहारगतसंख्याविग्धेषाकाङ्कायां, एकवचनं नियामक माहारगतैकत्ववोधकं, याकाङ्कादिसच्वे निर्ध्यत्वायोगादन्ययैकवचनस्याविग्वित्तत्वे एकाहारो वा, यर्ज्ञाहारो वा, द्रव्यविग्धेषाहारो वा निवर्त्तनीय दत्यनिययापत्तेरित्यर्थः। नचैकत्वाहारत्वयोक्रदेश्यतयोभिदेन वाक्यमेदापत्तिरितवाच्यं। मुनिभिर्द्विरण्णनं प्रोक्तमित्यादिवचनाहिवेकभोजनस्य रात्राविकभोजनस्य च प्राप्तत्या एकभोजनत्वावच्छिन्नाभावस्यकस्य विधितो वोधियतुं प्रकात्वात्, यत्वच, दिवाभोजनरातिभोजनयोरेकतरत्वमेवैकवचनार्थं दति। याद्वियते भुजाते यत् तदितिन्व्यत्पत्ता याहारपदस्यान्वपरत्वमुक्तं तचैकवचनार्थो भुक्ततिधात्वर्थभोजनेऽन्वितः। न च प्रक्रत्यर्थान्वितस्वार्थवोधकत्वं प्रत्ययानामिति व्यत्पत्तिमङ्ग दित वाच्यं, तत्र प्रक्रत्यर्थान्वितत्वस्य साचात् परम्परा-

मिविशेषिताहारनिवृत्तिपरत्वासस्थवादिशेषापेचायामेळाळ चनं नियासक्षमन्ययानध्यवसायापत्तेः। श्राह्रियत द्वा-हारोऽद्वादिः (१८)।

ततस्य पृर्व्यांचे एकाचारं भुक्षा पराचे प्रातःकाले कृताचमनः सूर्यः सोमो यमः कालः सन्धेर भूता- न्यहः चपा। पवनोदिक्पतिभूमिराकाणं खचरामराः। वाह्मं शासनमास्थाय कल्पध्यमिच सिद्धिमिय- नेन सूर्यादीन् निवेदा व्रतं सङ्गल्पयेत्। कृष्यिलास्त्,

साधारणस्थोत्तात्वादन्यया न कल्जं भच्येदित्यादावास्यातार्थकार्यस्थ नजर्थान्वयेन व्युत्पत्तिभद्गः स्यादिति। यद्या, ग्राहारगतमेकत्वं एक-भोजनीयत्वं कस्तुत, ग्राहारपदं भोजनपरं तनैव मुख्यप्रयोगात् भुक्षे-त्यत्व धात्वयोऽविविच्तिः, तपस्तप्यत दत्यादिवत् तेनाहारमकत्वेत्यर्थ-नाभः, ग्रानन्तर्थः क्वार्थः, एकभोजनाभावानन्तर्थञ्च एकभोजनाभावाधि-करणदिनानन्तर्थः पर्य्यविसतं तेन पूर्व्वदिने एकभोजनाभावनाभ इति, पर्य्यविसतमाह एकाहारिमति, न नियमः किन्तु परिसंख्या, तेन् कचिदुपवासिऽपि न दोषः, नचाभुक्षाप्रातराहारमित्यवेव न कल्जं भच्येदित्यादाविप कल्ज्जगतमेकत्वं विविच्ततं स्थादितिवाच्यं वाधका-भावादिविग्रेषिण कल्ज्जभचणसामान्याभावस्थेव घटोनास्तीत्यादाविक् वोधनात्, तत्र तु पूर्व्वदिने हविष्यादिवोधकश्वतिवन्तादेकत्वस्य विवच्चणां-दिति भावः (१८)।

सूर्यः सीम इति मन्त्रस्य निवदने विनियोगो मन्त्रलिङ्गादवसेयः । भाववत्तेरा भावज्ञा, देवता इति सम्बोधनं, यश्चीलं म्लेच्छभाषणं स्तीं स्तिकां। प्रायश्चित्तप्रिय क्षतप्रायश्चित्तोऽपि यतः सर्व्यक्षात् दुष्कृताः म्युचते इत्यर्थः। यपिना कर्मासाद्गुण्यं दर्शितं प्रायश्चित्तीत्यनेन कर्मानर्द्दताप्रयोजकपापराष्ट्रियं ध्वनितं, गायन्तं त्रायत इति गायक्षेत्रं चत्तुः स्र्यः चत्तुरिधष्ठातृत्वात् दिवि स्र्यं इव तदनिर्वचनीयं विश्वोः षदं स्ररूपं याततं विश्वं भासयत् स्थितं यस्य भासा सर्व्यमिदं विभान स्य भगवन् सूर्य भगवयोदेवता एतद्वतमहमासिष्यामी त्यने सूर्याय देवता भ्यस्य निवेद्य सङ्क्षं प्
कुर्यात्, स्रनेकाहसाध्ये तु अद्यारभ्येति विशेष द्रत्याहः।
हारीतः, पतितपाषग्डनास्तिकसम्भाषणान्तास्नीलादिकम्पवासदिने विवर्ज्ययत्। कृत्रीयराणे, विहर्णामान्ताजान् सूती पतितञ्च रजखलां। न स्पृशिद्राभावित नेचेत व्रत्यासरे। वीधायन उद्योगार्ज्यः
स्र अष्टी तान्यव्रतप्तानि स्रापीस्तृलं फलं पयः।
हवित्रीह्मण्कास्या च गुरीर्वचनमीषधं। स्रतप्त फलाहारादावित त्रव्यानजलाद्यविकदः। व्राह्मण्कास्यादिषु
न न्यूनत्वनियमः। धन्धीर्थारस्रवतस्यासमाप्ती मरणेऽपि तत्पालपातिमाहाङ्गिराः, यो यद्ये चरेद्यस्मसमाय स्तो यदि। स तत्पुण्यफलं प्रेस्त प्राप्नुयान्मनुरव्यति। प्रेस्त परलोके। प्रायिक्तविवेकोऽय्येवं।
वैदिके कर्म्ममावे नारायणस्मर्णनमस्कारावाह योगि-

त्रौतियते:। स्तुतिरिति, यक्टिंद्रवाक्यस्य कर्मसाङ्गतामात्रफलत्वात्, विधित्ते स्वाच्यां त्राह्मणेत्यादि, तपि विधि तथा च भगवित्ती यावत्। त्राह्मणेत्यादि, तपि विधि तथा च भगवित्तीयां देवि विग्रुक्पाद्मपूजनं ग्रीवसार्ज्ञवं। त्रह्मचर्यमि हिंसा च ग्रारीं तप उचते। यनुद्देगकरं वाक्यं सत्यं प्रियह्तित्व यत्। स्वाध्यायाभ्यसन्त्रवे वाष्मयं तप उचते। मनः प्रसादः सीम्यत्वं मीन-मात्मविनिग्रहः। भावमंग्रहिरित्येतत् तपी मानस उचत दति, ग्रीचं वाह्यं मार्ज्जनादिना, यान्तरं विष्णुस्मरणादिना, यार्ज्जवसकीटित्यं, त्रह्मचर्यः पर्व्वादी स्त्रीवर्ज्जनं, मनः प्रसादी रागादिराहित्यं, सीम्यत्वं प्ररहितैषित्वं, मीनं मुनेर्भावः, परत्रह्मसननं, यात्मनी मनसो निग्रहः विषयेभ्यः प्रत्याहारः, भावसंग्रहिर्य्ववहारे सायाराहित्यं, दानिमिति,

याज्ञवल्काः, ध्यायेद्वारायणं निखं स्नानादिषु च ककीस्। प्रायश्चित्यपि सर्वसादुष्कृतान्मुच्यते पुमान्। प्रमादात् कुर्ज्ञतां कामी प्रचानिताध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तिदिणोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः। तिहिष्णोरिति मन्त्रेण मज्जेदपा पुनः पुनः। गायती वैषावी द्येषा विष्णोः संभ्ररणाय वै। मन्त्रय, तिंदिणोः परमं पदं सदा प्रश्चिन सूरयः। दिवीव चन्राततम्। वामनपुराणे, सर्वमङ्गलमङ्ख्यां वरिण्यं वरदं शुभं। नारायगं नमस्त्राय सर्ज्ञकांशाणि कारयेत्। शातातपपराशरी, अक्टिट्रमिति यहाक्यं वदन्ति चिति-देवताः। प्रणस्य शिरसा ग्राह्यसम्बिष्टोसफलैः समं। चितिदेवता विप्राः। अभिष्टोसफलैरिति स्तृतिः। विष्णुः, ब्राह्मणानां प्रसादेन दिवि तिष्ठन्ति देवताः। व्राह्मणाभिहितं वाक्यं न मिथ्या जायते क्वचित्। यदास्मणास्तुष्टतमा वदन्ति तद्देवताः कमीभराचरन्ति। तुष्टेषु तुष्टाः सततं भवन्ति प्रत्यचदेवेषु परोचदेवाः। तदपि ब्राह्मणाय दिवाणाह्म किञ्चिद्दत्वा

यभयदानमकार्पण्यं वा, तयाच द्वहस्पतिः, स्तोकादिपप्रदातव्यमदी-नेनान्तरात्मना। यहन्यहिन यत्किञ्चिदकापण्यं हि तत् स्मृतिमित। धर्मोद्वांन्यनैमित्तिकरूपः, विद्या प्रास्तोष्टज्ञानं, विज्ञानं ब्रह्मानुभवः, यास्तिकां प्रास्तार्थे दृद्पत्ययः, ब्राह्मण्वचणं ब्रह्मिष्ठवाह्मण्वव्यञ्जकं ब्राह्मण्यदस्यब्रह्मजानातीतिव्युत्पच्या रूच्या चात्र ब्रह्मिष्ठपरत्वात्, ब्राह्मण्वचण्नु यजनयाजनाध्ययनाध्यापनदानप्रतियहण्चण्यट्कम्पप्राण्वितं, यथैते धर्माः कचित् चित्रयादिषु व्यभिचरन्तीति दृष्यते स्मर्थते च, तथाचिवण्यः, चमा सत्यं दया गीचं दानमिन्द्रियसंयमः। यहिंसा गुरुग्रयूषा तीर्थानुस्मरणं दया। यार्ज्यं लोभगून्यत्वं देवब्राह्मण्यूजनं। तयाच गोविन्दमानसोद्धासे नारदीयं, सर्वेषामयलाभेषु ययोक्तकरणं विना। विप्राक्यं तया सुभु
व्रतस्योद्यापलचणं। व्या विप्रवची यस्त ग्रह्णाति
मनुजः ग्रुमे। यदत्वा दिच्चणां वािष स याित नरकं
भुवं। उद्यापः प्रतिष्ठा। ब्राह्मणलचणमाह पैठीनिसः।
चमा दया दमो दानं धक्षः सत्यं युतं वृणा। विद्या
विज्ञानमास्तिक्यमेतद्राह्मणलचणं। युतमर्याववीधः।
यतएव मनुः, चतुर्भिरिष चैवैतैर्नित्यमायमिभिर्दिजैः।
दणलचणको धक्षः सेवितव्यः प्रयत्नतः। धृतः चमा
दयास्तयं गौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमकोधो
दणकं धक्षेलचणं। धृतिरिष्टवियोगानिष्ठपाप्ती चित्तस्य

श्रनभ्यस्या च तथा धर्माः सामान्य उच्यते। सामान्यः सार्व्वविर्णकः सर्व्यायमिनयः, तथा च वहस्यतिः, दया चमानस्या च शौचमाया-सवर्जनं। श्रन्नापेष्यमस्पृहत्वं सर्व्यसाधारणानि च। श्रायासवर्जन-स्वरूपमाह तवेव, श्रत्यन्तं पौद्यते येन सुग्रभेनापिकर्मणा। श्रत्यन्तं तवकर्तत्र्यमनायासः स उच्यत इति चेत् सर्गादौ सत्त्वगुणेन व्राह्मणस्य जातत्वात् तत्सन्ततिपरम्पराणामिष प्रायशः सत्त्वगुणप्रभवत्वात् तत्सन्ततिपरम्पराणामिष प्रायशः सत्त्वगुणप्रभवत्वात् तद्गुणप्रभवानासितेषां प्रायशो व्राह्मणेषु दर्शनात्त्रथोत्रोतः, दुरदृष्टवशात् किचित्वाह्मणारजस्तमोऽधिकाजायन्ते पुष्यविश्ववशाच चित्रयादयोऽपि किचित् सत्त्वप्रधाना जायन्ते तदिभप्रत्येण साधारष्यसृत्तं। तथाच भगवद्गीतायां, श्रमो दमस्तपः शौचं चान्तिरार्ज्वकेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं व्रह्मक्र भ स्वभावज्ञमिति। व्रह्मकर्मा विजचणव्राह्मणत्व व्यञ्चकं स्वभावजं सत्त्वगुणप्रभवात् तत्स्वभावो व्राह्मणस्त्रज्ञातं, व्यतिरके निन्दामाह महाभारते सर्गक्षां नहुषं प्रति युधिष्ठिरवाक्यं। सत्यं दानं चमा शीनमानृशंस्यं तपो प्रणा। दृष्यत्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्वृतः। यत्रतत्व्यत्वत् सर्पं तं श्रूद्रमितिनिर्दिशेत्। चित्रयादिरिप

यया पूर्वि सवस्थानं । इन्द्रियनिग्रहोऽप्रतिषिष्ठेऽपि विषये-ऽन्तिप्रसङ्गः । घीर्षिताहितविवेचक्यास्वार्धज्ञानं (२०)।

विद्या आत्मतत्वज्ञानं। सधे विशेषमाह गीतमः, नान्तवचने होषो जीवनञ्चेत्तदधीनं न तु पापीयसां जीवनिमिति। काशीखग्डञ्च, सर्पिर्लवग तैलाहिचये चापि पतिव्रता। पतिं नास्तीति न व्रयादायाद्यर्थे नियोज-यत्। चयेऽपि घृतं विक्तिसित्यादि प्रयोज्यं। शपयेऽपि मनुः, कामिनीषु विवाहिषु गवां भन्ने तथेन्धने। ब्राह्मणाभ्यपपत्ती च शपथ नास्ति पातकं। द्रश्वने होमार्थमपहते, ब्राह्मणाभ्युपपत्ती ब्राह्मणरचार्थमङ्गी-क्रतधनादी, मिय्याभपथे पापं नास्तीति कुल्ल्सभट्टः। यम:, न नकीयुक्तं वचनं हिनस्ति न खैरवाक्यं न च मैथुनार्थे। प्राणाखये सर्व्धनापहारे पञ्चानतान्याहर-पातकानि । नर्म क्रीड़ा परिहास इति यावत् । अतएव मिताचरायां साति:, गुरुणापि समं हास्यं कर्त्तव्यं कुटिलं विना। खैरवाक्यं खानर्थपरिहारार्थं कपटेना-न्योन्याभिलापः। चतएव गङ्गः, यस्य यस्य तुवर्णस्य विति चोदं समाचरेत्। तस्य तस्य वधप्रोतां प्रायिश्वतं

वाह्मणसङ्गः मत्वभाववात् वाह्मणोऽपि शूद्रतुत्यस्तमः प्रधानवादिति विवेचं। त्रयीववोधी वेदादिशास्त्रस्य (२०)।

कामिनीषु कामिनीधर्मादिनिमित्तेषु, कुटिलं कीटिलां, मैथुनं मिथुनसाध्यं विवाहादि तदालकिऽयं, सर्वधनापहारे जीवनीचित-धनापहारे तद्दनस्य जीवनतुत्त्वत्वात्, श्रतएव जीवनधनस्य जीवनतुत्त्वत्वा-देनेत्वर्यः। ब्राह्मणसत्त्वणसत्त्वादिकमुक्तं लत्त्यति सत्यमित्यादि, भूत- समाचरेत्। वायुप्राणे, यदेतदृविणं नाम प्राणासे तु विश्वसाः। स तस्य इरतेप्राणान् यो यस दरते धनं। त्रादिस्प्राणेऽपि, षष्टिवर्षसदसाणि स्वर्गे वसति भूमिदः। त्राच्छेता चानुमन्ता च तान्येव मस्के वसेत्। महाभारते, सस्यं भूतहितं प्रोक्तं मनसोदमनं दमः। तपः स्वधक्षवित्तित्वं शौचं सद्भरवर्ज्ञनं। सन्तोषोविषय-त्यागो ह्रीरकार्य्यनिवर्त्तनं। चमा दन्द्रसहिष्णुत्वमार्ज्ञवं समिचत्तता। न्नानं तत्त्वार्थसम्बोधः शमिश्चत्त प्रशान्तता। द्या भूतहितेषित्वं ध्यानं निर्व्विषयं मनः। इन्द्रं शौतीष्णादि (२१)।

वैदिन ककाणि प्रथमतः, श्रोम् तत् सदिति निर्दे-शीऽपि, तथाच भगवद्गीता, श्रोम् तत् सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्भृतः। ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यद्गाश्च

हितं भूतहितकारितं, हितच सुखं दु:खाभाक्य, सङ्ग्वर्ज्जनं परदारलागः, भूतहितैषित्वसिति खहितानुसन्धानं विनेत्वर्थः, एकादमे च भगवद्याक्यं, ममो सिन्नष्ठतावुिद्धं इन्द्रियसंयमः। तितिचा दुःखसं सर्वोजिह्योपस्थनयोधितः। दण्डन्यासः परं दानं फलत्यागस्तपः स्मृतं। स्वभावविजयः मौर्थं सत्यच समदर्भनं,। यन्यचं सन्तता वाणी कविभिः परिकौर्तिता। कर्मास्यसङ्गमः मौचं त्यागः सत्यास उच्यते। दण्डो-भूतद्रोहस्तस्य त्यागो दानं, फलत्यागः भोगोपेचा, स्वभावो वासना तस्य जयः प्रतिवन्धः, समं ब्रह्म तस्य दर्भनमालोचनं सत्यविषयत्वात्, असङ्गमः यनासिकः (२१)।

जगदी खरसं जगज्ज सस्थितिलय कर्तुः, यती वा इमानि भूतानि जायनो येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्ताभिसंविश्चन्ति तत् ब्रह्म जिल्लास-स्वेति तन्क्छन्दोपीति तदित्येतस्य सहतो भूतस्य नामिति तैत्तिशैयश्रुतेः,

विहिताः पुरा। योम् तत् सदिति विविधी ब्रह्मणी जगदी खरस्य निर्देशोऽभिधानं। द्रह्मविङ्गिश्चिनितं। तत्र तावदोमिति ब्रह्मेखादि श्रुतिप्रसिद्देरोमिति ब्रह्म-गोनाम। पतञ्जलिखाह अखैववाचकः प्रगव दति। अस्य व्रह्मणः, ओङ्कारी भगवान् विष्ण्रित्यादि तु वाच्य-वाचकयोरभेदेन। तथा जगत्कारणत्वेन प्रसिद्धत्वाद-विदुषां परीचलाच तच्छव्दीऽपि ब्रह्मगोनाम । परमार्थसत्त्वसाध्वप्रणस्तवादिभिः सच्छव्दोऽपि, अत-स्तेन विविधेन निर्देशेन, यहा, यस्यायं विविधो निर्देशस्तेन परमात्मना ब्राह्मणादयोनिर्मिताः। तथा, तस्मादी-मिखुदाइख यज्ञदानतयः क्रियाः । प्रवर्त्तन्ते विधानी जाः सततं ब्रह्मवादिनां। यस्मादेवं ब्रह्मगोनिर्देशस्तस्मा-दीमियुदाह्य उचार्या क्रता वेदवादिनां यन्नाद्याः शास्त्रोत्ताः क्रियाः सततमङ्गवैकल्येऽपि प्रकर्षेण वर्त्तनी सगुणा भवन्तीति भगवच्छङ्कराचार्य्यचरणाः। व्यक्तमाह योगियाज्ञवल्काः, यद्ग्रानञ्चातिरिक्तञ्च यक्छिद्रं यद-यित्रयं। यदमध्यमभाडञ्च यातयामञ्च यइवेत्। तदो-द्वारप्रयुक्तेन सर्जञ्जाविकलं भवेत्। भगवद्गीतायां, तदित्यनिभस्याय यज्ञदानतपः क्रियाः । दानिक्रयास

परमार्थसत्वं ग्रमावाप्रतियोगित्वं सार्व्वकालिकत्वात् सार्व्वदेशिकत्वाच, तदादिभिः प्रवृत्तिनिमित्तैर्विशिष्टस्य ब्रह्मणोवाचक इत्यर्थः। साधुत्वं निरुपाधिहितकारित्वं, प्रशस्तत्वं नित्यानन्दगुणवन्त्वं, निर्देशेनिति, विहिता ग्रारव्याः, सद्भाव दत्यस्यार्थमाह विद्यमानजन्मनीति, प्राग्विद्यमानस्य जन्मनि सति तत्रेत्यर्थः। साधुभाव दत्यस्यार्थमाह उत्कष्टचरित विविधाः क्रियनो सोचकाङ्किभिः। तदिति ब्रह्मणोऽभि-धानमुदाहृखेखनुषङः। अनिसस्थाय कर्षमणः फल-सितिशेषः, तस्मात् फलाभिसस्थानं विना सुमुचुणा कर्षा-कर्त्तव्यमिखपि वोध्यं। सङ्गावे साधुभावे च सदिखेतत् प्रयुज्यते। प्रशस्ते कर्षमणि तथा सच्छव्दः पार्थ युज्यते। यतो विद्यमानजन्मनि उत्कृष्टचिति च सदिखेतत् प्रयुज्यते, चतो यज्ञादी कर्षमणि प्रथमतः सच्छव्दःप्रयोज्य द्रति (२२)।

तेनैताहभितिकर्त्तव्यताकः सङ्कल्पविषयोव्रतमिति व्रतल्चणं। सङ्कल्पविषयस्य व्रतत्वं वाचस्पतिमित्रोऽप्याह यया, कर्त्तव्यतया सङ्कल्पितं व्रतमिति। अमरसिंहोऽपि उपवासादी व्रतशब्दसङ्केतमाह, नियमोव्रतमस्त्री तच्चो-

इति, अत्र त्रह्मनिर्देशविधानेन तत्-अवणकीर्त्तने दर्शिते मङ्गलार्थत्वात्, मङ्गलञ्च प्रतिकूलविद्मविनाशः, तथा चित्तश्रद्धादिह्यारा सर्व्वमीश्वराधीन-मिति वुद्धाः कर्भापलानभिसन्धानेन कर्माचरणादितो ब्रह्मसंवेदन-मिति (२२)।

वतलचणमुपसंहरित तेनैताहशेतिकर्त्तव्यताक इति, एताहशेतिकर्त्तव्यता, श्रभुक्का प्रातराहार मित्या युक्तनियमः । वतं व्रतपदार्थः, पदार्थता
च शक्त्या परिभाषया विति, कर्माणि व्युत्पन्न इति, तथाच नियमश्रव्दः
सङ्ख्यविषयपर इति, स्वाक्याभ्यामिति प्रायश्चित्तविवेकोक्ताभ्यामित्यर्थः । न च नाग्रहोतिति मयेदं कर्त्तव्यमित्यादिसंकल्पपरस्य व्रतपदस्य सङ्ख्यांशे विशेषणीभूतविषयविशेषवोधकताया श्रावश्यक्तवेन,
मरणपरत्वं द्वादश्वार्षिकपरत्वश्चोक्तं मुख्यविशेष्यतया सङ्ख्यवाचित्वमेव
व्रतपदस्येति भावः । तथात्वादिति व्रतत्वादित्यर्थः, तथाच निरुक्तन्यायेन तन्मतेऽपि मनुवचनविरोधपरिहारासम्भवेन तन्मतदूषणासङ्गतः
स्यादितिभावः, ननु मास्तु तन्मतदूषणं का चितिरत्यत श्राह विनि-

गमकन्त्वित, सङ्गल्पविषयकर्माणि मुख्यविशेषतय व्रतपदस्य श्राति नेतु कमीविषयकसङ्ख्ये इत्यत्न नियामकन्त्वत्यर्थः। ननु नियतसङ्गल्पविशेषस्य काचकं व्रतपदिसत्येव श्रूलपाणियन्यार्थः, नतु नियतः सङ्गल्पविभेषो यत्रेति वहुत्रीहिणा तद्र्यप्रकटनं तत यद्यपि सङ्गल्यविषयकर्भाणामेक त्रतण्दवाच्यता तथापि सङ्गल्यविषयत्वविशिष्ट-कर्माणां व्रतपदवाचाले विशेषणीभूतसङ्गल्पस्थापि व्रतपदवाचातेत्यभि-प्रायः श्लपाणिरित्यां ग्रह्म निराच्छे न च नाग्रहीतित। श्रीदत्तादीनां मतेऽपीति खकर्त्तव्यविषयस्येति स्वकर्त्तव्यो यः सङ्गल्पविषयस्तस्येत्यर्थः। मथात्वात् व्रतपद्वाचे विशेषणत्वात् तथाच तन्मतेऽपि नाग्रहीतविशे-षणित न्यायेन कर्मावाचित्वमप्यस्तीति कर्माणि व्रतपदप्रयोगोनानुपप्त इति तन्मतद्यणासङ्गतिरिति सङ्गल्पविषयत्वेन कर्म्मणां न व्रतपद्वाचाताः, अपितु तत्तत् कमीत्वेनैव व्रतपद्वाचाता । न च तत्र सङ्कल्पसः विशेषण-तिति न निक्तन्यायावसर इति, संङ्गल्पविषयत्वन्तु व्रतपद्वचणमिति भावः। ननु सङ्कल्पविशेषणे कथं व्रतपद शक्तिरित्यत आह विनिगमकः न्विति। अथवा नाग्रहीतविश्रेषणा वुद्धिर्विश्रेष्ये चौपजायत इति न्याये निति विशेषण्डनन्वयिनोः न विशिष्टेडन्वय इत्यर्थः। नेन सङ्गल्पविशिष्टे

विषयो नियतसङ्गल्यो व्रतमिति लच्चे खकर्तव्य-विषयस्य तथात्वात्। विनिगमकन्तु प्रागुक्तवराह पुराणयाच्चवत्क्यादिवचनं (२३)।

वस्तुतस्तु वाचिनिकेऽर्थे न्यायानवताराद्यथावचनं हि वाचिनिकिमिति। अतएव केनापि सुनिना संकल्पे व्रतपदं न प्रयुक्तं किन्तू प्रवासादावेवेति। एवञ्च सं-कल्पविषयस्य, अनन्तं पूज्येविरिमित्यादी भावत्वं, नेचे-त्रोद्यन्तमादित्यमित्रादी चाभावक्षपत्वं। ननु तर्हि

व्रतपदवाचात्वे सङ्गल्यस्यापि व्रतपदवाचात्वमावशाकिमिति लाघवेन सङ्गल्यगाचि वं व्रतपदस्थेत्वर्थः । श्रीदत्तादीनामित्वस्यादी व्रतपदस्य सङ्गल्य-वाचितावादिनामिति पूरणीयं स्वकत्तेत्र्यविषयस्य स्वकत्तेत्र्यसंकल्यविषयस्य तथात्वात् सङ्गल्ये विशेषणतात् तथाच ताष्टशन्यायेन स्वकत्तेत्र्यकर्माणो वृतपदवाचात्वापत्तिरिति न न्यायादर इति भावः । न्यायादरिपि तदुभयश्र व्रतपदवाचात्वापत्तौ विनिगमकम्पि कर्माणोवृतपदवाचातायामस्तीत्याङ् विनिगमकन्त्विति (२३)।

नन्। न्यायवलेनोभयार्थकं सग्रद्वृतपदिमत्यत आह वचनं हि वाचिनकिमिति प्रेचाविद्वराहतिमिति ग्रेषः। वचनं व्यवहारः यहा वचनं भ्रुक्तिः गोषदं गां वक्षीत्यादौ वचधातोः प्रक्ष्यर्थकत्वावगमात् तथाच मुनिवचनात्र्यायो दुर्व्वल इति भावः। केचित्त वचनं मुनिवाकां वाचनिकं श्रुतिमूलकं हि यतः, अतोवनवदितिग्रेषः, श्रुतः कथं वनवच्चनिति चेदत वेदान्तस्त्रं, श्रुतेस्तु प्रव्यमूलकत्वादिति। अस्यार्थः श्रुतेस्तु श्रुतेर्व सर्व्वप्रमाणतो वनवच्चं प्रव्यमूलकत्वादिति, अस्य महती भ्रुतस्य निष्वसितमतहग्वेदोऽजायतित्यादिवैदिकप्रव्देन परमेखरप्रणीतत्वेन स्वतः प्रामाखावगमादित्याहः, अत व्रतपदं निक्तेतिकर्त्तव्यताविधिष्टे न यक्षां पूर्वदिने एकभक्तत्वस्य सूर्यः सोम इत्यादि निवेदनस्य च सङ्ख्यपूर्वभावित्वेन व्रतपदार्थघटकत्वासभ्यवात्, किन्त्वितकर्त्तव्यताया व्रताङ्वलं व्रह्मचर्यादिनियमस्यापि कुत्रापि चान्द्रायणादिवते तदिन्यस्यापि क्रुत्रापि चान्द्रायणादिवते तदिन

व्रतस्य क्वचिद्यभावक्षपत्वाद्विषेधः कालमावक द्रत्यस्यापि विषयत्वं स्यादिति चेन्न तस्य केवलनिषेधविषयकत्वात्। यस्य तु संकल्पादीतिकर्त्तव्यतायोगित्वेन भावघटित-त्वात्तत्र पूज्ये विधेर्वृत्तिरित्यस्यैव विषयत्वसिति (२४)।

तिकर्त्रज्ञतायामयवणान्नव्रतपदार्थता व्रतेष्वेतानि चत्वारीत्युत्त्या च व्रताङ्गलमेव तेषां नियमानामन्यव्रवतिशेषे नियमा उताः, केचिच व्रतसामान्ये तयाच व्रतपदस्य नानार्थता-प्रसङ्गःस्थात्, एवं कर्मामातस्य संजल्पमूलवात् संजल्पविषयत्वमप्यत्यावर्त्तकं तथाच जुत व्रतपदस्य शक्तिरिति चेत् भयेदं कर्तत्र्यभित्याकारकज्ञानविशेषस्य प्रवृत्तिहेतुत्या कमीसामान्यमूलवेऽपि मयेदं कर्तव्यमित्यवधारणात्मकं विलच्णं ज्ञान-मत सङ्ख्यादेन विवच्नणीयं यदपालनेन प्रत्यवायो भवति, अतएव हणोति माच्छादयति स्नातन्त्रं। व्रतमिति रायमुकुटेन व्युत्पादितमितादश-प्रयोगार्थस्य सयेदं कर्त्तव्यमेवेति लीकिकिनियमेऽपि सत्त्वात् पुर्यजन-कत्वे सति संकल्पविषयत्वं वृतपदशकातावक्केदकं वाच्यं, तथाच वृत-पदं योगरूढ़ं तथोक्तममरिसंहिन, नियमोवृतमस्त्री तचीपवासादि पुख्यक-सिति। नियम्यते निरुत्तमंकल्पविषयीक्रियते यत् स नियम इत्यर्थः। श्रय यज्ञादाविव चान्द्रायणादिवृते खर्गादिफलकत्वश्रवणात् खर्गकामस्य ममेरं कर्तव्यमिति संकलादिव प्रवित्तदर्भनात निक्ताज्ञानविश्रेषक्पसं-कल्पविषयत्वाभावाचान्द्रायणादावव्यातिः पापना समात्रार्थितया क्रिय-माणे वृते पुण्यजनकलाभावाद्यासिय यैथैर्वतैरपोहेतित्यादिना पाय-श्चित्तात्मकक्षच्छादीनां मनुना वृतत्वोक्तेः प्रसङ्गादितः क्रियमाणे वृते संकल्पाविषयत्वादव्याप्तियेतिचेत्र तत्तत्कर्याविशिषेषु मन्वादिभिः शास्त-क्राद्वित्र तपदपरिभाषाकल्पनात्, तत्परिभाषाफलन्तु निक्तेतिकर्त्व्यताया वृद्धचर्यादिनियमस्य संकल्पस्य चाङ्गललाभः वृतपदेनोह्नेखस । वस्तुतो यागलादेशिव वृतलं जातिविशेषः वृतपदशक्यतावच्छेदकः, एकादशीव्रत-त्वादिकं तद्वाप्यजातिर्भरणविश्षेच वृतपदपरिभाषा एतादशितिकर्त्तव्य-ताक तंक खिव त्रयतादिक मितरभेदानुमापकं लचणिमिति, चान्द्रायणादी च निरुत्तमंकल्पविषयत्वाङ्गीकाराचाव्याप्तिरितिदिक् (२४)।

जीमृतवाहनेनािष, एकाद्यां भोजने दोषं द्र्ययद्रुपवासं नियमयित न चायं निर्वेध द्रितक त्रीं व्यताविधानाद्रिषेध चितिक त्रीं व्यताविरहाद्द्रतपदाप्रयोगा हे खुकां। यत्तु
निर्वेधप्रकरणस्यदेवलवचने, न शङ्कोन पिवेत्तीयं न खादेत्
कृसी ग्रुकरी। एकाद्यां न भुञ्जीत पच्चयोक्त भयोरिष,
द्रुयच नञीनिषेध मुख्यत्वाद्वीजनाभावः प्रतीयते नत्वभोजनसंक ल्पक्षं व्रतं, लचणाप्रसङ्गात्। एकेनेव मत्स्यपुराणकाता, दशस्यां नियताहारो मांसमैयुनवर्ज्ञितः।
एकाद्य्यां न भुञ्जीत पच्चयोक्तभयोरिष, द्रित दशमीनियमपूर्व्वकः व्रतमिभधाय, रठन्ती प्रपाणानि
भूयोभूयो वरानने। न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं सम्प्राप्ते
हरिवासरे, द्रुत्यादि विधरनन्यगतिकतया निषेधकत्वसव्ययं वाच्यं, तथाच निषद्वे भोजने दोषयवणं
निषधातिक्रमजन्यत्यैवोषपदामानं न फलस्रुष्टा काम्य-

यस्य, निषेधः कालमात्रक इत्यस्य। नियमयित नियममेव स्फुटयित न चायिमिति, व्रतपदस्येति तेन नियमघितत्वं विधेयत्वञ्च लखं। निरूद्ध प्राप्तस्य न प्रमाणिमितीति, न च नियमपूर्व्वको भोजनाभाव एव व्रतत्वेतोक्तस्तदभिधानानन्तरं वीस्पितेन न भोक्तव्यमित्यनेन प्रागुक्तस्य प्रतिक्षपाभोजनस्य नित्यत्वं ज्ञाप्यत इति युक्तमितिवाच्यं, यन्नमाश्रित्य पापानि तिष्ठन्ति इरिवासर इतिवचनसहकारेण मत्स्यपुराणवचने एक्तस्य व्रतमभिहितं तद्यका भोजनाभावमात्वपरत्या न भोक्तव्यमित्यक्त-मिति लभ्यते फल्यवणन्तु व्रत एवति, भोजनस्य निषिद्वतैवितमततात् पर्यात्। न खिषुति, भोजनिषधकमुत्तराईमित्यनेनान्वयः। विधिवोधितसैयव धर्मात्वं धर्माजनकत्वात् निषेधपरत्वे लिङा इष्टसाधनत्वावोधनात् न धर्मात्वं। नन्न न कल्कं भन्नयेदेकाद्श्यां न भुज्जीत

तया निरुद्ध व्रतस्य नियले प्रमाणिमिति। तिच्चनां,
न खलु, न शङ्कोन पिवेत्तोयिमित्यादिभिः संप्रतिपद्मनिषेधभावैः साइचर्थ्यंगैकादगीभोजनिषधकमृत्तरार्डः,
किलु, एकादग्यां न भुञ्जीत पच्चयो कभयोरिष। वनस्ययतिधम्मीऽयं शुक्कामेव सदा ग्रहीतिगोभिलवचने
धर्माग्रद्धसमित्याहारेगैकादश्यामुपवसिद्यनेनेकवाक्यतया चोपवासविधायकं (२५)।

न हि निषिद्यानां ब्रह्महत्यादीनां त्यागे कश्चिद्यसीं जायते किन्तु भावरूपाङ्गानुग्रहीतो निषिद्या धर्मी भवे-दिति। वैधोपवासे च, उपाद्यत्तस्य पापिस्या यश्च वासो-गुणै: सह। उपवास: स विद्येय: सर्व्यभोगविवर्ज्ञित

इत्यनयोः कीविग्रेषो येनैकस्य निषेधत्वमन्यस्य विधित्वमित्यत साह एकादग्रामुपवसेदित्यनेनेति, तथाच नजाऽभावीयत्र वीध्यते तत्र निषेधता यत्र च धातुनाऽभोजनं वीध्यते तत्र विधित्वमेकादग्रां न भुज्जीते-त्यत्र धर्मापदस्वरमात् उपवसेदित्यनेनैकवाक्यतया नज्पदममभित्या-हृतवातुना उपवासो लन्यते तत्र च लिङ्पदस्यष्टमाधनतावीधकतया विधितृमितिभावः (२५)।

भावक्षाङ्गानुग्रहीत इति, एतच मुख्यव्रतत् भिप्रायेण व्रतायम् ती केवलाभीजनेनापि उपवासपदार्थस्याह्रोराव्राभीजनक्ष्पस्य प्रधानस्याङ्गान् भाविपि सिहिः, अतएव एकाद्यां न भुञ्जीत व्रतमिति वैण्यविस्त्युक्तं त्या पाण्डित्यक्तामो जन्मित्यावासिषं परिहरित्यादेर्धमीत् । प्रण्यितमानसपूजायवण्कीर्त्तनादेरुपलच्कं। व्रतपरत् न व्रतत्वेनाभोजनमाव स्थाक्तवेन, अभोजनसङ्गा अभोजनस्य निषधमाव्रपरत्वग्रङ्गा, पूर्वं द्रितत्वात्, अभोजनस्याननुष्ठानसाध्यत्वेन क्रतिसाध्यत्वाभावादितिभावः। उपवासपरत्वे त न स्वारसिकलच्ला, अभोजनसामान्यपरस्य न भुञ्जीत द्रत्यादेर्गुणविशेषयुक्ताहोरावाभोजनक्षपविशेषपरत्वादित्यक्तं। सामान्य

दति भविष्यपुराणवचनेन भोगमावस्येव वर्जाने प्राप्ते वचनान्तराद्हीरावाभोजनस्येव पापनिवृत्तिगुणवासयुक्तस्य प्राधान्यमन्यभोगवर्ज्जनस्याङ्गलं। तथाच, सृतके स्तकें चैव प्रणस्य मनसा हरिं। एकाद्य्यां न भुञ्जीत व्रतमेतद्वं लुष्यते। यान्ये, एकाद्य्यां न भुञ्जीत व्रतमेतद्वं वैषावं। यवैकाद्य्यास्प्रवासमावस्य व्रतत्वमुक्तं। एकाद्य्यां न भुञ्जीतिखस्य व्रतपरत्वेन नाभोजनयङ्गा, तस्याञ्च पूर्वें दूषितत्वात्। तत्य यथैकाद्य्यां न भुञ्जीतिख्य वचना-न्तरादुपवासक्षयवत्परत्वं तथा न भोक्तव्यमित्यचाि। वस्तुतस्तु वराहपुराणे एकाद्यीवतसन्दंशमध्ये न गङ्केन पिवेत्तीयमिति न भोक्तव्यं न भोक्तव्यमिति वचनद्य-मभिधाय व्रताकरणे प्रत्यवाय उक्तः। न च पौनक्तभियां तस्य निष्ठिधकत्वमितिवाच्यं। तथात्वे, एतदचन एव न भोक्तव्यमिति पुनक्षपादानं व्यथं स्थात् किन्तु वीप्ययां तस्येव व्रतस्य निष्यत्वस्थापनमिति (२६)।

यन्यया निषेधः कालमाचक इतानेनैवैकादशीचणं एव भीजननिषेधः स्थात्। न खादेत् कूर्मशूकरा

शद्मा विशेषपरतायां स्मुटतरयुक्तिमाह बस्तुतस्विति, प्रत्यवाय उक्तं इति, तथाच न भेकित्यमित्यनेन प्रागुक्तवृतमनूद्य तदकरणे प्रत्यवाय-क्यनसङ्गतिनिषेधकत्वे प्रत्यवायकयनानन्तरं तस्य वक्तव्यता स्मादिति-भावः, पोनम्कभिया तदनुवादस्य व्यर्थताभिया। वीस्या न भोक्तव्य-मित्यादि वीसापद्विटितवाक्येन खापनमनुवादः (२६।

अन्यथा निषेधपरत्वे, सप्रादिति दश्रमीविडादिस्थलीयभाजनपर-वचनविरोधानेष्टापत्तिरिति भावः। हरिवासरपदादिति एकादश्य- विताव विश्रेषोवोध्यः, चक्राङ्कितस्तु यः क्रुस्मी रोहितः कनकप्रभः। वराष्टः भ्रवेतवर्णस्तु चयमेतज्ञ भच्चये-दिति समुद्रकर्धतक्रसीपुराणवचनात्, वाल्यावस्थायां चक्राङ्कितत्वेन तदानीं कूर्सम्याभच्यत्वं। अश्वनीय-नुवत्ती हारीतः, महारख्यवासिनय वराहां यतथैवेति। एवञ्च विवदन्ते अग्रास्यश्वारांश्वीत विशिष्ठातां, प्रवेता-प्रवेततया व्यवस्थितं। कल्पतकस्तु श्राहे नियुक्तानि-युक्ततयेति। विषापासकसातु सर्व्या निषेधो यथा वाराहे भगवदाक्यं, भुता वराहमांसल यस्त सामुप-सर्गति। वराही दशवर्णाणि भूत्वा वै चरते वने। यदिष हरिवासरपदादहोराचाभोजनप्रतीतिनिषधः कालमाचक द्रतानेन नैकादशीचग्रमतिवाह्य भोजनसिति। तद्पि न किञ्चित्, यतो हरिवासरपदाहरितिधिरेकाद्रश्येव प्रती-यते। तथाच स्कन्दपुराणं, प्रतिपत्प्रभृतयः प्राता-उदयादीदयाद्रवे:। संपूर्णा द्रित विख्याता हरिवासर-वर्ज्जिताः। भविष्योत्तरं, हिताय सर्व्व लोकानां तिषि-मेकादगीं खयं। निकासे खगरीरात् संयं वै वैषावी तिथि:। अथवा हरिवासरी दाद्याः प्रथमः पादस्तन पारगां न कुर्यात्। तयाच विष्णुधसीत्तरे। दादश्याः

पनितिदिनविधिकादित्यर्थः। तत्राभाजनविधिनेऽहीरात्राभाजनस्वैव प्राप्तिरित्यभिप्रायेणाहोरात्राभाजन प्रतीतिरिति। भाजनिम्नतीति उक्त-मितिग्रेषः न किञ्चित्, न युक्तमित्यर्थः। प्रतीयते इति, नत्वेका-दशीयुक्तदिनं येनाहोरात्राभाजनप्रतीतिः स्प्रादितिग्रेषः, तथाचेति हरि-वासरपदस्यैकादशीपरत्व प्रमाणञ्चेत्यर्थः। विण्युतत्परइति एवञ्चेत्तदेव- प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञितः। तमतिक्रम्य कुर्व्वीत पारगं विश्वातत्परः। (२०)

ययैकाद्यीवतं निसं कास्यञ्च। गोविन्दमानसी-स्नास-सतासहार्णवयोभीविद्योत्तरे, एकादगीव्रतं नाम नित्यं वा कास्यमेव वा। कयं वा क्रियते तत्त् नियमी-वात कीहण इत्यादि युधिष्ठिरप्रश्चमभिधाय, अहले कथियामि शृगा पागडुकुलो इव । नितामितइतं नाम कर्त्तव्यं सार्व्ववर्णिकं। वाञ्छि द्विः सर्व्वदा सिद्धः पुरुषार्ध-चतुष्टयं। न भोताव्यं न भोताव्यं सम्प्राप्ते हरिवासरे, द्रित श्रीक्षण-प्रतिवचनसभिहितं, अव नित्रासिति श्रव-गाज्ञितात्वं पुरुषार्थचतुष्टयमिति श्रवगात् काम्यत्वञ्च। कालमाधवीये ब्रह्मवैवर्त्तः, इति विन्नाय कुर्व्वीताव-भ्यमेकादगीव्रतं। विभेषनियमाणकोऽहोराचं भुक्तिव-र्जितः। निग्रहीतेन्द्रियः शुह्रोऽसहायोविषातत्परः। उपोध्येकादणीं पापान्य च्यते नाच संगयः। गक्ती तु कात्रायनः, शक्तिमांस्तु नरः कुर्व्याद्वियमं सविशेषका । क्रत्यकल्पलतायां भविष्यपुराणं, युधिष्ठिरउवाच। एका-दशीव्रतं देव नित्यं वा काम्यमेव वा। तन्मे कथय गोविन्द योतं कौतूहलं सम । श्रीभगवानुवाच । निता-

वाक्यतया इरिवासरे न भुज्जीत इत्यसमापि पारणपरत्वसभाव इति, एकादशीचणमतिवाद्य भोजनिसत्यत्र दोषस्तु प्रागुक्त एवति वीध्यं (२७)।

एकादशीवतस्य नित्यत्वे साचाइचनसभिधातुमाइ अयैकादशीवत-

मेतद्दतं नाम वर्त्तवं सार्व्वविधितं। सर्वायमार्गा सामान्यं सर्व्वधर्मीष्वनृत्तमं। एकाद्य्यां न भुञ्जीत पचयोत्तमयोरि । एवञ्चेकाद्यीवतस्य नित्रवेऽि शत्तेन तदङ्गतया संयम-पारणादिनियमोऽवध्यमनुष्ठेयः (२८)।

यय विदियां सम्मित्यः। ननु व्रतस्य वैदिकत्वेन,
नानिष्टा तु पितृन् याद्येः कम्म वैदिकमारभेदिति
यातातपवचनादारस्मे क्यं न वृद्धियाद्यं, उच्यते,
नेदं याद्यविधायकं गौरवात् किन्तु यच कम्मिण वचनानारप्राप्तं याद्यं तच पौर्व्यापर्यमाचिव्यायकमिति।
यथैवं, नाष्टकामु भवेच्छादं न याद्ये याद्यमिष्यते।
न सोष्यन्तीजातकर्मप्रीषितागतकर्ममु, द्रत्मादिना
क्रन्दोगपरिशिष्टोक्तनिष्धसमानुपपत्ति स्तत्तत्कर्मणि यादविधायकाभावात्। सोष्यन्ती सोष्यन्तीहोमः स च
सोष्यन्ती यूलायनीमासद्यप्रस्वां द्वात्वा होमः, षुप्रसव
दत्मास्माद्यातीरिति भट्टभाष्यदर्भनादन्त्वादिः। मैकं
तिष्वपि गोभिलेन स्तिक्रम्ह्यकर्मत्वेन याद्यविधानाद्यथा,

मिति। नित्यं प्रत्यवायजनकीभूताभावप्रतियोगि, काम्यं पत्नजनकं, भुक्तिभीजनं, विशेषनियमाश्रक्त इत्यत्र विशेषपदीपादानात् हरिसारणादेः सत्त्वमाविष्कृतं, अन्ययावैश्ववव्रतत्वानुपपत्तेः, तेषामशीचेऽपि कर्त्र व्यत्वस्थी-क्रात्वाच, अतएव परवचने विश्वातत्परदृत्युक्तं सर्व्धधर्मे व्वनुत्तममिति काम्य-त्वञ्च स्चयति। शक्तेनिति, नित्यं कम्म ययाशकौतिश्ववणात्, अपिका-रात् काम्यत्या स्तरामवश्यमनुष्ठेयता (२८)।

एकादगीवृतस्य वैदिकत्वेन वृद्धियाद्यमक्तावाह अथिति, गौरवादिति, विधिकत्यने गौरवात् क्षप्तविषयत्वेन वचनसार्थक्ये विधिरकत्यनादिति भावः। तदेवोपपादयति यत्रेत्यादि, अष्टकासु साग्निकत्तेव्ययागविशेषेषु

सर्वाखेवान्वाहार्ध्वन्तीति, असार्थः सर्वाखेव वच्य-माणानि कर्माण्यन्वाहार्थ्यवन्ति, अन्वाहार्थ्यं नान्दीमुख-यां दिचिया च तद्भययुक्तानि। तथाच ग्रह्यान्तरं, यक्ताइं कर्मणामादी याचानते दिच्चणा भवेत्। अमा-वास्यां दितीयं यद्नवाहार्यं तद्चते। अतएव क्लन्दोग-परिणिष्टक्रता यानि पर्याइस्तानि तानि सर्वाणि गोभि-लोतानि । अन जातककाणि याडनिवधात्तन तिहधा-यकां वचनं शाख्यनारीयं। न चैवं सत्ध्रावन्द्रनादेगीं भि-लोकत्वात्तन कथं न वृद्धिशाइमिति वाच्यं, यस्माद्याती ग्रहाकामाग्यपदेच्याम द्रत्यादि पुनर्यज्ञविवाह्योः युनर्य ज्ञविवाहयोश्चे त्यन्तसू वरूपग्रह्या ज्ञित्र एव अथातः सम्ग्रीपासनविधिं वच्याम द्रत्राद्यमावास्यायां सर्वे-समावास्त्रायांसर्वे मित्रान्तयन्यः सध्यास्त्रानतर्पण्याड-विधायकः। उभयतेव शेषसूचे हिर्द्यचनं ग्रन्थसमाप्तार्थ-मिति तहाष्यवाखानं। एवञ्च गोभिलान् केव्यञ्चप्राश-नादिषु यद्दियादं तन्मलसासतत्त्वे मत्सापुराणादि-वचनाद्विवृतं। तर्हि न श्राह्ये श्राहमिष्यत दूति प्रयुदासानुपपत्तिरिति चेत् सत्यं ग्रह्याप्यन्वष्टकादि-म्याइविधानात्। तस्मादेकादध्यादिव्रते गोभिलग्रह्या-नुतत्वादिशेषवचनाभावाञ्च न वृद्धिश्राद्धमिति (२८)।

त्राहे अन्वष्टकादित्राहे। अमावस्यां अमावास्या विहितं पिण्डपित्यज्ञः त्राहञ्च, तत्र दितीयं अमावस्यात्राहं। पिण्डान्वाहार्यकं त्राहं चीणे राजिन शस्यते दति कन्दोगपरिशिष्टात्। पर्युदासानुपपत्ति रिति रामावस्यादित्राहस्य पुनर्यज्ञविवाहयोरित्यन्तयत्यानुक्तलात् (२८)।

अयोगवाससमन्वयः। भविष्ये, उपावृत्तस्य पापे-भ्योयस्त वासोगुणैः सह। उपवासः स विद्धेयः सर्वभोग-विवर्ज्जितः । उपावृत्तस्य निवृत्तस्य पापिभ्यः पापकासीभ्यः । मैथिलास्त दोषेभ्य दति पठित्वा दोषेभ्योराग-देष-सात्-सर्धादि-निषिद्वात्मकाधर्क्षभ्य दू खर्घमात्तुः। गुगानाह गोतमः, दया-सर्वभूतेषु-चान्ति-रनमूया-गौच-सनायासो-मङ्गल-मकार्पण्य-मस्पृहा चेति कुर्व्यात्। लचगान्याह बहस्पति:। परे वा वस्तुवर्गे वा सिते देष्टरि वा सदा। श्रात्मवद्वत्तितव्यं हि द्यैवैषा प्रकीर्त्तिता। परे उदासीने। आपत्सु रचितव्यन्विति-कल्पतरी पाठः। आत्मवदिति व्यक्तमाह दत्तः। ययैवातमा परस्तददृष्टयः सुखिमच्छता। सुखदुः चानि तुल्यानि यथात्मनि तथा परे। वहस्पति:, वाहेर चाध्यात्सिक चैव दुः वि चोत्पादिते कचित्। न कुर्यात न वा इन्ति सा चमा पश्कीर्त्तता। न गुणान् गुणिनोहन्ति स्तीति सन्दगुणानि । दोषेषु रमते सानसूया प्रकीर्त्तिता। अभच्यपरि-हारसु संसर्गश्चाय निन्दितै:। खधर्मे च व्यवस्थानं

उपवास समन्वय उपवासगदयोगार्थः। वासःस्थितिः सत्तेति यावत्, श्रमेनोपवासस्य भावरूपत्वं, गुणैःसह सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन गुणैर्विक् शिष्टः, भोगोभोजनादि तहर्ज्जनमहोरात्वावच्छेदेन। श्रात्मवदिति तुच्यत्वं स्नेहास्पदतया। तुच्यानीति यथा श्रात्मसुखे इच्छा तथा पर् सुखे, यथाश्रात्मदुःखे हेषस्तथा परदुःखेऽपीति, श्राध्यात्मिके श्रन्तःकर्ण। ह सुप्यति दुःखोत्पादकाय न वा हन्ति तं दुःखोत्पादकं ययावुद्धा सा

शौचमेतत् प्रकीर्त्ततं। शरीरं पीडाते येन सुशुभेनापि कर्मगा। अयनं तज्ञ कुर्जीत अनायासः स उच्यते। प्रशस्ताचरणं निखमप्रशस्तविवर्जनं। एति मङ्गलं प्रोत्तस्विभिस्तत्त्वदर्शिभिः। स्तोकादि च दातव्यमदी-नेनैव चात्मना। अहन्यहिन यत् किञ्चिदकार्पे एवं हि तत् स्मृतं । यथोत्पन्नेन सन्तोषः कर्त्तव्योऽप्यल् पवस्तुना । परस्याचिन्तयित्वार्थं साऽस्पृहा परिकीर्त्तिता। पुराणं। तद्यानं तज्जपः स्नानं तत्कयायवणादिकं। उपवासक्षतो होते गुणाः प्रोत्ता मनीषिभिः। सर्वभीग विवर्ज्जितः शास्त्राननुमतनृत्यगीतादिमुखरहितः। मैथिलाः, वृड्यातात्वी भीगविशेषान् प्रतिप्रसूते यथा, गम्धालङ्कारवस्वाणि पुष्पमालग्रानुनेपनं, उपवासेन दुष्येत दन्तधावनमञ्जनं। गौड़ीयस्मृतिः, उपवासे तथा श्राहे न खादेइन्तधावनं। दन्तानां काष्ठसंयोगोदहत्यासप्तमं कुलं, अवयोगी उवरः दन्तानां काष्ठसंयोगीनिषिडः पर्णा-दिना दन्तधावनिमिति विरोधं परिजाहारिति वदन्ता नज्यं व्याचक्षः (३०)।

च्यमा इत्यर्थः, यद्वा सा कोपाय्यभावः। हन्ति अपलपति, अन्यदोषेषु अत्यदोष अवगिदिषु। अत्यन्ति मित्यस्य पौद्यते इत्यनेनान्वयः, तन्न कुर्व्वतिति अत्यन्त्यगरीरपौड़ान्यतिरिकेण ग्रभकरण मनायास इति यावत्। सन्तृष्टिरस्पृहा। तद्यानिमत्त्यादौ तत्पदं यद्देवताकोपवास-स्तृत्परं। उपवासकते उपवासनिमित्ताय। ग्रास्त्राननुमतिति तथाच किश्वाये नृत्यगौतवाद्यादिकमित्यादि ग्रास्त्रोक्तं कार्य्यमेविति। नर्ज्यं व्याचक्रुरिति उपवासे उपवासदिने एतद्गस्यादिकं न दूष्येतेन्त्यर्थः (३०)।

तज्ञ, वृह्यगातातपेन, मुखे पर्युषिते नियं भवत्य प्रयतोनरः। तस्मात् सर्व्यप्रयत्नेन अच्चयेद्दन्तधावनसिख-भिधाय तदचनाभिधानेन दोष एवोक्त:। अन्यया पीन-क्तापत्ते:। यञ्जनं रोचनञ्चापि गन्धान् सुमनसस्तथा। पुरायके चोपवासे च नियमेव विवर्जयेत्, दूति हरिवं-गात्, मिताचरायां, गात्राभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं तास्तूलं चानु-लेपनं । व्रतस्यो वर्जयेत् सर्व्वं यचान्यदलरागक्तदित्यनेना-नुलिपनादिवलरागक्तनिषेधाच। अतएव प्रायश्चित्त विवेका-क्रिक्तिः खयमुक्तमुपवासेन हेतुनेति । जीमृतवाहनेनापि उपवासे चेति पठित्वा चकारादनुक्तादिष्वपीति व्याख्यातं, तसार् गर्धतादिवचनं सर्वभोगविवर्जित इतासीव प्रदर्शनं तेन विलासार्थगमादि वर्जनं कार्यो। देवलः, उपवासः प्रण्येत दिवाखापाचमैयुनैः। अताये चाम्बु-पाने च नीपवास: प्रण्याति । उपवासीऽपि नश्येतिति कल्पतक्षाठे चिपनाऽन्यद्तं समुचीयतद्ति विशेषः। चवैद्तै:। चताये नाशे सम्भाव्यमाने। मैथुने विशेष-माइ देवल:। उपवासे तथा यीन इन्ति सप्त कुलानि वै। सीणां संप्रेचणात् स्पर्णात्ताभिः संकथनाद्ि। ब्रह्मचर्यं विषयेत न दारेष्वृतुसङ्गमात्। संप्रेचणात् संकथनादितात्र सरागत्वं संशब्दस्यार्थः साइचर्यात् स्पर्शे-ऽपि तथैति प्रायिश्वत्तविवेकः (३१)।

श्रन्यथा उपवासदिने दन्तवावनस्य कर्त्तव्यतापरत्वे, गन्धादिकं न दूष्येत, इति यदुक्तं तत्राह श्रञ्जनिमत्यादि (३१)।

कात्रायनोऽपि रेत:सेकात्मक' भोगसृतेऽन्यव चयः स्मृतः। तथाच दत्तः; स्मर्गं कीर्त्तनं केलिः प्रेचणं गुद्धभाषणं। संकल्पीऽध्यवसायश्व क्रियानिपत्ति-रेव च। एतन्ये युनमष्टाङ्गं प्रवद्नि मनीषिण:। अनु-रागात् कृतञ्चेव ब्रह्मचर्यं विरोधकं। याज्ञवल्काः, षोड्गर्त्निणाः सीगां तासु युग्मासु संविभित्। व्रह्मचार्योव पर्वाग्यादाञ्चतसञ्च वर्ज्ञयेत्। स्त्रीगां। गर्भधारण योग्यावस्थापलचितः काल ऋतः स च रजी-दर्भनमारभ्य षोड्णाहोराचात्मकः, तिस्मद्रती युग्मासु समासु, राचियहणाद्दिवसप्रतिषेधः। संविभित् गच्छेत् पुलार्धमेवंगच्छन् ब्रह्मचारी भवति, अतोयव ब्रह्म-चर्यां याद्वादिष चोत्तं तत्र गच्छतोऽिष ब्रह्मचर्या-स्वलनदोषोनास्ति पर्व्वाग्याद्याञ्चतसञ्च वर्ज्जयेदिति मिताचरा। अन्याइवासरे यद्भिगमनमुक्तं तद-युक्तं कल्पतक्षृतवच नविरोधात्। यथा याद्यानन्तरं शह्यालिखिती, ऋतुस्नातां तदहीराचं परिहरित् नार्त्तवे दिवा सैयुनं वर्जेत् क्लीवाश्वाल्पवीर्याश्व दिवा प्रसूयन्तेऽल्पायुष-श्व-तस्मादेतिदवर्जयेत् प्रजाकामः पि-तृणां नो इ वै तन्तुं विक्छिन्द्रात् प्रयतेताक्छे-दाय येनाप्रतिष्ठस्तस्मात् प्रतिष्ठाकामः प्रजया प्रति-ष्ठेतीत। नो निषेधे, तन्तुं सन्तानं, अच्छेदाय अविच्छेदाय सन्तानस्य, येन यस्माद-प्रतिष्ठः प्रजा-

रतः सेकात्मकं अपत्योत्पादनाधं ऋत्वभिगमनात्मकं भोगं ऋते

मृत्यत्या श्रेप्रतिष्ठः सन् पतिति तस्मात्तदुत्पत्तप्रये । यतितव्यं (३२)।

विषापुराणं। याद्वे नियुक्तीभुक्ता वा भोजयित्वा नियोज्य च। व्यवायी रेतसीगर्त्ते मज्जयतप्रात्मनः पितृन्। तेन ऋती सक्तद्गमनाद्द्रतादिषु न दोषः स्थात्। एतव पुत्तीत्पत्तिपर्यान्तं, तथाचाचारमाधवीये क्र्रक्षपुराणं, ऋतुकालाभिगामी स्थाद्यावत् पुत्तीन जायते। ऋणा-

भोगं विना अन्यत्र खसुखमात्रतात्पर्थके स्त्रीस्पर्धनादी चयः ब्रह्मचर्थ-चयः (३२)।

विशापुराणवंचने बाइदलस्य नियुक्त इत्यादि चतुर्ष्वन्वयः। आत्मनः श्रामानं पितृ श्रेत्यर्थावोध्यः। याडे नियुक्तः प्रतिनिधीभूतः याडे कत्वेति परणीयं। यदां भीजयित्वेत्यनेनान्षज्यान्वयः। त्यादानं भुक्ता अव यथोत्तवाह्मणः कर्ता, भोजयित्वा प्रचादिः खयमित्वर्थः, नियोज्य प्रति-निधि यादे नियोजा यादं निर्वाह्मिति श्रेषः, इतिवाक्यचत्तष्टयं व्यवायीत्यादिवाचोऽन्वितं प्रतिनिधिकर्त्तकत्राहस्यसे मुख्याधिकारिणी-व्यवायनिषेधस। ऋतुस्नातां तदहीरात्रं परिहरिदिति, साह्यानन्तरमङ्ग-लिखितवचनेन, दुर्मातिर्में युनं यस्तु कुरुते पित्वासरे। रेतोभोजिन एव स्थः पितरस्तस्य सोऽपि चेति क्रियायीगसारवचनेन च सामान्यतः वाडदिननिषेधेन सूचनात्। न च सुख्यनियुक्तयोक्भयसाधारखेन जनोभीजियिला व्यवायीत्युत्त्यैव सामञ्जस्ये पृथगुपादनं किमर्थमिति वाचं तयोदीं बतारतस्थाय पृथगुपादानात् स्वतन्त्रेच्छस्य मुनेः पर्यतु-योगानई लाचे। याडं कर्त्तुभी तुथ याडपूर्विदने व्यवादवर्ज्जनं यडा-क्रिमिति तिहिने तयोर्थ्यवाये आहहानिर्व्वगुण्यं विति विवेचंत्र। नियुक्ती निमन्त्रिती भुकाविति वाकारानिमन्त्रेणं विनायाद्वीत्तरं तदनं भुक्कोति नियोजा भोजयित्वेति व्याक्यान्तरं वाकारात् निमन्त्रणादि कमन्तरेण कुश्मयवाद्मणपचलाभात् निमन्त्रणं विना आहं क्वतित वाक्यान्तरं। अथवा नियुक्तोनिमन्त्रितः याद्यपूर्वे व्यवायीत्यन्वयः, पकरणार्थं हि पुष्ठस्थात्यादनश्रुतिः। चतुर्थाइवर्ज्ञनं प्रणाल गुलार्थं चतुर्थीप्रसृत्युत्तरोत्तरां प्रजानिःश्रेयसार्थमि-त्यापस्तस्यवचनात्, तदनिर्धनस्तु सहाभारते, स्नातां

नियोगा निप्तन्त्रा आहपूर्वे व्यवायीति चार्यान्तरं निमन्त्रणन्तु वा साबे अ।रक्षः स्यादितियुतिरित्यनेन निमन्त्रणस्यारकारूपतात् तदनन्तरं विशे-षतो व्यवायनिषेधः श्राडपूर्व्वमिति पूरणात् निमन्त्रणोत्तरं दैवात श्राडा-सम्पत्ती तिह्ने व्यवायिनी न दोष:, अत्र कर्त्त्रह्यसभिष्रेत्य चकारह्यं सुस-क्षतं चकारद्वयेन निमन्त्र गपूर्वं तयोर्थवाये दोषसूचनं, यदा निसन्त्र गपूर्वं व्यवायवर्ज्जनस्याङ्गत्वेपि तदानावङ्गहानिमात्रं उत्तसमुचायकथकारं: एत-निन्दार्थवादय प्रायिक्तावस्थकलाय नतु याडासिडि:, परन्तुभयदिने व्यतायव जीतस्याङ्गलात्तदभावे फलत्रेगुखं, प्रतिनिधेश्च कर्त्ः प्रतिरूपत्या निष्तात्र्यवायव ज्ञानं, तददाव खनं प्रतिनिधिनियोगकर्त्तुर्व्यवायवर्ज्जनादिकं नाङ्गमिति तदभावे च्तिविरह इति दिक्। व्यवायः क्रियानिष्यत्तिरूप स्त वैव व्यवायपद रूढ़े: एवचाध्वनी नोभवेद खः पुनर्भी जी त वायसः। द्युत अने नरोगी स्थात् पाठादायुः प्रहीयते। दानं निष्फलतामिति प्रतिया ही दरिद्रतां। कर्मा कज्जायते दासो मैथुनी भूकरो भवेत्। इति वायुपुराणवचने मैथुनपदं स्त्रीसारणादिपरं, एतचीथुनमष्टाङ्गमित्यनेन तवापि मैयुनपदगीणतास्वीकारात् तवाष्टाङ्गलमष्टविधलं तेन तदेक-स्यापि ब्रह्मचर्यघातकलं तब सारणादिसप्तानामनुरागकतले दोषलं नान्यया क्रियानिष्यत्तेस्त सर्वयेव दोषत्वं अनुरागत्वच सभोगेच्छाविशेषा-धीनतत्साधनताज्ञानविशेषलं अधीनलच साचात् परम्परया तेन संशोगे च्छाविरहृद्शायामपि तद्धीनज्ञानजसंस्कारजमपि ज्ञान-मनुरागपदवाचं न्रेयं न चाष्टाङ्गभैयुन एवानुरागक्ततवविशेषणं अनु-रागक्तत्रचैतदित्यनेनोक्तमिति वाचं तत क्रियानिष्यत्तावनुरागक्तत्व-मुक्तकालीनेतरवेत्यव तात्पर्यात् यादस्यले ऋतुकालीनमपि त्यच्य-मिल्युतां, यत मिताचरायां याददिने ऋलभिगमनमुतां तित्रवकाश-स्थलपरं अतएव ग्रङ्गलिखितवचने तदहोरातं परिहरिदिख्तां सम्भावित-

चतुर्यदिवसे रावा गच्छे दिचचगा:। शङ्कः, शुद्धा भर्त्तुर्थः तुर्थेऽज्ञीति (३३)। अधैकादशीभोजननिन्दा—

विषाधमीत्तरे, एकाद्यां न भुजीत पचयोत्तर्भे योरिष। एकाद्यां हि भुजानो विषालोकाच्यती भवेत्। तथा, प्रतिग्रामं स भुङ्के तु किल्विष भवेत्। तथा, प्रतिग्रामं स भुङ्के तु किल्विष भवेत्वर्ममं। एकाद्यां दिज्येष्ठ यो भुङ्किऽतं दिजोमनाक्। भविष्ये, यानि कानि च पापानि व्रह्मह्यादिकानिच। अन्नमाश्रित्यं तिष्ठन्ति संप्राप्ते इरिवासरे। अघं स कैवलं भुङ्के यो भुङ्के हरिवासरे। तिद्दिने सर्ज्ञपापानि भवन्त्रान्नाश्रिकानि च। सनत्कुमारः, मद्यपानान्मनियेष्ठ पातेव नरकं वजेत्। एकाद्या

रात्रान्तरगमनस्थलाभिप्रायिणिति कोच्यं। पित्रिभः सह मज्जतीति अवेदं तत्त्वं (३३)।

यस्तामोगुणै: सहित्यत वासपदमहोरात्राभीजनं खचयित अन्ययाऽव्या-वर्तकतापत्तेः, एवचाहोरात्राभोजनमेव मुख्यविग्रेष्यतयोपवासपदार्थः, दोषवर्ज्ञनं गन्धमात्यादिभोगवर्ज्जनच्च वैधोपवासेऽङ्गं गन्धमात्यादेरेव भोगत्वेन विवरणात् अतएव उपवासपदाहोरात्राभोजनपदयोः पर्या-यतामभिप्रत्य एकादश्यां न भुज्जीत इति कचिन्निर्दिष्टः कचिच्च एकादश्यामुपविद्यति, स चोपवासः साङ्गचेदत्रतं तत्र च सर्ज्ञा-ङ्गोपतत्वे मृख्यफलकः सर्ज्ञतेकादश्यां भोजनिन्दयाहोरात्राभो-जनस्यैव नित्यत्वं वोधयति। फलजनकत्वाच्च न निष्धक्रपता विण्य-देशमन्तरेण नियममन्तरेण च केवलाहोरात्राभोजने जातेऽिय भोजन-निवस्यनं पापं नोत्पद्यते किन्तु व्रताकरणनिवस्यनं पापमृत्पद्यते व्रतस्य नित्यत्वेन वोधनात् पुण्यमिष खल्यं जायते प्रधानस्य उपवासस्य कातत्वात् अतएव सर्व्यं स्रोजनस्यैवातिश्यनिन्दाक्रतेति स्मर्थत इति, दोषश्वतौ नित्यत्वं वचनलव्यं नातिक्रमेत् न त्यजित् इत्युभयतापि नशा इकामस् पित्रिभिः सह मज्जित। अत दोषश्रुतिर्नित्थलं सत्एव यदकरणे प्रत्यवायस्ति व्यक्तिस्युक्तं। तथाच,
नित्यं सदा यावदायुर्ने कदाचिदितिक्रमेत्। उपेत्यातिक्रिभे दोषश्रुतेरत्यागदर्भनात्। फलाश्रुतिर्व्वीप्यया च
तिव्रत्यमिति कीर्तितं। द्रयष्टधा नियत्वसाधकं।
स्रतप्व माधवाचार्थ्यणावैवोगवासे सर्व्वमुदाहतं ग्रत्थगौरवभयाद्व लिखितं। यत्तु फलाश्रुतेर्नियत्वमभिहितं
तत् फलाश्रुतौ विश्वजिद्वायात् स्वर्गः कल्पा द्रयनेन
विक्थितेति (३४)।

स च न्यायोयया, विखिजिता यजेते यादि श्रूयते, अवाश्रुताधिकारं लिङ्गप्रकरणाल श्राधिकारची दाहरणं, निषेधे हि सामर्थ्यात् प्रवत्तिक्योऽधिकारी लक्षते

वलवदिनष्टाननुविश्वाभावस्य बोधनाद्वाचिनिकं, निल्लादिपद्घिटिते तु तत्पदवैयर्ष्यभिया निल्ललं कल्पंग फलायवणस्थले च दृष्टसाधनता-द्वानं विना प्रवृत्त्यन्ययानुपपत्त्या प्रत्यवायानृत्पत्तिकृपेष्टसाधनत्वकल्पना-नित्यत्वं (३४)।

यत न्याय इति विखिजिदिधिकरणन्याय इत्यर्थः, विखिजिता यजितेतीति, एतइ। स्वान्य सुदाहरणि सित्यन्यः, उदाहरणं यधिकार्यध्याहारे दृष्टान्तः, तयाच यद्यद्यताधिकारत्वे सित लिङ्गप्रकरणाल्याधिकारं वाक्यं तद्ध्याहार्य्याधिकारकं, यथा विखिजिता यजित इति युतिवाक्यसित्यर्थः ययुताधिकारिसत्यादिद्वयं तद्दाक्यविशेषणं ययुतोऽधिकारो यत्र तद्दिकारवोधकाद्दाभावात् लिङ्गते व्यज्यतेऽनेनेति लिङ्गं ज्ञापकं तेन प्रकरणेन चाल्याधिकारच्च यत्र लिङ्गप्रकरणयोरभावज्ञापनाय, लिङ्गप्रकरण्योरभावज्ञापनाय, लिङ्गप्रकरण्योरभावज्ञापनाय, लिङ्गप्रकरण्योरभावज्ञापनाय, लिङ्गप्रकरण्योरभावज्ञापनाय, लिङ्गप्रकरण्याधिकारस्थलमाह निषेधे हीति, सामर्थादयुताधिकारत्वे सित कालविश्वेत्राविच्छत्रतयानुक्तवैदिक्रलिङ्गीन्वितनज्पदतात्पर्यविषय्यार्थलादिक्षप्रलिङ्गात् प्रवृत्तिमत्साध्यत्यस्य निषेधे लाभात्। प्रवृत्तिक्रयः यार्थलादिक्षप्रलिङ्गात् प्रवृत्तिमत्साध्यत्यस्य निषेधे लाभात्। प्रवृत्तिक्रयः

अङ्गविधिषु प्रकरणादिति न विन्त्रोऽधिकारी, एवं सतीह सन्देह: किं नियोज्योऽध्याह्रियतां नविति (३५)।

अव च लोके हारमिखादी क्रियया विना कारकाका-ङ्वायामन्विताभिधानापर्ध्यवसानाद्युक्तोऽध्याहारः। दृह तु विषयेण कार्ध्यस्यान्विताभिधानपर्ध्यवसानादनध्या-हारे प्राप्ते, उच्यते अवाध्यभिधेयापर्ध्यवसानं हारांभि-

प्रवत्तयोग्याधिकारी लभ्यते दत्यर्थः, यहा सामर्थ्यात् निविध्यमानिकया-योग्यलक्ष्पिलङ्गात् लभ्यतेऽनुमीयते, न चिन्त्राो प्राप्तः, नियोज्यः विधिनियोज्यः विधिना नियोज्यते प्रवर्त्तये विधिजन्यप्रवर्त्तकज्ञानवान्, प्रवर्त्तकज्ञानं त्रमुकपालकामनावतो समेदं कार्य्यमितिवोधः, तत्र विधिना-कार्य्यत्वं वोधनीयं तदेक्तदेशक्ततौ पालविशेषकामनाविशिष्टस्थान्वये तदुत्तरकालं त्रात्मनः कामनावत्त्वं प्रतिसन्धाय कामनावतो ममेदं कार्य्यमिति प्रवर्त्तकज्ञानं भवतीति परम्परया पालकामनावान् विधि-नियोज्यः सोऽत्राधिकारी नविति सन्देहः त्रथ्याङ्गियतामिति, सोऽता-ध्याहार्य्योनविति सन्देहः (३५)।

लोके लोकिके कारकाकाङ्घायां कारकपदोत्थापितिक्रयान्वितस्वार्धवोधेच्छायां सत्यामिति ग्रेवः, क्रियया विना क्रियोपस्थिति विना
ग्रान्वित।भिधानापर्थ्यवसानात् ग्राकाङ्कितग्राव्दवोधानिर्व्याङ्चात्, ग्रध्याहारः पिधेहीत्यादिक्रियापदाध्याङ्चारः इह तु विश्वजिता यजेतित्यादीतु,
तु भिन्नक्रमे, विषयेण ग्रन्वययोग्येन विश्वजिदादियागरूपेण कार्यस्य
लिङ्घीपूर्वं स्य ग्रन्विताभिधानपर्थ्यवसानात् ग्रन्विताभिधानेनान्वयवोधेन विश्वजिद्यागविषयकं कार्यभित्याकारकेण पर्य्यवसानात्, ग्राकाङ्कितग्राव्दवोधसमाप्तः ग्रनध्याङ्चारे फलविग्रेषकामादिरूपनियोजग्रस्य
तद्वोधकपदस्य वाऽनध्याङ्चारे प्राप्ते पूर्वं पच्चिते। उच्यते सिङ्चान्त इति
ग्रेषः। ग्रत्वापीति ग्रभिधेयापर्थ्यवसानं ग्राकाङ्कितग्राव्दवोधानिष्पत्था
ग्राकाङ्काया ग्रनिष्ठितः। हारेति हारमित्यत्व पिधानाद्यध्याङ्चारं विना
ह्वारस्य ग्रभिधानापर्थ्यवसानं ग्राकाङ्काया ग्रनिष्ठत्तिति ग्रभिधेयापर्थित्रसानद्वारा ग्रभिधानपर्थ्यवसानमेविति पाठे सुगमं। नियोजगा-

धानापर्यवसानमित्र, कार्यं हि साध्यत्वेन क्रतिनि-रूयं नरव्यापारक्षपा च क्रतिः सा यथा खसाध्यधात्वर्ध-निक्ष्या एवं खात्रयनरनिक्ष्या च तदेव क्रतेः कर्तापि कार्ये क्रतिहारा खसम्बिधित्वेन निक्षपक द्रति तमन्त-भीव्येव नियोगधीः (३६)।

एवच्च रयोगच्छतीत्यादावाख्यातस्य व्यापारेलचणा।
तद्तां भट्ठपादैः, स्नीत्वाभावेऽपि श्रद्धादी टावादिप्रत्ययोयया। प्रयुच्यते तथाख्यातं यत्नाभावेऽप्यचितने।
वोद्रश्वादिगतं यत्नं रयादावुपचर्यया। उपपाद्यः
प्रयोगोऽच मुख्यार्थानुपपत्तितः। न चासाववोड्रात्मनः
कार्य्येण सम्बद्धः स्वतक्षेन सम्बद्धते स्वसम्बन्धिकार्यवोद्वा च नियोज्य, द्रति सोऽध्याद्वार्य द्रति स्थिते चिन्ता

ध्याद्वारितवर्त्वाकाङ्कां दर्भयित कार्यं होत्यादि क्रतिनिरूप्यं क्रतिसाकाङ्कां कार्यं ज्ञाते किमस्य साधनमित्याकाङ्कोदयात् नरव्यापाररूपेति, क्रतिस नरसम्वेत नरकार्य्यत्यर्थः। सा क्रतिः स्वसाध्यधात्वर्थनिरूप्या स्वसाध्यत्व-क्ष्यसम्बन्धशालिधात्वर्थसाकाङ्का एवं समवेतकार्य्यत्वेन खात्रयनरनिरूप्या स्वात्रयनर साकाङ्का। क्रतिरत्यस्य निरूपक दत्यनेनान्वयः क्रतिपदं कार्य-परं एवच्च कार्यक्रतिकर्तृणां परस्परसम्बन्धिनां परस्पराकाङ्का दर्शिता तं कर्तारं नियोगवीः कः यात्रित-क्रतिरूप्यापारान्यवोधः (३६)।

एवच कर्नुर्यापारदारा कार्य्यनिरूपकते च व्यापारलच्णा अन्यया कर्नुक्रिययोर्यापारसाकाङ्गलेन व्यापारोपस्थिति विना मान्द्वोधा पर्य-वसानात्। स्त्रीलाभावेऽपि टावादिप्रत्ययवाच्य योन्यादिमच्लरूप स्त्रीला-भावेपि मास्त्रीयस्त्रीलादी लच्चण्या टावादिप्रत्ययो यथा प्रयुच्यत इत्यर्थः, मास्त्रीय स्त्रीवच्च मास्त्रकारीय स्त्रीपदपरिभाषाविषयलं। यत्नाभावेऽपि व्यापारल वण्या प्रयुच्यत इत्यर्थः। मतान्तरमाह रथादावुप-च्याया-स्त्रसमवायास्त्रवाह्मवन्त्रसण्परम्परासम्बन्धान्तितमभिप्रेत्र, मुख्या-

किं सर्वेषामध्याहार उत एकस्येति तनाविश्रेषात् सर्वेषामिति प्राप्ते, उच्यते, एकेनाकाङ्काशान्तेरेक स्थेत्येवं स्थिते विचारः किं यस्य कस्यचिद्रियोज्यस्याध्या-हार उत स्वर्गकामस्येति तनाविश्रेषाद्दियमेप्राप्ते (३०)। उच्यते, स स्वर्गः स्थात् सर्व्यान् प्रताविश्रिष्ठता-

र्यानुपपत्तितः मुख्यार्थस्य साचात् सम्बन्धेन वाधात् यदा तात्पर्य्यविषय-बीबानुपपत्तेरिति, ननु भवतु कर्ताकाङ्क्या शीचादिमान् अध्याद्वार्थ इतात ग्राह नचेति नहीतार्थः ग्रवोदात्मनः प्रवर्त्तकज्ञानरहितस्य स्वतः सक्षतः कार्योण सम्बन्धः क्रतिसाधात्वादिक्षपस्तेन स्वतः सम्बन्धा-भावेन, यहा खत इत्यननारं अत इति प्रणीयं खतःसम्बन्धाभावादिति तदर्धः तेन कार्येणिति, खसम्बन्धिकार्यवोद्या च खसम्बन्धितया खक्ति-साधातया कार्यस्यापूर्वस्य यागादेश वोडा च नियोज्यः फलविशेष-कामनावान् सम्बद्याते इतानेनास्यानुयः, सम्बधाते शाव्दवीधीःन्वीयते, तथाच फलविशेषकामस्यानन्ये कार्याननुष्ठानप्रसङ्ग इति भावः, स फलविशेषकामनावान्, यदा ननु नियोज्यान्वयस्वीकारेऽपि कथं तद्धाः-हार इतात याह नचेति, यवीदात्मन याकाङ्कितस्यात्मनः कर्त्तः कार्येण सम्बशःक्रतिसाधात्वरूपः खसम्बन्धिकार्य्यवोद्या नियोज्यस स्वतः प्रागुप-स्थितिं विना तेन कार्योण सम्बध्यते इति स नियोज्योऽध्याद्वियतः इत्यर्थः। इर्त्यज्ञवर्णं फलविगेत्रकामस्यानध्याहारे फलविगेषस्यानुपस्थिती लिङ्येतया योग्यतारू अवेन वा फ्राजिशेशाला केष्ट्रसाधनत्वस्य यागेऽला-भात् प्रेवावतां यागे प्रवित्ति स्थादिति विधिरननुष्ठानल चणाप्रामाण्या पतिरिति। इति स्थिते इति सिंडे नियोज्याध्याहारे चिन्ता संगय: सर्वेषां सकलप्रलकामानां एकस्य एकप्रलकामस्य। विचारः विकल्पः। अविशेषात् विनिगमकाभावात् (३०)।

उचते इति, नियोजप्रविशेषणतया यत्कल्पं पत्नं स स्वर्गः सर्वान् सुखविशेषान् प्रत्यविशिष्टत्वात् सक्तस्य विशिष्टत्वस्य विशेषस्य वैलच्छास्याभावात् यद्वा सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात् सकलसुख-निरूपितसाजात्यादिति । तयाच पत्नान्तरेषु यादृशं सुखं तत्तज्ञातीय- दिति जैमिनिमूचात् खर्गकामएवाध्याहार्यः विशेषोहि न गम्यते पुरुषाणां सुखाभिलाषित्वात् दुःखनिवृत्तेरिय तत्रैवान्तर्भावात् दुःखनिवृत्तिम्तु न सुखाविना भूता सुषुप्ती सत्यामि तद्यां सुखजन्मादर्भनात्। अनव-च्छित्रसुखस्य खर्गत्वात् तद्य च सर्वसुखविशेषान् प्रत्य-

सुखानां खर्गे सभावादितिस्त्रार्थं विद्याति विश्वेषोहीति, खर्गकस्पने विनिगमनं हीत्यर्थः। सुखाभिलाषित्वात् अन्येच्छानधीनतया सुखे-षूत्कटे ऋाव खात्, ननु दु:खाभावेऽपि खतइच्छा भवतीति तत्र कयं मीत्कटेच्छा दलात ग्राह दु:खनिव्यत्तेरपीति, तत्रैव सुख एवान्तर्भा-वात् सुखे सत्यपि सत्वनियमात् न सुखाविना भूता सुखंविना तिष्ठतीति, ननु तावता खर्गे कथिमच्छा तत्राह अनवच्छिनेति अनव-क्छित्रत्वप्तपि स्वर्गेजल्पने विनिगमकं वोध्यं केचितु स्वार्थमेवमाहुः सर्वान् पुरुषान् प्रति अविशिष्टलात् स्वतद्यः विषयलेनाविशेषादिति । तद्रक्तमिति दु:खानविच्छन्न सुखस्य स्वर्गत्वमुक्तमित्यर्थः। न दु:खेन सं भिन्नं खावच्छेदकग्रीरावच्छेदेन खसमवाधिसमवेतत्वसम्बन्धेन दु:ख-विद्वतं न च यत हितिचणावस्थायिखण्डश्रीरावच्छेदेन सुखमेवोत-पम्नं न तु दु:खं तदनन्तरं तच्छरीरविनाशेन तदवयवारव्यश्ररीराव-च्छे देन दु:खमुत्पनं यस्य तस्य तत्खण्डभरीरावच्छिन सुखस्यापि स्वर्ग-लापत्तिरिति वाचं, स्नावच्छेदकश्रीरपदेन स्नावच्छेदकहत्तिश्रीरल-व्याप्यजातिमतोविवचणात् सावच्छेदकग्रीरवित्तद्रव्यत्वादिकमादाया-सभाववारणाय ग्रारेत्वयाप्यत्वं जातिविग्रेषणं ताह्यी जातियावस्था-भेदेन स्थूल क्र श्रश्रीरहत्तिदेवदत्तत्वादिक्षा, एवञ्च निक्ताखण्डश्ररीरस्थ तत्पूर्वापरकालीनतत्पुरुषीय दु:ख वच्छेदकग्ररीरवित्रगरीरवव्याप्य-जातिमत्वात् न तदवच्छेदेनोत्पनमुखेऽतिव्याप्तिः। न च ग्रस्तमनन्तर-मिति अनन्तरं गरीरपाप्तरनन्तरं न च यस्तं सुखाभावावच्छे दक्षग्रीराव-च्छित्रभितं ग्रीोत्पत्तिकाले खर्गीयग्रीरे सुखाभावावच्छेदकत्वेनासभव-वारणाय श्रीरप्राप्तरनन्तरमिति स्वाययपुरुषसम्बन्धवैशिष्ट्ररावच्छेदेन सुखाभावात च्छे दक्रमरीरावच्छितं यत्तदन्यदिति पर्यवसितं स्वपदं भेद-

विशिष्टत्वात् विशेषे च मानाभावात् खर्गएव नियोज्य-विशेषणं खादियुत्तरमीमांसायां कल्पतमः। तदुत्तं, यद्र दुः खेन संभिद्रं नच ग्रस्तमनन्तरं। अभिलाषोप-नीतं यत्तत् सुखं खः यदास्पदमिति। तस्मात् फलाण्युति-मात्रात् क्यं नियत्वमिति चेत्, उच्यते, फलाण्युती नित्रप्रकरणे नित्रत्वं काम्यप्रकरणे काम्यत्वमिति। एवञ्चेकादणीव्रतस्य नित्रत्वात् किञ्चिद् इवेक ख्येऽिप प्रधा-नीपवासादेराचरणं यावज्जीवाधिकरणन्यायात् (३८)।

प्रतियोगियरं एतेन खर्गश्रीरे सुखायोगव्यवच्छेदलाभः। पनी । अभिलाषमावेणीपनीतमृत्पन्नं न तु प्रयासेन। न च वनिता-दिप्तभागजनितसुखस्य वनिताद्यधीनत्वेन कथमभिलाषमात्रोपनीतत्वं स्वर्गसुखेषु इति वाचां, वनितादेरप्ययत्नलभ्यत्वात् स्वर्गजनकादृष्टस्य प्रतिवस्वकलादेवतवान्तरीयकदुःखादेरनुत्पत्तिरतएव न तत्र पातभीरल-गङ्गा। दु:खमपीति यदायोतित्ततयैकतमस्य स्वर्गपदार्थतावच्छेदकल-सभावस्त्यापि कामनाया श्रीत्कव्यप्रयोजकतया मिलितस्य धर्मावय-स्यैव खर्गपदार्थतावच्छेदकालात् एवं दु खासंभिन्नसुखमुहिश्य यागादी क्षते विच्छेदेन तादृशसुखीत्पत्यापि कामनाविषयसिद्यापत्तिरेवं प्रय-मतः सुखं तद्यवहितच्णे दुःखं तद्यवहितच्णे सुखमितिरीत्या-सखवारासम्पत्थापि दितीयविशेषणविशिष्टस्य सभवस्त्याऽभिलिषितसुखा-नुत्पत्था दुःखानवच्छित्रनिक्षष्टसुखधारा स्थादिति विशेषणचयोपादान-मिति। नित्य अकरणे नित्यत्वमिति नित्यप्रकरणीयत्वेन लिङ्गेन नित्यत्वा-नुमानात् नित्यत्रकाणीयवित्तित्वरूपसम्बस्वनया ज्ञानानित्यत्वोपस्थित्या विध्यर्थकार्थेऽन्वया देतिभावः। अत ग्रचितत्कालकीवनादिकं यथा-योगमधिकारिविशेषणतया नियोजातावच्छेदकं वोध्यं का स्यत्विमिति न च सिन्निहितपिंउतकमीग्लरफलमेवानुषङ्गेण विख्निद्यागेऽन्वेतु नि खर्ग कल्प नयेति वाच्यं तत्फलस्य कर्मा। नारेणेव विश्व जिताजनने विश्व-जिता यजितेत्यत्र वाकारकत्यनेन विकल्पार्थतापत्तेरिति (३८)।

सच न्यायोयया। यावज्ञीवसम्निहीनं जुह्यादिति
स्थूयते, तन किं सर्व्वाङ्गी पसंहारे गैवाधिकार उत यावज्ञीवपदेन याविद्धः प्रक्षीत्युपसंहत्तं यदा तदा तावद्विरङ्गैकपेतं प्रधानं कुर्जन्नधिकरोतीति संग्रयः। तन
सर्वाङ्गीपेतस्य प्रधानस्य फलसाधनत्वादङ्गवेकलेत्र फलानुद्यात् सर्वाङ्गीपसंहारद्वति पृर्व्वपद्यः। यन सिडान्तः,
सायं प्रातर्जुहोतीति युतेः सायंप्रातःकालाविक्वन्नं जीवनमिनिहोनस्य निमित्तत्या श्रूयते नत्वङ्गानां, सित निमित्ते
नैमित्तिकसवण्यंभावि चन्यया निमित्तत्वासस्भवात्।
यतोऽशक्याङ्गपरित्रागिन प्रधानं कर्त्तव्यं तावतेव
शास्त्वव्यात् फलसिद्धिति। चत्रपव नित्रानीमित्तिकाधिकारे श्रीधरखासिधता श्रुतिः, यथाश्रम्भयात्या

उपसंहारः सत्य नता, श्रविकारः फलजनकत्वं, फलञ्च प्रत्यवायानुत्-पादादि ।

यावज्ञीवपदेन यावज्ञीवपदममिभव्याहारेण अन्यथा यावज्ञीवकरणेऽङ्गतेक स्रस्यावस्थावित्वेन यावज्ञीवं सर्व्वाङ्गसम्प्रवाग्निहोतस्यास्यानुष्ठानत्वात् तत्वाप्रवित्तप्रमङ्ग इति भावः। अधिकरोति फलभागीकरोति
फलमाधनत्वात् फलसाधनत्वेन श्रुतत्वात्। सर्व्वाङ्गोपसंहार इति, नियतकर्त्तव्य इतिसेषः, जुहोतीति, होस एवात्र वोध्यते नत्वङ्गसाकत्यं
यावज्ञीवमग्निहोत्रं जुहोतीत्युत्पत्तिविध्युद्यापितितकर्त्तव्यताकाङ्कायां
प्रथमतः प्रधानत्योपन्यस्तत्या सायं प्रातर्जुहोतीति श्रुत्या सायं
प्रातःकालाविष्क्रवजीवनसहक्ततस्य होमस्य फलं प्रति निमित्ततावगमा
दितिभावः। नैमित्तिकं फलं। निमित्तत्वासस्थवात् व्यभिचारेण हेतृत्वासभवात्, श्रङ्गविधिस्तु तस्यैव फलप्रकर्षाय श्रुतप्य स्वयाङ्गसवश्यमनुष्ठीयते। श्रुतप्य प्रधानसिद्धौ प्रलसिद्धेरव। यद्यारङ्गद्वादिति, एतेन
शक्याङ्गस्यावश्यकत्वमुत्तं, यथा कथिद्विदित्यस्य कार्याणीत्यत्वान्वयः,

कुर्यादिति। वीधायनोऽपि स्मर्गत, ययाक्यश्चिति तानि मक्यवस्तुनिक्षितः। येन केनापि कार्याज्ञ नेय नितानि लोपयेत्। मक्यं वस्तु निक्षितं येन स तथा। यत्र प्रथमा न लोपयेदितापेत्त्वया, प्रधान मक्याभिधाने गुगायित्रिक्षित्तित्त्र प्रकाणतद्गति न्यायात्, यत्रप्रवातानाणक्षी गीतमः, सनसा नैवं सस्यगाचार-मनुपालयेदायत्कल्पद्गति। तस्मात् सायंप्रातः कालाव-किञ्जीवनमात्रेऽभिन्दोत्र होमोविधीयते। योगियाक्तव्लागिज्ञ, सर्व्यावस्थोऽपि योविप्रः सधीयासनतत् परः। बाह्मण्यात्त् न हीयेत अन्यजन्मनतोऽपिवा। सर्वावस्थोऽपि निन्दितसेवादिकरङ्गति सितात्ता।

येत केनापि प्रतिनिध्यादिनापि प्रकां कर्त्तु महीं वस्तु नित्यकमाङ्गिभूतं वस्तु निरुपितं साधितं येत स इत्यर्थः। निरुपितपदस्य विशेषण्विधक्तंऽि परित्यात धार्षः। प्रधानप्रकाशिधान इति, प्रक्षिः कार्रक् त्रश्चात्र कर्तृष्ट्णं प्रधानेत प्रधानक्षियावाचकधातृत्तराख्वातादिना कर्तृ-कारकाद्यशिवाने गुणगिक्तः गुणोभूतिकयाकारकं धिशहितवत् प्रकाणिते तत्कारकपदोत्तरमनिश्चिताधिकारीयदृतीयादिकं विनापि स्व-कर्तृक्षत्वादिसम्बधेतः गुणोभूतिकयायामन्त्रतेतित्व्यायार्थः, सत्रक् कार्याणीति गुणीभूतिकयायां स्वक्तृंकत्वसम्बधेन दृतीयां विनापि प्रकावस्तुनिरुपित इत्वस्थान्वयेन सामञ्जस्यिति भाषः। सत्र नित्यानि यथा कथिवदित्यन्वयः गुणोभूतत्वाभावात् प्रधानप्रक्रयभिधान इत्वादि प्रमासंगितः, प्रकावस्तुनिरुपितः यथा कथिवदित्यन्वयः प्रमासंगितः, प्रकावस्तुनिरुपितः यथा कथिवदित्यन्वयः विव्यपितः वित्यानि न कोपयिदित्येकोऽन्वयः। वित्यानि न कोपयिदित्येकोऽन्वयः। यया कथिवदित्येकोऽन्वयः। यया कथिवदित्येकाऽन्वयः। यया कथिवदित्येकोऽन्वयः। यया वित्यानि न कोपयिदित्येकोऽन्वयः। यया वित्यानि न कोपयिदित्येकाऽन्वयः। यवाद्यानि वित्यानि कित्यानि न कोपयिदित्येकाऽन्वयः। यवाद्यानि वित्यानि न कोपयिदित्यन्वयः। प्रविद्यानि वित्यानि न कोपयिदित्येकाऽन्वयः। प्रविद्यानि वित्यानि न कोपयिदित्यन्वयः। प्रविद्यानि वित्यानि न कोपयिदित्यन्वयः। प्रविद्यस्य येत्वयः। प्रविद्यस्य येत्वयः वित्यानि न कोपयिदित्यन्वयः। प्रविद्यस्य येत्वयः वित्यानि न कोपयिदित्यन्वयः। प्रविद्यस्य येत्वयः।

सम्यक् गौचाद्यसमयं इति काल्यतकः। अल्याजन्यगतः स्वार्डण श्रूहीअवति ब्राह्मणः चौरविक्रवादितिमन्वा-द्युक्तः। एवञ्च सम्यगाचसनाद्यसमर्थानामधादीनामिष् वित्ये काक्षीण सध्यादाविधिकारः। अत्यव केनापि मुनिना न तेषासनिधिकारउक्तः। किल् क्षचित् काम्ये सर्वणक्ताधिकरणन्यायालेषासनिधकारः (३८)।

स्वत्य तिथिविवेक खर्गकामयुतः सामान्यप्रव-नायाः समर्थ-नरगोचरोपसंहारिऽधादिवचे दर्भवौर्णमा-सादेर्वाधद्रयुक्तमित्रानेन काम्य एव दर्णादौ विशेषोऽभि-क्तिः। एवञ्च ॥ निये वाक्यान्तरयुतसा खर्गादेने भायात्वं सर्वदा तस्येष्टत्वासस्थवात्। तथाहि स्वविवेकिनामेव

भर्कत नित्ये न प्रतिनिधिविधिरित स्चितं सन्दरीचारी प्रतिनिधाश्रवणात्। प्रश्रवस्तुनिक्धित दत्युक्तेः श्रव्याङ्गानुष्ठानस्यावश्यकत्वं, तथा
बज्जिक्षणानर्द्वं प्रतिनिधासम्पत्ती नित्यकर्मणो लोपोऽपीति वोध्यं
श्रव्यवस्त्रातः श्रत्मेवा श्रत्या विप्रचलविश्वासनन्तरभवाः शृद्धाः तज्ञवस्त तज्ञातिं तत्तुः तामिति यावत्, श्रन्यया सन्ध्यादावनिधकारापत्तेः गतः प्राप्तः। सर्वश्रत्वाधिकारणन्यायादिति,काम्ये सर्वश्रक्तिमानिधकारीति स्त्यं, तदर्थस काम्यापूर्वे प्रति तत्तदङ्गानां हितुत्वेन तदेकस्यास्यभावे काम्यापूर्वि। निष्यतेः सर्वाङ्कस्य व्यप्रधानानुष्ठानश्रक्तोऽधिकारीति (३८)।

अ अतपनिति क नित्पाउ: ।

तिदक्श विवेकिनां पुनः खर्गेऽपि पातभीकलात् चिय-णोर्नास्ति निष्कृतिरिति न्यायाद्वेयवृद्धिः । ततस्य सर्वा-वस्यसाधारणेक्शगोवरतया उपात्तदृरितच्चयण्वभाव्यः । यद्यपि विहितस्याननृष्ठानाद्विन्दितस्य च सेवनात्। त्रानग्रहाचेन्द्रियाणां नरः पतनस्किति । द्रतियाद्ववल्ला-वचनादकरणभाव्यनिष्टपरिहारार्थत्वं सन्भवति (४०)।

तथापि तत्ति विवाकोषु भावनायाएव विवेयतात्राः किं कीन क्यमित्यपित्तितां भवयवत्ता द्वाद्यं विना
विधिक्षतत्वासि देस्तत् कालीनाक्षरण जन्यप्रत्यवायपरिहारस्य
स्वप्रतियोगिनः कदा चिद्यन्त् पत्त्या आविष्णा स्वयाना भाव्यत्या स्वयाना स्वया

पातभीक्लात् पातभयजन्य दुःखिमिश्चितलात् चियिणोरिति पश्चमी तेन चियणोः सकामान निक्नतिर्गालन्तिकदुःखिनिइत्तिरित्यर्थः। यहा चियणोर्ज्ञनस्य न निक्नतिरिति। भाव्यः फलल्वेनानितः अधिकारि-विमेत्रणकामनाविषयस्यैव भाव्यलात् तत्रच स्वर्गादिकामनाया अधि-कारिविमेत्रणल्वे तस्या अप्रार्व्व दिकालात् असार्व्वतिकत्वाच तदिरह-दमायामधिकाराभावेन नित्यकस्यणोयावज्जीवकर्त्व्यतानुपपत्तिरिति पाप-चयः सर्वदा सर्वजनकामनगोचरतया भाव्य इति भावः (४०)।

यमरण इत्यत्र समस्ययीः प्रयुक्तालं तथाच विहिताकरणप्रयुक्त भाव्य-निष्टपरिहारस्य इष्टलं इच्छावित्रयत्वेन भाव्यत्वसित्यर्थः, भावनाया भावय-तीति व्यापच्या फलीत्पादिकायाः प्रवृक्तिविधयत्वात् विधिजन्यवीधविष-यत्वात्, तस्यायेति, कि भाव्यंक्षेन करंणेन कथं केन प्रकारिण इत्य-पेचितं इत्याकाङ्कितं इत्याकारकाकाङ्काविषयीभूतसिति यावत् अंगत्वयं फलकरणितिकर्त्तव्यतारूपमंग्रत्वयं तहत्त्वं नियसतस्तदनृथित्वं, भाव्यं विनित्तं, भाव्यं उत्पाद्यक्तं। विविद्धयतासिदेः विधिजनम्बोधविषयत्वासिदेः। ननु प्रत्यवायपरीहार एव भाव्य इत्यत्त आह तत्कालीनिति, निता धांत्वर्षादेभां व्यत्यायोगाद शुतफ तेषु वि खि जिदादिषु दुरित चयस्य दुरितानिष्टजनका जो गाधिक क्षाविषय ज्ञातन्त्रा-गेन निक्षाधिक क्षाविषय खर्ग स्थेव भाव्यत्वावधरणेऽ पि नाच तथिति, कर्न्युणां कदाचि इगवद नुग्र हा है राग्योत् गर्मी

काभीविहितकालोनेन अकारणन निताकामीकारणन यः प्रतावायः तस्य यः परोहारोऽभावस्त स खप्रतियोगिनः प्रतायायस्य, कदाचिदनुत-पत्येति, नितातयेतगादि, घंसप्रागभावरूपत्वासस्यवादितिशेष:, भाव्य-व्यायोगादुन्पाय वासकातात्, ननु धात्वर्य एव भाव्योऽस्तु तत्राह विधीति, विधिप्रतायेन लिङाहिना दृष्टस्यैव स्वतद्च्छाविषयस्यैव भाव्य-लात् भाज्यतया त्राकाङ्कितलात् धालर्थसा सम्यावन्दनादेभीव्यलायी-गादिति, इष्टवाभावित भाव्यवायोगादितार्थः, ननु प्रतावायपरी हारसा नित्यं वेऽपि तस्योत्तरकालान् वृत्ति रूप वैभिकसाध्यत्वसादाय-भाव्यत्वसम्भव स्त्यापि उत्पादनक्पविध्यर्थेकदेशे उत्पत्तावन्वयासस्यवान्तस्य भाव्यत्वं । उत्पत्तराद्यचणसम्बन्धरूपत्वात् एवं अभावस्य भावोत्पत्तावहेतु-त्वात्, निताक भीका गंन पापजनकं किन्तु पापज्ञापकं अकुर्व्वन् वि-हितं कर्मितात्र श्रुष्टप्रतायोलच्णार्थे तेन विहितकस्मीकरणज्ञाप्यं पतन-मिति तत्नानुयवोध इति, पापचय एव नित्यक्षीफलं न च तत्र प्रायिक्षन-पदंशीचा वापतिः निमित्त नियाधी गपापचयसात्र साधनस्य प्रायसित क्षपत्वात् निर्निमित्तमुपात्तदुरितचयसाधनत्वं नितरलचणमितरादिक-मालोचनीयं। ननु विखिजदादी दुरितचय एव कयं भाव्यतया न स्वो जत इतात आह अयुतफ लेष्विति, दुरिते यदनिष्ट त्वमनिष्टजनक-त्या देषस्तरुपाविका तदवीना या दक्का तदिषयत्वात् स्वत दक्का-वित्रयत्वाभावादितार्थः। तिरुपाधिकेच्छेति, अन्येच्छानधीनेच्छा इतार्थः। नाव तथिति, अव ितास्थले न तया न स्प्रादिभी व्यत्वसम्भवः उक्त युक्तेरिति भावः। उपसंहरति कर्तृणाभिति, भावनायां भावनैकदेशोत्-पत्तौ विधाने विधिवाक्ये, अत सन्ध्यावन्द नाकरणकदुरितच्योत्पादक-प्रवित्तमान् दुरितचयकामी विज इतानुयवोधः सन्यामुपासीतिति युती जायते तत लिङोभावनायां शत्या उत्पादक यापार श्राख्यातसामान्य-

खर्गेऽभीक्कानिष्ठत्तेर्यावक्षीवानुष्ठेयकाम्मसु खर्गस्य भाव्य-त्वानुपपत्त्रा सर्वस्य सर्व्यदेक्कागोचर-उपात्तदुरितव्य-एव भाव्यः कल्पाते। धात्वर्यक्षपाणि भावनायां केने-त्यपिव्यतकरणत्वेनान्वीयन्ते। विधाने चानुवादे च यागः करणमिष्यते, दूति न्यायात् करणस्य कर्तृव्यापार-लच्चणस्थेतिकत्त्व्यताद्धोपकारकव्यापारं विनाऽसम्भवात् कथमित्यपेच्चित्रयुत्यादिसमपिताङ्गजातान्येव भाव्यं भाव-यन्तीति (४१)।

तत्र पूर्वजन्मार्जितानामिहापि जन्मिन । पूर्वजन्मा-

प्रस्ता प्रवित्तवार्थः प्रवृत्ती उत्पादकव्यापारस्याभेदानुयात् उत्पादकप्रवृत्तिरित लभाते उत्पादकलं उत्पत्त्यनुक् ललं। दुरितच्चयकाम
इतिपदमध्य हार्यं तदेकदेशस्य दुरितच्चयस्याकाङ्कावैचित्रात् उत्पादकैकदेशे उत्पत्तावन्यः दुरितच्चयतदुत्पत्ती वा सस्यावन्दमं करणतासम्ब धेनानृ तौति भट्टमतं, तकाते क्रियागतिमष्टसाधनलं न विधार्यः
किन्त्वेवंरीत्या प्रवृत्तिगतिमष्टसाधनलं विधितो लभाते उत्तरकालं
प्रवृत्तेः फलोत्पादकलं कियाद्यारैवेति प्रतिसम्धानन क्रियायां फलोत्पादकलं ग्रद्धाते फलोत्पादकलमेविष्टसाधनलं तज्ज्ञानात् क्रियायां
प्रवृत्तिरिति नित्यवाक्यस्य प्रवर्त्तकलमिति वीधाः। कर्तृत्यापारलचणस्य
कर्तृत्यापारकास्य इतिकर्तत्र्यतास्थोपकारकव्यापार-भितिकर्त्तव्यतारूपसहकारिव्यापारं, ग्रमभवात् फलोत्पादकलासभवात्। इतिकर्त्तव्यता
चाङ्गजातिमति, श्रवेचितित इत्याकाङ्घापितितार्थः। समिपितित, वोधितितार्थः। एवकारोऽप्यर्थे भावयन्तीति, प्रधानविधिसहकार्य्याकाङ्योत्यापितलादङ्गविधिकन्यवोधिषु प्रधानविधिवीधितपःलस्थैव भाव्यलेनानृयादिति भावः (४१)।

नतु दुरतचयोऽपि न सर्व्वदासर्वजनेच्छ।विषय:। दुरिते वलवहेषा-भावकाले दुरितचयेऽपि नेच्छा अतएव तदा दुरितसाधने कुकर्माण्यपि प्रवर्त्तते निश्चतदुरितेऽप्यालस्यादिना तत्च्यार्थं प्रायश्चित्ते न प्रवर्त्तते र्जित धैव तथेहापि च जन्मनि। जनघोड्णवर्ण वास्थे यत्कि स्विषं क्षतं। पश्चा बसीप्रवत्तेन तत् सर्वे सुर-

किंदिति कथं द्शित सयोऽपि नित्यक भीणिभाव्यस्तित्कासनाविर इः दशायां तदकश्णप्रसङ्गादिति चेत् तथापि नित्याकरणस्याभावतयाः भावक्षपप्रत्यवायाचितुत्वावित्याकरणस्य प्रत्यवायचेतुत्वेमानाभावाच न प्रत्यवायानुत्पत्तिः फलं। अनुर्व्वित्यादिवचनस्य लच्चण्हित्वोः क्रियाया इति पाणिनिस्त्रेण लचणार्वे शतुर्विधानात् धापच्चापकतापरत्वं। न च जापकलं जानजनकलिलायातमभावस्य कारणलिमिति वाचा लंच गपदस्य ज्ञानजनक ज्ञानविषयार्थक त्वात् तद्तं वेदान्त सारटीकायां। नित्यानामित्रया यसालचयत्येव सत्वरा। प्रत्यवायिक्रयां तसालच-णार्थे शताभवेदिति । न चार्यं विहितमकार्षीत् अतःप्रत्यवायीति-संखामिष्टीरिति, पापकारी पापीनवित, अय य इह चरणास्ते कुपूयां योनिमापचेरिकत्यादिशुत्या निन्दितकम्भाचरणस्वैव पापजनकत्वावगमात्। एवच नित्यकसीकरणे यदन्यच निन्दाखवणं तदपि प्रातानपापस खजापकं। खर्गादेश भाज्यले निखानां काग्यान्तभाव-प्रसङ्ग इति प्रमाणान्तरसिंहपापच्चय एव नित्यक्षम्णोभाव्यः पापभीकिश्व-रास्तिकौरवस्यमेव यावज्जीवं पापच्यार्थं प्रायश्चित्तसिव नित्यकर्मान-ष्ठीयते येत नानुष्ठीयते तस्य पापसत्त्वा जिन्दैव । न च प्रायश्चित्तविलस्वे घापष्टि विश्ववणात् प्रायश्चित्ताकरणस्य पापजनकलमिति वाचां। तद्वच-नानां कालविजम्बे प्रायिक्षताधिकापरत्वादिति। नित्यकर्मासामान्यस्य षापनाशकत्वे मानमाइ तर्नेत्यादि। तत्र नित्यक्रमीण क्रते सतीति शिषः। यदा तत्र तेषु पापचयेषु मध्य पूर्व्यजन्मार्ज्जितानासिति विशे-षतोऽनिश्वितानाभित्यर्थः रोगादिना निर्णीते प्रायश्वित्तत्रवणात्। जन-भी इग्रवर्वेणिति तदूर्दे कतानां पापानां प्राय: प्रायस्वित्तना स्थाने षदमनवेदप्रणिहितो धर्मा इत्यनेन वेदविहितकमीसामान्यवाचकमणि वेदविहितनित्यक्रमीपरं, सामान्यशब्दस्य विशेषपरत्वात्तदन्यकर्मीणि फलविशेषयवणाच । प्रतिष्ठा पालकः सर्वे भोगापवर्गादि प्रतिष्ठितं प्राप्तं भवतीति। यद्दा अतीतत्वाविवच्चया प्रतिष्ठितं प्रतिष्ठाश्रयः संप-द्यत इति यावन्। चयं केचिदिति, मतान्तरमाह अनुत्पत्तिमिति,

भास्यति। दूति वचनादिप्राप्तानां दुरितानां चयः। तथाच तैत्तिरीयशुतिः, धर्मीविश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा

एत मते यथान्वयव्यतिरेकवलाङ्गावः कार्णं तथा कचिद्ववयव्यति-रेकवलाटभावीऽपि कारणं वाधकाभावाच। एवच नित्यक्षीकरणं पापजनकं तत्करणे तत्पापानुत्पत्तिरिति, पापानुत्पत्तिः फलं एतकति भावनात्वेन न विधिष्रत्ययवाच्यता क्वतिसाध्यत्वसिष्टसाधनत्वच विधार्यः भाव पापानुत्रतिरूपेष्टस्य चैतिकसाधनतासादाय विधिप्रत्ययवाचातो-पपादा। एवच सन्धावन्दनं पापानुत्पत्तिकामक्तिसाधं पापानुत्प-त्तिक्पेष्टसाधनमित्यन्वयवोध इति, पापभी ब्ला यावज्जीवसेवानुष्ठीयते। एत मति चार्यवादिक व्रह्मा लीकावास्यादिफ लं नं मन्यते चर्यवादस्य स्ति-मात्रपरतीत्। नन्तेतसते प्रत्यवायानुत्पतिकासनारहितस्य सन्धावन्द-नाद्यकाणे पापानुत्पतिष्रसङ्गस्तस्यानधिकारित्वादिति चेन्न निन्दार्थ-वादेन सामान्धतः पापजनकत्वावगमादिति। यदा क्रतिसाधात्वमेव विधार्थः काम्यस्थले इष्टमाधतत्वं योग्यतया ज्ञातं विधिजन्यवोधिरीप भासते नित्यस्थले नित्यत्वमेव योग्यता तच प्रत्यवायजनकीभृताभावा-अतियोगिलक्ष्यं विधिजन्यवोधे भासते। घटेन जलमा हरेदित्यादी बिद्रे-नातिमव एवमन्वये सन्ध्यावन्दनाद्यभावे प्रत्यवायजनकातं लभ्यत इत्यर्थतः प्रत्यवायानुत्पत्तिः फलं सन्धावन्दनादेरपोति, तत्कामनया सन्ध्यावन्द-नादी प्रवर्तते तत्कामनायाय नाधिकारिविशेषणत्वसिति तत्कामना-रहितस्य सम्यावन्दनाद्यकरणे न पापानुन्पत्तिप्रसङ्गः ग्रचितत्काल-जीवनस्य दिजलादेश शुतस्याधिकारस्य तदानीमपि सत्त्वादिति, मतान्तर-माह अनुषद्भफलमिति। सर्वत्र नित्या क्रिया यस्यां तां श्रुतिं प्राप्येति पूरणसम्बलितेनान्वयः। यत्फलकामना न कत्विशेषणतया विधिजन्य-बोधविषया तत्फलं चनुषद्गफलं नित्यकर्माण इत्यर्धः। एवच्च नित्य-विधी फलकामपदाधा हारो नास्ति। पापानृत्पत्ति य पापचयश्यसकल-तिस्य क्र ग्रेगः फतं व्रह्मतोकस्यास्यादिकप्रविक्वित् सुतं। विधिजन्य-योधे प्रमाणान्तरोपस्थितपापानुत्पत्थादिरूपेष्टसाधनत्वं क्रियागतत्या भासत इति विधिरिष्टसाधनतावीधकालीन प्रवर्तकालां। तत्कामनाया अधिकः व्यविशेषण्वेन तत्तत्कामनां विना क्रतेनापि नित्यकम्भणा तत्तत्

लोको धिक्षिष्ठं प्रजाउपसर्पन्ति धर्म्भेण पापमपनुदन्ति । धर्म्भेण सर्व्वं प्रतिष्ठितं तस्माइक्षं परमं वदनीति । जावालभविष्यपुराणयोः, चयं केचिद्धपात्रस्य दुरितस्य प्रचचते । चनुत्पत्तिं तथा चान्ये प्रस्थवायस्य मन्वते । नित्यक्रियां तथा चान्ये चनुषङ्गफलां श्रुतिं । नित्य-क्रियां नित्या क्रिया यस्यासां प्राप्येति श्रेषः । फलमिति पाठे चान्द्रसत्वं (४२)।

तत्य फलस्य ककी निष्यत्तेषां लोकवत् परिमाणतः फलिविशेषः स्यादिति न्यायेन नित्यककी णि क्रष्यादिषु हृष्याधनवत् साधनककी नुरूपेण किञ्चित् किञ्चत् क्रांचित् कृष्या दुरितानि नाभयन्ति चकरणभावि प्रस्ववायानुत्-

त्फलसिडि: । वस्तुतः पापानुत्पत्तिनीत्रफललेनान्वेति निन्दार्थवादेन नित्यायकरण एव पापजनकलावगमात् । अर्थतीनित्यकरणस्य पापानुत्पत्तिप्रयोजकलावगमिऽप्यनुत्पत्तेरत्यन्ताभावरूपत्या नित्यलेन तज्जनकलाप्रसिषे: पापच्यवद्मलोकावास्यादिक्ष्पेष्टस्य जनकलक्ष्पमुख्य-साधनलमेव विधिप्रत्ययेन वोध्यत इत्येतस्यते पापशङ्कया कासनाया स्यविकारित्वेन च यावज्जीवानुष्ठेयता नित्यक्षमीणः सुसम्पन्नेविति (४२) ।

फलस्य फलसामान्यस्य, कर्मानिष्यतेः कर्मातीनिष्यतेर्हेतीः, तेषां कर्माणां परिमाणतः यङ्गयोगायोगेन फलविश्रेषः स्यादिति, लोक-विश्रीतिकानां लष्यादीनामिवेत्यर्थः यक्तरणभावीति, भवन्तीति, एवञ्च फलतारतस्ये कर्मासद्गुष्णासाद्गुष्णादिकं नियामकं। प्रत्यवायान्तृत्पादस्तु यथा कथञ्चित् कर्माणि कत एवति निर्दारितमितिभावः। कर्ता साचात्कर्ता भूयो वाहुत्येन साङ्गोपाङ्गेनित यावत्। पापच्यिति, तथाच फलं विनेत्यच फलपदं विधिसमिभित्याहृतफलश्चितपरं। यन्यया प्रयोजनमन्दिष्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तत इत्यनेन विरोधः स्यादिति। नृतु राजाञ्चादिस्यने यथा राजाञ्चामानं प्रवर्त्तयतीति ज्ञानात् प्रवन्तु राजाञ्चादिस्यने यथा राजाञ्चामानं प्रवर्त्त्यतीति ज्ञानात् प्रवन्तु राजाञ्चादिस्यने यथा राजाञ्चामानं प्रवर्त्त्यतीति ज्ञानात् प्रवन्तु राजाञ्चादिस्यने यथा राजाञ्चामानं प्रवर्त्त्यतीति ज्ञानात् प्रवर्त्ते राजाञ्चादिस्यने यथा राजाञ्चामानं प्रवर्त्त्यतीति ज्ञानात् प्रवर्त्ते राजाञ्चास्य

पादनाय भवन्ति च। तथाचापस्तस्वः। प्रयोजयिताऽनुमन्ता वर्त्ता चिति सर्व्वे स्वर्गनरक्षफलभोक्तारो, योभूयश्वारभते तिस्मिन् फले विशेषद्रति। एवं फलं विनायनुष्ठानं नित्यानामिष्यते स्फुटमिति, भविष्यपुराणीयं
पापचयानुषिक्षकफलातिरिक्तफलपरं। तथाच यसः।
सक्ष्यासुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः। विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोक्समनामयं। शंसितव्रता दृद्वताः।

र्त्तते नेष्टसाधनताज्ञानं तत्रापेचते। तथाविधिमात्रं प्रवर्त्तयतीति भागात् प्रवित्तस्त किं फलकल्पनेन प्रवर्त्तयतीत्यनेन प्रवत्त्वनुकूल-व्यापारवत्त्वं विधिपदस्यायाति, सः च व्यापारः प्रवर्त्तनापदेनाप्युचते ह एत सति लिङ्वदिनिष्ठाभिधा पदार्थान्तरं शब्दभावनाऽपरनान्ती लिङ्शका, प्रवृत्तिश्चाख्यातसामान्यग्रक्या। तयोत्तं ग्रिभधाभावनामा हुरन्यामेव लिङा-इयः। अर्थात्मभावना त्वन्या सर्व्वाच्यातस्य गीचर इति। अर्थात्म भावना अर्यभावना प्रवृत्तिरित्यर्थः, सन्ध्यासुपासीतित्यादी शब्दभावनाया जन्यता-सम्बर्धन प्रवृत्तावन्वयात् शब्दभावनाजन्यसम्बरा अन्दनप्रवृत्तिमानित्यन्वयः ह यद्वारिभधायां मानाभावः वेदस्य परमिष्वरप्रयुक्तत्वात्। स एव प्रव-र्त्तकः तथाच परमेश्वरधिमात् सन्ध्यावन्द नादिप्रहत्तिवोधकविधिवाका-प्रयोक्तृत्वज्ञानादेव प्रहत्तिरस्तु किं फलकल्पनेनेति चेन्न, तेषां मते-इपि प्रवृत्तेभीवनात्वेनैवान्ययात्, भावनायास किं केन कथिमत्यंश्चय-साकाङ्कलात् भाव्यलेन पापचयस्य कल्पनिमत्युक्कलात् । तयोक्कं लिङोऽ-भिधा सैव च ग्रव्दभावना भाव्याच तस्याः पुरुषप्रवृत्तिः। सस्यन्ध वोधः करणं तदीयं प्ररोचना चाङ्गतयोपयुक्राते। सम्बन्धवोधः श्राति-यहः प्रशेवना प्रवृत्ती फलोत्षादश्रत्वज्ञानं। अङ्गतया हेतृतया प्रवृ-त्तावुपयुज्यते इति राजाज्ञादिखलेऽपि राजप्रसादादिकलमपेचीयव प्रव-र्त्तत इति। ननु ब्रह्मलोकावाप्तिश्चेदानुषङ्गिकं फलं तदा सुमुचुक्तत-सन्धादितस्तत् स्यादानुषङ्गिकफलस्य कामनां विनापि सन्धवात्। न चेष्टापत्तिमीं चविरोधादित्यत ग्राष्ट्र एतेनेति, पापच्यस्वैव सर्व्यत

रतेनानुषिक्षकं फलं सुसुचूगां मोचएव अन्यवा तेषा-मनधीपत्ते:। अन्येषान्वन्यवापि (४३)।

शारीरकभाष्ये 'श्रापस्तस्वः, श्राम्ने फलार्धनिर्मिते-च्छायागश्चाद्युत्पद्यते, एवं धम्में चर्छमाणमधीश्रप्युत्-पद्यन्तद्रति। श्राक्यसम्पादनेष्विष यदङ्गं विस्मृतं तस्या-प्याक्यान्तभीवात्तदभाविऽिष फलं भवत्येव। किन्त्वश्र साङ्गार्थसच्युतस्मरणादिकं विधेयं। यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्योवन्दे त्यसच्युतमिति स्कन्दपुराणात्। एकादश्युपवासस्य यथाकथिञ्चत्कर्तत्यत्वेनोपदेणाञ्च। यथा तत्त्वसागरः।

नित्येभाव्यत्वादन्येषामनियमेनेत्यर्थः। तथा ब्रह्मलोकावासगादी मुस्चा-विरोधिनीतिभावः। मोच एवति, तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदि-षत्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनामकेनेत्यादिश्वतेः। कर्ममात्र-स्येव विविदिषाद्वारा मोचसम्पादकत्वात्, तपसा किल्विषं चन्ति विद्ययाऽस्वतमश्रुते। ज्ञानसुत्पद्यते पुंसां च्यात् पापस्य कर्मण इति वचनाच्च अनर्थापत्तेमींच्चिरोधापत्तेः। अन्येषां विषयरागिणां अन्यया पिटलोकादिरिप, कर्माणा पिटलोक इत्यादि-श्रुतेः (४३)।

धर्मा चर्यमाणमन लक्षीकत्य सर्था उत्पद्यन्त इत्यर्थः। फलकामनाक्कते स्नाम्बादिके यथाऽकामितच्छायादिकमृत्पद्यते। एवं पापानृत्पत्तिकामनया प्रापच्यकामनया वा क्कते नित्यक्षमिण यथायोगमनीसितमिष फलान्तरं नायते इति भावः। तपोयच्चित्तयादिषु
नित्येषु काम्येषु वा मध्ये यद्गूनमङ्ग हीनं तत् सम्पूर्णतां यथोक्षफलजननयोग्यतां यातीत्यर्थः। सद्य इत्यन्यापेचां वार्यित। एकादश्यामेकादश्यपवासे मनःक्रत्वेति, संकल्पस्यापि सफलत्वं स्वयित। नीदर्भयति दर्गनिवरोधिनी सैकादगीति, एकादभीव्रतमित्यर्थः। यद्यदिच्छतीत्यनेन फलस्यानुषङ्गिकत्वं निराक्षतं, किन्तु तत्फलकामनया नियोज्य-

प्रसङ्गाहाय दक्षाहा लोभाहा चिद्याधिय। एकाद्य्यां मनः स्रत्या सर्व्य दुःखाहिमुच्यते। नारदीयं, व्याजनािव स्रता राजन् नोदर्भयित सा उन्तकं। सा एकादयी यन्तकं यमं। काव्यायनः, संसारसागरोत्तारिमच्छन् विषाप्याययः। ऐख्रय्यं सन्ततिं खर्गं मृक्तिं वा यद्यदिच्छति। एकाद्य्यां न भुञ्जीत पच्योग्नभयोरिष। यत्तु वालोकेन, एकाद्यां न भुञ्जीत पच्योग्नभयोरिष। यत्तु वालोकेन, एकाद्यां न सुञ्जीत पच्योग्नभयोरिष। यत्तु वालोकेन, एकाद्यां वाद्यां च तन्तेषोध्य क्रतोः फलं। यहीराव्यादिक्षणक्रयंवाद्याः वर्षितं। तद्व, यधिकारिविध्यपोष्ठिषया यार्थवादिक्षणक्रवीकारस्य राचिसचा-धिकरणन्यायेन कर्त्तुमुचितत्वात्, व्रह्मह्व्याद्य्यपोष्ठनस्थापि फलत्वात्, ब्रह्मह्वाद्यपोष्ठनस्थापि फलत्वात्, ब्रह्मह्याद्यपोष्ठनस्थापि फलत्वात्, ब्रह्मह्याद्यपोष्ठनि

विशेषणतया वीधकश्वतिकत्यनं स्चितं। वालोकेन वालोकास्यपत्यकारेण। एकादग्रीहादग्री चेति यस्मिन् दिन इत्यर्थः। फलसिति,
प्राप्नोति इति ग्रेषः। फलान्तरसाह, ग्रहोरात्रेषित, ग्रहोरात्रोपवासेनेत्यर्थः। ग्रनुवादसानं स्तुतिसातं नतु प्रासाणिकसिति यावत्।
ग्रिथकारिविग्रेषणापेच्यिति, एकादम्यामुपवसेदित्यत्नाधिकारिविग्रेषानुपदेगात् कोऽत्नाधिकारीत्यधिकारिविग्रेषणाकाङ्गयत्यर्थः। ग्रार्थवादिकेति।
एकादग्रपवासविधायकग्रत्वनन्तरोक्तग्रुतिविवोधितव्यर्थः। रहःप्रायश्चित्तं
रहस्यक्तस्य पापस्य प्रायश्चित्तं, तत्र लघुप्रायश्चित्तोपदेग्रादितिभावः।
रहःकतत्वं जनत्रयागोचरत्वं। ग्रसीसांसकवचनं निर्व्युक्तिकवचनं हैयमितीति, एकादग्रीत्रतस्य प्रायश्चित्तवेन कुत्नाप्यलिखनात्, कचिदग्रिषपापनाग्यकत्वोक्तेस्तिद्ववरण्यव्यत्वात् एतेषां व्रह्महत्यादिपापनाग्यकत्ववोधकत्राक्यानासितिग्रेषः। एवं एकादग्रप्रपवासस्य नित्यत्वेन निर्निमित्तसम्प्रमुदितनाग्रकत्वेनव, नतु विशेषतस्तत्तत्पापनाग्रकत्वं नान।विधपापनाग्यकत्ववेधकवद्यत्वचनवलात् कत्यप्रते। भावफलन्तु तत्तद्वचनवलात्

विहितं हीनतमत्रह्मवधविषये रहःप्रायश्चित्तं सक्भवतीत्य-मीमांसकवचनं हियमिति जीमृतवाहनः (४४)।

स च न्यायश्चतुर्धाध्याये चिन्तितोयया। प्रतिति-ष्ठान्ति इवे यएताराचीकपयजन्तीति शूयते। अच राचि-प्रव्देन अधैषआयुर्धेषज्योतिरित्यादिवाक्य विष्ठितास्तत्तद्वा-मकाः सोसयागविश्रेषाउच्यन्ते। किसच खर्गएवाधि-कारिविश्रेषणस्त प्रतिष्ठिति संग्रयः। अवैयं कासद्व्य-श्रवणादिधिशक्तिलभ्यः स्वर्गएव विश्रेषणं, सन्दे हे हि वाक्य-श्रिषस्त्रीकारो न निश्चये, निश्चितश्चे सर्व्याभिनिषतः खर्गीविधिसामर्थ्याद्वियोज्यविश्रेषणं। या तु प्रतिष्ठावि-षया श्रुतिः सा तु नचण्या खर्गपरेव काल्पाते। दृहैव जैसिनिसूचं। श्रुती फनार्यवादसङ्गवत् कार्ष्णाजिनि-रिति। यथा प्रयाजाद्यङ्गेषु फनश्चितरर्थवादक्षपा

विशेषत एव कल्पाते। तत्तत्पलकामपदघटितसंकल्पवाकामपि कार्यां यद्यदिच्छतीत्युक्तिवलादित्यवधेयं (४४)

तत्तवामका त्रायुक्योतिरादिमंज्ञका। विधिमित्तलभ्य इति विधेमित्तः सामर्थं लिङ्गमिति यावत् तेन लभ्य इत्यर्थः। तथा राह्रीकुँहोतीति विधिवाक्यं खर्गकामित्रयोज्यकं खर्गातिरिक्तफलकामवीधकपदाघटितत्वे सति काम्यप्रकरणीयविधिवाक्यत्वादित्यनुमानात् स्वर्गस्य
नियोज्यविभिषणत्वसिद्धिः। काम्यप्रकरणीयित्युपादानामितप्रकर्माण न
खर्गकत्यनं तत्र पापच्यय्यैव कल्पनात्। यद्या खर्गीऽश्रूयमानफलकामनियोज्यकाम्यप्रकरणीपविधिनियोज्यविभिषणं सर्व्याभिलिषतत्वादित्यनुमानेन नियोज्यविभिषणत्या स्वर्गसिद्धिः। सन्देन्ने नियोज्यविभेषणत्या फलस्य सन्देन्ने वाक्यभिषकत्यनं विधिवाक्यानन्तरमुक्तार्थवादश्वति
वोधितफलस्य नियोज्यविभेषणत्या स्वीकारः। यथाऽन्वरन्नः सन्धा-

तथा श्रुती राविसवादीप्रतिष्ठादिश्रुतिफलमर्थवादमाह कार्णाजिनिरिति, एवंप्राप्ते सिडान्तसूत्रं, फलमावेथोनि-देणादश्रुती द्यनुमानं स्थादिति । प्रतिष्ठाफलस्य निर्दे-णात्तदेवाधिकारिविशेषणं । यत्तु विधिणक्त्या स्वर्गद्रति तम्भ सुद्धार्थस्तुतिवादानुगुण्येन विधिणक्ती पर्ध्यवसिता-यामानुमानिकस्वर्गकल्पनानवकाणात् सर्व्या फला-श्रुतावेव स्वर्गानुमानं । तस्माद्वाक्यशेषस्यमेव फलमिया-

मुपासीतित्यादी नित्यत्वेन सन्ध्यावन्दनं निष्फलं किम्बाउर्धवादे फल-यवणात् तत्फलकमिति, सस्वेव युतिवाक्यस्य सार्धकत्वसस्वेव निर-र्यकलक्य नस्यान्याय्यलादर्यवादोपस्थितफलानुयेन विधेकत्कर्षणसिति। प्रतिष्ठाविषया प्रतिष्ठावाचिका प्रतितिष्ठन्तीत्यादिरूपा अर्थवादे श्रूयमा-णेतिविशेष:। स्वर्गपरा स्वर्गतात्पर्यका। इहै-वात्रैव पूर्व्वपचे जैसिन-स्विमिति प्रमाणिमितिशेष:। अर्थवादक्पा स्तुतिसात्रपरा न प्रसाण-मिति यावन्, अर्थवादमार्थवादिकं न प्रामाणिकसितियावत्, एवञ्च सूत्रे श्रुतावितिपदं प्रतितिष्ठन्तीति श्रुतिपरं फलानुवादपरं श्रुतफलस्यार्थ-वादिकत्वपरं अङ्गवदिति, प्रयाजायङ्गेष्विवेत्यर्थकमिति निर्देशादर्थवाद-श्रुत्योपस्यापितत्वात् श्रयात् प्रतिष्ठादिकं फलमधिकारिविशेषणं। श्र-श्रुतौ अर्थवादेन विधिना वा फलाश्रवणेऽनुमानं स्वर्गस्यानुमानं स्यादिति यावयोमुनिराहिति स्वार्थः। तत्तात्पर्य्यार्थं विहत्य तत्त्वसदाह प्रतिष्ठाफलस्येति। श्रिधिकारिविशेषणसिधकारिविशेषणकासनायां विष-यतयान्वतं। विधिशक्तेरित अनुमयिसितिशेष:। खर्ग इति नियोज्य-विशेषणकाममाविषयतयाऽन्वित इति प्राक्तनेन सम्बन्धः। सुख्यार्थ-स्तुतिवादानुगुखेन मुख्यार्थे यः स्तुतिवादः सुख्यार्थपरस्तुतिरूपार्थवाद इति यावन्, तदानुगुख्येन तद्रपस्यापितफलस्य विधावन्वयेन विधि-शक्ता विध्युत्थापितनियोजाविशेषणफलाकांचायां पर्ध्यवसितायां निग-कांच्यिति पूरणीयं स्वर्गकत्पनानवकाशादिति, श्रुति वाक्ये शत्या पदार्थोपस्थित्यपेच्या यानुमानिकस्त्रगाद्यपस्थिति ई स्वितत्वादिति क्षयं

वैयोमुनिराह। ततय प्रतिष्ठाकामचायुषा यज्ञेत प्रति-ष्ठाकामोज्योतिषा यजेते त्यादिविधयः कल्पान्ते (४५)।

महाभारते। सायमाद्यन्तयोरक्कोः सायं प्रातश्च मध्यमे। उपवासमानं प्रेषोर्व्य ज्ये भक्तचतुष्ट्यं। चन सायमित्यविविचितं हिवसभयत्ववक्कत्तचतुष्ट्यवर्जनस्यैव-विविचितत्वात्। चत्रपव वाराहे सायमित्यनुक्तं यथा। चक्कोराद्यन्तयोर्भक्तमेकोकं सध्यतोद्दयं। चातुर्भक्तनिषधोऽय-मुपवासविधिः स्पृतः। पाद्यात्यनिर्णयास्तते स्पृतिः।

खर्गफलकत्वानुसानेन प्रतिष्ठादिवाचकपदस्य लचणया स्वर्गादिपरत्वकस्पनं मुख्यार्थवाध एव लचणा स्वीकारादितिभावः (४५)।

हविरुभवलवदिति। यस्योभयं हविरार्त्तिमृच्छेत्स ऐन्द्रं पञ्चणरावं चर् निर्ञ्गपेदिति अदैकहिवनीशे किं कार्थिसित्राकांचाया अनिह-त्ते हिविक् भयत्वस्याविवचा अवापि येन नक्तव्रतमार्थं तेनैकादस्या-दुरपवासप्राप्ती किसाचन्तदिनयी: सार्य भोजनानिहस्या दिनत्रथे भोजनवर्ज्जनं कार्थं नक्तव्रतिनी दिवाभीजनाभावात्। किंवा परदिने पारणस्यावश्यकत्वात् नक्तव्रतिनोदिवाभोजनाभावाद्राव्रीपारणं कुर्यात् रातिपारणनिषेधस्य च दिवाभोजनसत्त्वएव, न राती पारणं कुर्याद्वते वै रोहिणोत्रतादितात व्रतपदस्य नत्तव्रतोपवासोधलचकत्वात्। तत्नोपवासस्य भोजनच नुष्टयनिवृत्ति रूपता च नस्यादित्या शङ्कानिरासाय सायमित्या-स्याविवचा युक्ता। एतेन वराइपुराणवचने सायंपदानुकाविप महा-भारतीयवचने सायंपदयवणात्, तत्समानार्धकत्वाय भक्तमेकैकमितात्व भक्तपदं रातिभोजनपरिभिति प्रत्युक्तं सायंपदस्य विविच्चतत्वे दिवस एव पूर्व्वापरयोभीजनदय कतेऽप्युपवाससिदिपसङ्गादेवस्मिन् दिवसे भोजःनदयस्याविहितत्वे निषिद्वतेऽपि च याद्टच्छिकतत्सभवात् एवञ्चाव्यव-हितपूर्व्व दिनावच्छे देन भोजनहयाभावत्वे सत्राव्यवहितोत्तरदिनावच्छे देन भोजनद्वयाभावत्वे च सति मध्यदिनावच्छेदेन भोजनसामान्याभावो मुख्यापवासपदार्थ इति। एकास्मिन् भोजने कतेऽपि भोजनंदयाभाव-

नाद्याहत्त्वत्रयं निस्ये वास्ये भक्तचतुष्टयं। भक्तदय-वर्ष्णनस्यक्तस्य यक्तस्य तु निस्येऽिष भक्तचतुष्टयवर्जनं। यक्तिमांस्तु प्रकुर्व्वीत नियमं सिविधेषणसिस्यच निस्यत्व-काम्यत्वेन विधानभेदात्। पूर्णेकाद्यीव्यवस्थायां। पूर्णा-मुपवसेत् कामी निष्कामसूत्तरां सदा। इत्यादिवचनेन विधानभेदात् कालभेदाच। नित्यस्वकाम्यत्वप्रतिपाद-कतत्तदचनेरेकादम्युपवासस्य नित्यत्वं काम्यत्वच्च। अव कालाभेदस्यले काम्यक्तर्णे नित्यसिद्धिरस्युक्तं (४६)।

ननु कास्यत्वसनितात्वं असति कामे परितातं गक्यत्वात् तथा सद्येकसा कर्नाणीनितात्वकाम्यत्वाभ्यं देक्ष्याङ्गीकारे नितानितासंयोगविरोधः । सैवं संयोग-

सत्ताब चणसङ्गतिः एकघटवत्रपि घट इयं नास्तीति प्रतीतेः दिनपद-सहीरात्राविष्ठ व कालपरं। प्रक्तियां स्वित्रानेन नित्राव्रतपरत्वं वचनस्य-स्वितं कास्यव्रते सर्व्याच्यविकरणन्यायेन सर्व्याङ्गीपेतस्यावस्थकत्वात्। प्राच्याक्तिभेदाभावात्। कालाभेदस्थल इति, नित्यविधी एकादस्युप-वासत्वेतैव विधानात् कामनया क्रतेऽपि तत्सिष्ठिः कास्ये कामनाया चङ्ग-त्वात् निष्कासतया नित्राकार्थाणक्रते न कास्यसिष्ठिरितिभावः। कालभेदेतु उपवासद्वयं नित्राकास्यभेदादितिवीध्यं (४६)।

काम्यत्वं कामनाविषयत्वं कामनावत्कर्त्तव्यत्वमिति यावत्। श्रानितात्वं नितात्विविशेषि नितात्वाभावनियतिमिति यावत्। परितात्तु-मिति परितागोनिहित्त खुमोनिमित्तत्वमर्थः, भक्यत्वं योग्यत्वं प्रतावाया-जनकोभूताभावप्रतियोगित्विमिति यावत्, निहित्तप्रयोजकप्रतावाय जनको-भूताभावप्रतियोगित्वादिति समुदितार्थः। तथा सित काम्यत्वस्य निता-त्विविशेषित्वे सित नितात्वकाम्यत्वाभ्यामिताभेदे त्वतीया तथाच नितात्व काम्यत्वरूपं यहेक्ष्यं धर्माद्वयं तत्स्वीकार इतार्थः। नितानितासं-योगविरोष इति वाधक इति भेषः। संयोगः सम्बन्धस्तादात्मामिति पृथक्तवन्यायात्। स च न्यायोयया। खादिरे पशुं यभाति खादिरं वीर्व्यकामसा यूपं कुर्व्वीतेति यूयते, यच संगयः, किं काम्यसीयव खादिरता नितेप्रिप सप्रात् उत निति। तच फलार्यत्वेनानित्रत्या नित्रप्रयोगा-इता न युक्ता, यत्तु नितेप्रिप खादिरत्वश्रवणं तत्का,स्य-

यावत्। तथाच नितारत्वस्य काम्यत्वत्यापकीभूतानितारत्वस्य च यः पर-स्परिवरोधः सहानवस्थानं स एव वाधकः व्यापकस्थानितात्वस्थासत्त्वे कास्यलस्यासभावादिति पर्य्यवसितार्थः। कास्यस्य कासनाविषयफलस्य षष्ठार्थः प्रयोजनत्वरूपसम्बन्धः तसा खादिरतायामन्वयः नित्ये निता-फले प्रतावायानुत्पत्ती पापचये वा, सत्रात् प्रयोजिका सत्रात्, तथाच खादिरयूपकरणं नितराङ्गं नविति संशयः, श्रवेति, संशय इतर्र्यः। युक्तेति, नितारत्वकाम्यत्वयो विरोधादिति श्रेष:। नित्ये निताप्रकरणी खादिरत्वश्रवणं खादिरे पशुं वभ्रातीति श्रुतिः, तत्खादिरत्वश्रवणं काम्यस्यैवेति, खादिरत्वस्येति शेषः। तथाच तसा यूपरूपाययसा पग्र-वस्थनार्धकलज्ञानायेतार्थः, खादिरमिति श्रुता तदलाभादिति भावः। खादिरतेति, अङ्गमिति शेष:। यद्या काम्यस्यैवेति खादिरयूपस्येति शेषः पश्चन्धनाय यूपरूपात्रयज्ञानार्थं। तथाच खादिरयूपस्य काम्य-तया सतवेऽपि तत्रैव पण्यवस्थनं कार्थां वीर्थकामनाविरहे खादिरान्य-यूपे पश्चन्धनं कार्थिमिति खादिरता न नित्राङ्गं खादिरे पशुं वधा-तीतात्र खादिरत्वसमाविवचितत्वादिति भावः। सम्बन्धमातं संयुज्यते सम्बध्यते इति व्युत्पत्त्या धर्मामात्रं क्रत्वर्थत्वं क्रतोर्थः फलं यस्मात्तत्त्वं तथाच निताक्रतोः फलं प्रतावायानुत्पत्तिः पापचयो वा तत्र प्रयोज-कसराभावे प्रतरवायानुत्पत्तेरभावः प्रतरवायोत्पत्तिश्च पापच्यसराभावः पापसत्त्वं विति प्रतायाप्योजकीभूताभावप्रतियोगित्वं पापज्ञापकी-भूताभावप्रतियोगिलक्ष्पं वा नितारलं पर्य्यविसतं। पुरुषार्थलं कास्यल मितद्रूपमुभयं खरूपभूतधमाँ यसा तद्दोधकतया तद्गतधर्मी व्यवचार रूपे संयोगपृथक्तमविरुद्धभीद्यप्रयोजकमिति स्त्रार्थः। तांद्रश्भभीद्य प्रमाणं पूरयति वाक्यइयेनेति युतिइयेनेतार्थः। क्रतुशेषत्वं क्रतूपकार-

सीव पश्चवस्वनाय यूपाश्रयज्ञानार्थं अतीन नित्र खादिर-तेति प्राप्तेराडान्ताय चतुर्याध्यायसूचं। एकस्म तूस्यत्वे संयोगपृथक्त्वसिति। अत्र संयोगः सम्बन्धमाचं पृथक्त्वं भेदः। एकसा खादिरसा क्रात्वर्यप्रकार्थत्वरूपोस्थात्म-कत्वे वाक्यदयेन च क्रतुशेषत्वफलंशेषत्वलचणसंयोगभेदा-वगमाच नित्रानित्रासंयोगविरोधः। नचाश्रयज्ञानार्थं नित्रावाक्यं सिद्धधानादेवाश्रयणाभात् अतः उभयार्था खादिरतेति। एवं दक्षा जुहोति दक्षे न्द्रियकामस्रात्रा-

कलं नितालपर्यवसितं फलग्रेषलं फलजनकश्वरूपं काभ्यत्वं तदा-स्रकाविरुद्धधमीद्वयावगसादितार्थः। न नित्रानित्यसंयोग विरोध इति तद्भयात्मकले वाधक इतिग्रेषः, निक्तंकास्यलस्य निख्वाविरोधिला-दितिभावः। उपसंहरति अत उभयाधाखादिरतेति, एकेन वाक्येनैकस्ट कर्माणी नितालं कामालच इयं कोधियतुममकां तयाहि खर्गकाम एकादम्यामुपवमेदितादि युतौ खर्गकामनाविधिष्टस्य क्षतिसाधात्वान्वयः उपवासे वोधनीय:। वेदखले विशिष्टान्यस्यात्सर्गिकत्वात्। कामनाविधिष्टसम् क्रतिसाध्येत्वैक्षदेशकतावनुये तत्रं कामनाया प्रयोजातासम्ब सेनान्वयोवाचः विशेषान्वयिनान्वयित्वं विशेषणत्विमिति-लच्चणात् क्रतीकासनाया अनन्वये विशेषणत्वासभावात्। तत्र काम-नारहितकतिसाध्यत्वेनानेन विधिना अवोधनात्। अकुर्वन् विहितं कर्मा इत्यादि वचनाविषयत्वेनाकरणे प्रत्यवायाकोधनात्। कामनाविधि-ष्टस्य क्षतिसाध्यत्वेन विहितत्वेऽपि नित्यं सदा यावदायुरित्यादिना कामना-विशिष्टेतरक्षतिसाध्यत्वेन विहितस्यैव निव्यत्वावगमात् कामनाविशिष्ट-कतेयवेन विहितस्याकुर्वन्विहितमित्यादिना अवीधनाव तदकरणे प्रत्यवायः। साचात् फलअवणे प्रत्यवायानुत्पत्तैः पापच्यस्य वाधिका-विशेषण्वेनाकरणनाच। कामनावत् कर्त्तव्यकमीकरणे तत्कामनाविषय-फलसिंबिरकरणे तत्फलाभावमात्रं नतु प्रत्यवायोऽपौति । कामनारहित-बर्त्ते य वेनाविहितक भी निष्ठका स्थमल जनकल्यस्य नित्यल विरोधितया तद-

हावुभयार्थतेव दिधलसा हधाश्रवणात्। ननु विषमो हृष्टान्तः निताः खादिरः क्रत्वर्थः काम्यस्तु पुरुषार्थः उप-वासस्तु नितारेऽपि पुरुषार्थः निह स क्रत्वर्थः क्रत्वङ्गत्वे प्रमाणाभावात्। सताः, प्रमाणहयसाः हैक्ष्यप्रयोजकसा केवलपुरुषार्थीपवासेऽपि सत्त्वादवैषम्यं (४०)।

यदि च वुद्यारोहसदशोदष्टानोऽपेचितस्तदाग्नि-होचादिर्दृष्टान्तः न हि स ऋत्वर्थः किन्तु खयमेव क्रतुः पुरुषार्थोऽपि। तथाच यावज्जीवमग्निहोचं जुहोतीति

मिप्रायेण नित्यानित्यविरोधः दत्याशिद्धतं देधात्रवणात् नित्यत्वकाम्यत्वाभ्यां विधिद्वयात्, क्रत्वयः क्रत्वङ्गं न साचात् पापनाशादिरूपफलजनकः। एक्षार्थः साचात् पुरुषिनष्ठफलजनकः। एक्ष्व क्रत्वङ्गतयान्त्रात्वत्वं प्रत्यवायप्रयोजकोभृताभावप्रतियोगित्वरूपनित्यत्वं। पुरुषार्थं त्याऽनित्यत्वच प्रत्यवायाजनकोभृताभावप्रतियोगित्वसितिवषम्य। प्रमाण्वयस्यति, एकादश्यक्रकामस्तु पित्यभिः सहमज्जतीत्यादिवाक्यकित्यावाच्यवेत्वादशोव्रतविधायकस्य यावज्ञीगमेकादश्यामुपवसेदित्यादिवाक्यस्य यद्यदिक्यतीत्यादिवाक्यस्य यावज्ञीगमेकादश्यामुपवसेदित्यादिवाक्यस्य यद्यदिक्यतीत्यादिवाक्यस्य वित्यत्वकाम्यत्वक्षप्रविरुष्ठादिवाक्यस्य चेत्ययः। देक्ष्यं नित्यत्वकाम्यत्वक्षप्रविरुष्ठादिवाक्यस्य चेत्ययः। देक्ष्यं नित्यत्वकाम्यत्वक्षप्रविरुष्ठादित्या तुत्य-वित्यात्वाः (४०)।

वुद्यारोहः सन्देहाविषयस्तत्सदृशस्तत्सदृशिवषयकः सन्देहाविषयतावच्छेदकरूपेण तथाच सन्देहाविषयतावच्छेदकाविच्छन प्रकारकिन्ययविशिष्योभूतधिर्माप्रदर्शनरूपोदृष्टान्तः अपेचितद्रतिभाषः एकादश्यपवासे सन्देहविषयतावच्छेप्तकं प्रत्यवायजनकीभूताभावप्रतियोगित्विमित ।
देधाश्ववणाभावादिति, यस्य पर्णमयीगुहुर्भवति न स पापश्चोकं शृणोतीति श्रत्या काम्यत्वं क्रत्वङ्गतासिदिस्तुपर्णमयजुद्धाभवति । काम्यकरणानित्यसिदिरितिन्यायात् क्रत्वङ्गतयानित्यत्वं तस्या नाङ्गीक्रयते क्रत्वङ्गत्वेनाच्यवक्ततावोधक्षश्चत्रस्तराभावात् । तेन कामनाविरहे तत्र पर्णमय-

नित्यत्ववोधकं, अगृहोचं जुहुयात् स्वर्गकाम द्रति काम्यत्ववोधकं। यस्य पर्णमयी जुहुित्यच नोभयार्थतं हेधाअवणाभावात्। अतएक नारायणोपाध्यायेन द्रधि-खादिरन्यायेन शिखावस्थोपवीतधारणयोक्तभयार्थत्वमृक्तं। काल्पतकक्षतापि ब्रह्मचारिकाग्रहे, पञ्चमादिषु वर्षेषु ये नित्योपवन्थाः कामनोपवन्धाञ्च श्रूयन्ते ते संयोगपृयक्-त्वन्यायेन नित्याः काम्याञ्च। यथा पैठीनसिः, गर्भ-पञ्चमेऽन्दे ब्राह्मणमुपनयेत्। उपनयेदित्यनुहत्ती आप-स्तस्वोऽपि, अय काम्यानि अर्थकामं सप्तमे पञ्चमे ब्रह्मवर्चसकामं अष्टमे आषुष्कामं दशमे अद्वादिकामं एकादश द्रन्द्रियकामं हादशे पश्चकामिति। मनुः,

भिन्न जुहुरिप कर्त्वितिभावः। अतंपविति, एकरूपवैरूप्यसन्देहे वैरूप्यान्तर्थ दृष्टान्तरायोपन्यासस्य तान्त्रिक्यवहारसिहत्वादेवित्यर्थः। सदोपवीतिना भाव्यं सदा वहिष्णिनेत्वित्यनेन प्रधानत्वं विशिष्णोव्यपवीतिस्य
यत्करोति न तत्कतिमत्यमेनाङ्गलं एतदुभयात्मक्तलं दिधन्यायेन खिदरन्यायेन च दर्शितमिति। अवाङ्गलं मुख्यफ्लाजनकत्वेसित प्रधानापूर्व्वफ्लाजनकत्वं प्रधानत्वच्च मुख्यफ्लाजनकत्वेसित तयोविरोधमाश्रद्धा
तत्फलाजनकत्वं प्रधानत्वच्च मुख्यफ्लाजनकत्वमङ्गल्यमपूर्व्वभिन्नश्रीतफलाजनकत्वं प्रधानत्विमत्यभिप्रायेण समाहितं। तत्र मौमांसकन्येपूर्व्वस्यापि विध्यर्यतया श्रीतफलत्वात् तज्जनकतामादायाङ्गेऽतिव्याप्तिवारणायापूर्व्वभिन्नत्वविशेषणं व्यापारमिन्नत्वपर्यवित्ततं तेन कारौरीयागेनापूर्व्वमजनियत्वैवावग्रहिन्दित्तिहारा दृष्टिक्पफलजनकतामते तामादायतदङ्गेनातिव्याप्तिः। न च खादिरगूपाद्यङ्गेऽपि वीर्यादिफलस्य
श्रीतत्वाक्तजनकतामादाय तचातिव्याप्तिरिति वाच्यं यवाङ्गे फलश्रुतिस्तव फलप्रयोजकत्वस्यैवाङ्गे वोधनात् तच प्रयोजकत्वं प्रधानापूर्व्वहादेविति प्रधानापूर्वस्येव तत्फलजनकत्वसङ्गस्य तज्जनकत्वेऽङ्गेक्षते देवात्

ब्रह्मवर्चेसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमद्गति। ब्रह्मवर्च-सं वेदाध्ययनतदर्धज्ञानप्रकर्षकृतं तेजः। येषान्तु, राज्ञी-वर्णार्थिनः षष्ठ द्रत्यादीनां कामनोपवन्धेनैव स्मर्गं तेषां काम्यत्वं किन्तु पुरुषार्थस्वरूपसिद्वेस्तस्मादेवोपनयन-स्वरूपः संस्कारोनित्यः सिद्धः (४८)।

गोदोहेन प्रणयनसिंहर्यया न क्रतूपकारार्थं चमसेन

प्रधानाकरणे तत्फलं स्यात्। अतएवोत्तं फलवत्सित्वधावफलं तदङ्गसिति। अङ्गस्य फलजनकत्वाङ्गोकारितु किलकापूर्व्वदारीक्तत्य श्रोतफलजनकत्वं प्रधानत्वं किलकापूर्व्वत्वञ्चापूर्व्वजनकापूर्व्वतिमिति खादिराद्यङ्गे नातिव्याप्तिः। नित्योपवन्धः कामनानुपरक्तकर्तृकोपनयनं।
कामनोपवन्धः कामनोपवन्धकर्तृकोपनयनं तेन पञ्चमवर्षादिकाला उपनयने नित्याः काम्याश्रेत्यर्थः। नित्यकाम्ययोरङ्गत्वादितिभावः। यद्वा
ते पञ्चमवर्षादिक्ततोपवन्धा इति। यथिति नित्योपवन्धश्रुतिः काम्योपवन्धश्रुतिश्चेत्यर्थः। कामनोपवन्धनैवेति कामनोपरागिणैवत्यर्थः। षष्ठादिवर्षेषु चित्यादीनां नित्योपवन्धश्रुतिरभावादेवकारसङ्गतिः। स्वरूपिसङेक्पनयनस्वरूपिसङेक्पनयनकृप उपनयनेन कृष्यते जन्यते इत्युपनयनजन्य
स्त्यर्थः (४८)।

गोदोहित गोर्दुद्धते अनेति व्युत्पत्था गोदोहः पात्रविभेषस्ते नापः प्रणयनं विभेषविधिप्राप्तं सामान्यप्राप्तचमसकरणवापः प्रणयनस्य वाधकं। अपः प्रण्यनस्यैव यज्ञाङ्गलात् तत्र पात्राकाङ्गायां सामान्यविधिना चमस्य विभेषविधिना गोदोहस्य विधानाचमसेनापः प्रण्येत् गोदोहेन पण्यकामस्येति अतः पात्रस्याङ्गलं तन्नैकेनापः प्रण्येन प्रधानसिङ्धौ न पुनरङ्गस्य यज्ञकाष्ठनिर्मितपात्रविभेषरूपचमसस्यानुरोधेन प्रधानाहित्ति-रितिभावः। नापि त्रिवर्षस्येति विभेषोन्नेखेन कालविभेषविहितानुष्ठानसापेचस्योपनयनस्यासत्त्वात् अविहितत्त्वात्। भरावादिनेति तस्यापः प्रण्येन कुत्राप्यश्रुतत्वात् संस्कारस्य नित्यत्वं असंस्कर्त्ता पिता वालहा भवति यथासमयं तदकरणे चामवत्या यजेत ततः संस्कारं करोतीति-

पुनः प्रणयनं। नापि चिवर्षस्योपनयनमाशङ्कनीयं तच विश्रिषोद्धेवेनानुष्ठानाचेपस्यासन्त्वात् शरावादिना यथा न प्रणयनमित्युक्तं (४९)।

अयेवमाध्यद्यिकश्राइं निखं काम्यञ्च। देवीपुराणं, अष्टकामाव्यभ्यद्यास्तीर्थपाचोपपत्तयः। पितृणामतिरेको-ऽयं मासिकाज्ञाद्ध्रवः स्मृतः। मासिकाज्ञादमावास्या-

श्रुते: सुतस्य च फलवत्त्वमेवमेन: शमं याति वीजगर्भसमुद्भविमत्या-युक्ताप्रायत्यनिरासेन वैदिककर्मार्हताप्रयोजकलेन च तत्र चोपनयलं न संस्कारविशेषजनकतावच्छेदकक्रियागतवैलच्च तच जातिविशेषो-ऽखाडोपाधिर्वा तदवच्छितस्य कः कालद्रत्याकाङ्गायां पैठीनसिना पच-वर्षात्म उता: मनुना गर्भाष्टमेऽष्ट्रमेवाव्दे व्राह्मणस्योपनयनमित्युतं तेन गर्भपचमाष्ट्रमवर्षात्मकोमुख्यः शंतस्यावश्यकस्तताकरणे संस्कारस्य-न्यू नत्वपातात् खकालादुत्तरोगोण दत्यादिगोणत्वोत्तेः, गौणकालावधिय पञ्चदशवर्षपर्यन्तः गर्भपञ्चमप्राक्कालः पर्युदस्तः ब्रह्मवर्ज्ञसकामस्य कार्यं विप्रसा पञ्चन इति सनुनोक्तोपनयनस्य निरुक्तोपनयनत्वव्याप्यवै-जात्य त्र अवित रूपम जनन कताव च्छेट कं वाचं तेन व्याप्यसामग्रा व्यापनसामग्रीनियतत्वेन काम्यनरणानित्वत्वसिंदिति, स्तियस्य षड्वर्ष-क्ततीपनयनं वल रूपफलसाधनत्वेन कास्यं केनापि उपनयनसामान्य-कालाकाङ्मयानुतात्वात्रनित्यं कामनारहितस्य षष्ठवर्षस्यानावश्यकत्वं परन्तूपनयनत्वव्याप्य वैजात्यस्य वलरूपफल जनकतावच्छेदकस्य प्रयोजक-तया षष्ठवर्षस्योक्तत्वात् व्यापकनित्योपनयनस्यापि विहितकालतं तस्य वाचं व्यापकसमासिडी व्याप्यसमासिडमापत्तेः चित्रियसम सुख्योपनयन-कालस्व कादशवर्षरूपः तदन्येगी एकालाः गर्भषष्ठप्राक्कास्तर् पर्युदस्तः केनाप्यनुज्ञलादिति विवेच' (४८)।

तीर्थसर पात्रसर च उपपत्तयः प्राप्तिकालाः कास्यत्नमाह तदानन्या-यिति, आभ्यद्यिकश्राड सराङ्गले पि तिह्ना विवाहादिकरणे प्रत्यवायीत्-पत्तेनित्यतं श्रानुषङ्गिकफलविशेषजनकतया कास्यत्वसितिभावः। स्विप- श्राहादयमतिरेकोऽष्टकादिश्राहकालो बुव श्रावश्रवकः। विषाः, श्रादिखमंत्रमणं विषुवहयं विशेषणायनहयं व्यतीपातोजन्म चेमध्यदयश्च। एतांस्तु श्राहकालान् वै नियानाह प्रजापतिः। श्राहमतिषु यहत्तं तदानन्थाय कल्पते। श्रध्यदयोविवाहादिः। तत्र विवाहान्तमं-स्काराङ्गनान्दीमुखश्चाहे पितुरिधकारमाह कन्द्रोगपरि-श्रिष्टं, स्वितृध्यः पिता द्यात् सुतसंस्कारकक्षेसु। पिण्डानोहहनात्तेषां तदभावेऽपि तत्क्रमात्। सुत-संस्कारकक्षेसु सुतसंस्कारकक्षेसु सुतसंस्कारकक्षेसु सुतसंस्कारकक्षेसु सुतसंस्कारकक्षेसु सुतसंस्कारकार्यम् स्वार्यस्व विवाहान्तरे पित्रानास्यद्यकां कार्यः श्राद्यन् संस्कारसिंही हितीयादेस्तदजनकत्वात्। तयाच श्राद्यन् संस्कारसिंही हितीयादेस्तदजनकत्वात्। तयाच श्राद्यन

त्यभ्य इति संस्कार्यभातामहादिव्यावर्त्तनाय स्रोत, श्रभिविधावाङिति, श्रभिविधिर्याप्तिस्तेनोहाहमभिव्याप्येत्यर्थः। कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशे नवविष्रमाः नामकर्माणि वालानां चूड़ाकर्मादिके तथा। सीमन्तीव्यने चैव पुत्रादिभुखदर्भने नान्दीमुखं पित्रगणं पूज्येत् प्रयतो ग्रहीत्यन्नेकवाक्यत्वादितिभावः। तुशव्दसम्मार्थकतां विद्यणोति पुनरन्य इति तत्क्रमादित्रात्र तत्पदसम् प्रक्रान्तसुतपरताभिष्रायेणाह तस्म संस्कार्यस्थित, तस्म सुतस्थेत्यनुक्ता संस्कार्यस्थिति यदुक्तं तत्संस्कारात्रयत्वे न प्राधान्यस्थोतनाय क्रमादित्यसम् संप्रदानक्रममाश्रित्येत्वर्थः। पितरमाद्याय इत्यपि केचित्। तेवामित्यसम्बद्धान्य पितृणामिति श्राद्धं कुर्यादितीति पर्य्यवसितमिति श्रेषः। न च तत्पदसम् वृद्धिस्थवाचकतया संस्कार्य्यमतामहादीनां प्राग्वुद्धिस्थताभावेन कथं लाभ इतिवाच्यं तत्पदेन संस्कार्य्य पितामहप्रपितामहयोक्ष्यादानात्, द्रस्यादिवहुवचनान्ता गणसम्म संस्चका इति न्यायेन पितरो यत्न पूज्यन्ते तत्न मातामहा प्रविवित्ति वचनेन च वहुवचनात् संस्कार्यपित्यमातामहगणलाभादेता द्रश्रात्त्वर्थार्थमेव व्याचकार तत्वथेत्यादिना, न च तेवामित्यनेन संस्कार्य्य

लायन ए हापरिणिष्टं, सीमन्ती व्रयनं प्रथमें गर्भे सीमन्ती व्रयनसंस्कारों गार्भपात्रसंस्कारद्रित श्रुतिरिति। गर्भ
पात्रयोरयं गार्भपात्रः गर्भस्य उदरस्थस्य पात्रस्य तदाधारस्य स्वियाद्रित कल्पत्रः। हारीतोऽिप। सक्तत्
क्रतसंस्काराः सीमन्तेन कुलिस्यः। यं यं गर्भे प्रसूयने
स गर्भः संस्कृतोभवेत्। श्रुत सक्रत्संस्कृतपात्रजातानां सर्ववां संस्काराभिधानेन प्रखेकक्रतजातकस्मादिसंस्काराणां सुतरां सक्रत्त्वं, सक्रत् कृते क्रतः शास्त्रार्थं
द्रित न्यायाच्च। पिग्डानिति श्राइपरं कन्यापुत्तविवाहिष्यिति श्राइविधायकविष्णुपुरागैकवाक्यत्वात्, तदेकवाक्यत्या च सुतपदं कन्यापुत्तपरं। श्रोदद्रनादिखनाभिविधावाङ्। तदभावेऽिप संस्कार्ध्यक्रमवाधकस्य पितुरभावेऽिप पुनरन्यः संस्कार्थः सिपग्डादिर्वा तत्क्रमात्,
चिवं कमी यथानेकैरङ्गेरन्मील्यते शनैः। वाह्मग्रस्मिप

पित्यपितामहमा तमातामहादीनाञ्च प्रागुक्तानां कयं न यहणमिति वाच्यं तत्क्रमादित्यनेन तेषां व्यावर्त्तनात् न हि सर्व्य त तत्पदेन यावन्त एव वुिहस्था ग्रह्म ते किन्तुतात्पर्य्य वशात् केचनेति। यहा तदादि यदानां वुिहस्थातेन वुिहस्थे न शक्तिः वुिहस्थातावच्छेदकरूपेण वोधन-प्रमङ्गात् वुिहस्थातावच्छेदकालोपलचित धर्माावच्छिते तदादिपदशक्तिवुिहि-स्थाता च वुिहिविषयता उपलच्चणनिविशात् शाव्दवोधे वुिहस्थातावच्छेद-कालमा न भाने, किन्तु वस्तुगत्या वुिहिविषयतावच्छेदको योधर्मास्तेनरूपेण तदादिपदात् शाव्दवोधः चैत्रोऽस्ति तमानय दत्युक्ते चैत्रलक्ष्पेण तत्पदा च्छाव्दवोधात् एवञ्च प्रक्रते स्विपत्यस्य द्वित पित्यदेन पित्रलं प्राग्-वुिहिविषयतावच्छेदकं स्वपदेन संस्कार्य्यपित्यसम्बन्धनाभात् पूर्वे संस्कार्य्यपित्यित्वगणनाभः वहुवचनस्य गणवाचकत्वात् तेषामित्यत्व तहत् स्यात् संस्कारे व्यिधिपृर्व्यके रिखि दिविधि पृत्यके रिखि दिविधि पृत्यके रिखि दिविधि प्रित्यक्षित्र क्षेत्र विष्यक्षित्र क्षेत्र विषयक्षित्र क्षेत्र विषयक्षित्र क्षेत्र विषयक्षित्र विषयक्षित्र विषयक्षित्र विषयक्षित्र विषयक्षित्र विषयक्षित्र विषयक्षेत्र विषयक्षेत्र

नवा तेषां संस्कर्तृपितृषां संस्कार्व्यपितुः पित्रगणमाता-मण्यणानां वा यंच्यां तत्क्रमादिखन्वयानुपपत्तेः। आद्ये

तत्पदेन प्राग्विधिविधयताव च्छेदकपिद्ध लेग पिद्यगणमात्र लाभः तत् क्रमादित्यनेन सम्बन्धात् संस्कार्य पिद्यगणस्य विधेषस्य च लाभः तदा-दिपदेन क्रचित् समिन्धाद्वार विधेषवधात् वृधिविषयताव च्छेदक कृपेण वुद्याविषयस्यापि वोधात् चत्रणव यद्यदः चरित चेष्ठस्त त्रदेवेतरोजन दत्यादि प्रयोगः। चत्राचरणीययोर्धत्तत्पदवाच्ययोर्भेदेऽपि यत्पदाधीन-वृधिविषयताव च्छेदक कृषेण वुद्यविषयस्यैव तत्पदेन वोधनात्। दश्य-स्यैकादशीविद्या गान्धारी तासुपोषिता। तस्याः पुत्रभतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्क्षयेदिति प्रयोगः गान्धार्युपोषिताया एवाच दश्यमीविधैकादस्या वृधिस्थता तदन्यस्या च्यीदानीं तदन्याविधैकादस्यास्तस्यात्तां परिवर्क्षये-दित्यच तत्पदेन ग्रहणादिति दिक् (५०)।

यन्थेषां सतद्यं दूषियतुसुपन्यस्यति नविति। तेषामित्यस्य संस्कर्तृ-पितृणामित्येकः पच, स्तेषामित्यस्य संस्कार्थः पित्यितृणामित्यपरः पचः। यत्र पितृणामित्यस्य विवरणं पित्रगणमातामचगणानामिति। तत्रक्रमादितान्वयानुपपत्तेरिति। तच्छन्देन संस्कार्थ्ययच्चे तत्क्रमस्य-वाधादितिभावः। ननु तेषामितास्य पितृणामितार्थः। तत्र तत्- संस्कर्त्रन्तात्तत्वात्तच्छक्नानुपस्थितः, दितीयतैवामिख-नेनैव तेषां प्राप्तेसत्क्रमाहित्यनुवाहकतायत्ते रितिं। एय-चाम्यद्यमावस्य नित्यत्वाहितीयविवाहिऽपीतराङ्गबही है-राभ्यद्यिकशासमायभ्यकं। सर्व्याग्योवान्वाद्यार्थ्यक्तीत्यत सत्वर्धीयेनाविश्रेषादङ्गत्वप्राप्तेः। न च चसक्रद्यानि वासीणि क्रियेरन् वासीवारिणा। प्रतिप्रयोगं नैवस्युर्मातरः श्राडमेष च, दूति क्रन्दोगपरिशिष्टाञ्च तल हिडिश्राडमिति वार्चा। तस्यासक्षरवेनैव येषां नियतकारणस्त्रां तत्परत्वात्। नत्वनियतपुन: वारणवासीपरं। चतएव यानि कासीणि पुनः पुनः प्रतिदिनं प्रतिमासं प्रतिवत्सरं क्रियन्ते वैश्वदेव-विलक्षिदर्भवीर्णमासयावखायहायखादीनि तेषु प्रथम-प्रयोग एव याचं माहपूजा चेति परिशिष्टप्रकाशप्रस्थिति। र्नियतपुनः पुनः करणकासीस्वेष विषयोदर्शितः । विष्णुपुरा-गोऽपि, नामकाकीणि वालानां चूडाकाकीदिक तथा, दूखव वालानामिति वहुत्वेन निर्दिष्टं। चतएव ब्रह्म-पुराणं विवाइस्य शुइत्वे तच्छाइं ईतुरिस्याइ यथा।

क्रमादितासा संस्कर्तृक्षमादितार्थं संस्कार्थिपिष्टक्रमादितार्थं काडनन्वयानुपपिचितितात चाह चादा इति, चनुपात्तलात् प्राक्षचन्देनानुपस्थानात् तच्छव्देनानुपस्थितेस्तत्परामर्धक्रालासक्षवात्। तु मन्देन
क्षयचित् प्रक्रान्तलेऽपि प्रधानसा संस्कार्थसा पित्रगणं विचायाच्येषां
पित्रगणपूजायाः स्मुटतरप्रमाणं विनानुचितलाचेति। वितीय इति चच
कस्ये तु मन्दोऽप्यर्थे तेषामिति तत्पदेन वृद्धिस्थानां संस्कार्यपित्रगणानाः
प्रहणसा स्वरसत्पवसक्षवेन तत्क्षमादितानर्थकं सादितिभावः। चन्वाहार्थमाभ्यद्यक्षयावं तद्वले तदक्षक्षाव्यविभोषात् प्रक्रान्तविवाहः
सामान्यपरेण सर्व्वाख्येव इत्यनेनाद्यविवाहत्वेनावोधनात। मात्र इति

नान्दीमुखेभ्यः श्राज्ञन्तु पिरहभ्यः कार्ध्यं मृत्रये। ततीविवाहः कर्त्तव्यः श्रुतः श्रुभसुतप्रदः। चतएव सृखदर्धनाष्ट्रती श्रात्ताष्ट्रतिप्रसङ्गः स्यादिवाहवदिति श्रात्तविषेकः।
एतेन पुत्तविवाहादी एतिश्रातं नैसित्तिकसियुक्तसिति
निरस्तं। स्विपतुः पिरहक्तयेषु चिध्वतारो न विद्यत
दृति कन्दोगपरिणिष्टेन जीवत्पिहकस्यावश्र्यकश्राद्यनिषेचेऽपि षङ्गत्वादेव च निष्ठकादी जीवत्पिहक्षणापि जीवनमित्द्यादिस्यमेन पितासहादीनां एतिश्राद्यन्यद्यं
क्रियते। जीवत्पिहकादिना क्रियमाणि श्रावे पिखादिस्थाने पितासहाद्यूष्टमाइ विष्णुधस्तित्तरं। येवां श्रावं

गौर्थादयोमातरः पूज्या इति येवः। स्वावणी स्वावणपौर्णमास्रां साग्नि-कार्तव्यमुपाकारी आधारायणां नगमस्येष्टिःविवयोऽचसम्बन्धोऽसक्षद्यानि का की भो तिवचनसा। निर्दिष्टिमिति नासकरणादिभेदेन याचकरणं निर्दिष्टमित्यर्थः। ष्ठदः वं चिलचलस्तीत्पत्तिप्रयोजनधर्मविशेष्णनकत्वं। सुखद्रधेनाञ्चताविति विश्वपुराणे पुचादिमुखदर्भनादिने याबसिसिचितं त्रभपुचादीतासादिपदं चाचवरं तेन प्राविधिकपुचमुखदर्भनलेन आडं प्रति निमित्तता पुन्नादिम्खदर्भनस्य चिणिक्विप खंजन्यसंस्कारहारा यादं प्रति निधित्ततीपश्चिते इतिख्यतं प्रवादीत्यादिपदेन पीचपपी-चयोरपसंयह इति इनायुधव्याख्याने पुलपीलप्रपीलान्यतमम्बदर्भन-त्वेन निमित्तता सभ्यत इति तचाते दूषणं आबाइतिप्रसङ्ग इति निमित्त-भेदेन पुन:पुनर्नेमित्तिकाचरणादितिभावः। विवाहवदिति विवाहभेदेन व्याबाष्ट्रतिवदित्यर्थः तेन विवाद्रमाचे याबसगङ्खं शूलपाणेरप्यभिसत-मितिभावः। न च पुत्रम्खदर्भनत्वेन निर्मित्ततामतेऽपि असज्जद्यानि कार्याणि क्रिविदिविवचनाच सुखदर्भनाधत्ती आबाहितिविवाच्यं तदः चनसा अस अद्यानि क आणीतासा उत्पत्तिविधिना वी सितपदादि घटि-तेन प्रनःप्रनः कार्मव्यातया विज्ञितानि यानि वाकीणीत्रार्थं मालीच्य ताष्ट्रग-क कीपरत्वसः परिगिष्टप्रकाशकारादिभिक्कात्वात्। अन्यथा सटप्रति-

पिता द्यासेषाभेव स कारयेत्। सन्तीहेण च कर्त्र यं तेन याद्वं नराधिय। स जीवत्विह्याः। प्रतिनि-धिना तु यस्कस्य पितुरित्याद्यस्मिलापे प्रयोज्यं। सन्ते तु न तथित बच्चते। एवच्च हिंच्याद्वं यद्यं हात तत्कस्म चेत्तदिने विद्याद्व क्रियते तदा दिनान्तरे तत्कस्मिण क्रियसाणे तदङ्गलेन पुनर्वृद्धियाद्वकरणं। प्रधानत्याक्रिया यत्र साङ्गं तत् क्रियते पुनः। तदङ्गस्याक्रियायान्तु नाह-त्तिनेच तत्क्रिया, द्रति क्रन्दोग्यरिश्यहेन साङ्गका-णाभिधानात्। नान्दीस्थे क्रन्दोग्येविषतां यादं न कर्त्र (५१)।

ष्टादी याद्यावृत्तिनस्यादितिसावः, एतेनिति निरस्तसित्यनेनासप्रान्वयः। एतेन आह्नसा विवाहायाङ्गत्वोन् विवाहादिगतश्विहितुत्वेन च इतार्थः : उत्तमिति भूलपाणिभिरितार्थः। यदायभ्युद्यसा निमित्ततयाऽसा श्राबस्याध्यद्यिकत्वमुक्तं स्वयमि श्राबतत्वे न च विवाचादेः परभावि-तया प्राग्भावि यादेकथं निमित्तता नियतपूर्व्ववर्त्तन एव निमित्तत्वा-दितिवाचां प्रवेशे नववेश्मन इत्युक्त नवग्रहंप्रवेशस्य चिश्वत्या याद-पर्यान्त स्वायिखाभावेऽपि तद्व है: याहकाल स्वायित्वेन निमित्तत्या नवग्रहप्रवैश्वनिभित्तकालवत् परभाविनोपि विवाहादेर्निश्यस्य शादनि-मित्ततासश्चीम विवाहादिनिसित्तकालस्यापि साबेसकावादिति, तथापि नैमित्तिकाले न पारिभाषिकालक्षपं नैमित्तिकालिकहिनराक्षतं प्रधानकर्षण एव शास्त्री नैसित्तिवाल न गणनासलङ्ख, अतएव मार्कण्डेयपुराणे पुच-जन्मादिनिमित्तक एव नैमित्तिकत्वमुक्तं यथा नैमित्तिकसथीवच्ये आड-मभ्युदयात्मकं। पुचजन्मनि तत्कार्थं जातकक्षसमं नरेरिति चावस्वक-याह्रनिषेधेऽपि यावस्यकप्रधानयाह्ननिषेधेऽपि। यङ्गलाई वेति प्रधाना-धिकारिणो अङ्गाधिकारनियमादितिमावः एथञ्च खिपतः पित्रक्षत्येषु श्रविजारीनविश्वते इति वचनं प्रधानशाहादिपरं जीवन्तमतिद्धादि-त्यादिवचनसङ्गीभूतयाद्यपरिमति वाचनिकोऽप्यधिकारः (५१)।

न योषिद्धाः पृथग् दद्धाद्यसानदिनाहते। खभर्तृ-पिग्डमानाभ्यस्नृतिरासां यतः स्मृता, द्रति क्रन्दोगपि शिष्टनिषेधात्। नचाव योषिद्ध्योऽपृथग्दद्यादिति वाच्यं तथात्वे अवसानदिनाहतद्गतित्यर्थं स्थात्। तथाहि

न योषिद्वा इति। नचात्रेति, अवमान्दीयादादी अप्रथग्दयादिति, तथाच भन्नी सह मिलितानां मातृणां देवतात्वलाभेनीभयी देशेन याच मितिभावः नचीभयोद्देशेन पिण्डदाने योषितामपि तत्पिण्डभागि-वात् स्वभ मृं विख्ड मात्राभ्यस्त निरासां यतः स्वतित्यनेन विरोध इति वाचां खच भर्ता च तयो: पिण्डं तन्मात्राभ्यस्तदंशेभ्य इति व्याख्या-नात् अमावस्यादाविति न चामावस्यादी तदप्राप्ताविप हजादी माल-याहर्य प्राप्तवात् तत्रवाष्ट्रयक् वविधायक मिदिमिति, तत्रावसानदिने-ऽपि योषितां यादस्य प्राप्तत्वाज्ञताष्ट्रयकत्ववारणायावसानदिनाहते इत्युक्तमितिवाच्यं अमावस्यादी माल्याद्याभावे तत्र मातृणां कयं लिशित्याकाङ्कानिवन्तये. खभर्नु पिण्ड यात्राभ्यस्त् प्तिरासां यतः स्रतित्य-मावस्यादावयन्वयस्य वज्ञव्यत्वात् योषितां मिलितदेवतात्वे पुंसामपि मिलितदेवतात्विमिति योषित्पदवैयर्थप्रापत्तेय न च योषित् पदमनु-वादः सर्ववामेवाप्यक् याद्यमितिवाच्यं खभन्तिपण्डमात्राभ्यः इति हेतु-वित्रगद्विरोधात एतेनामावास्यायां पित्रध्या द्वादित्यवपित्यदं प्राप्त-पित्रलोकपरमिति त्वामावस्थान्याबस्थापि प्राप्तत्वात् तदनुवादेनापृथक्-व्वविधान स्थाव इति परास्तं असानितत्ते यजसानस्य पिते दत्यादि श्रुत्येकवाक्यतया पित्रश्वो द्यादित्यत पित्यपदस्य पितादिपुरुषतयपर-वाच न च मातुर्जीवने पितुः पृथक्याडार्थं योषित् पदसार्थकां असावितत्ते यजमानस्य पित्रे इत्यादि श्रुतिस्त सातुर्जीवनपचे मात्र-निरपेच्चिपत्यरा, तत्र पुरुषत्यिपिण्डादिदाने प्रयोगिविधानादितरपुरुष-व्यावृत्तिर्थवशसम्पन्नेति वाच्यं सिपण्डीकरणादूईं यत् पिष्टभ्यः प्रदी-यते। सर्वेष्वंग्रहरा माता इति धर्स्रोषु निश्चय इति ग्रातातपवचने पितादिपिग्डभागहारिलेन मालादीनां वोधनात् पित्रभ्य इत्यत पित्र-पदस्य पितादिपरत्वावधारणादे दिक्वाकातालाभाय च स्वभन्तिपर्ड-

परिप्राप्ते योषितां यां बेऽपृथक्तं विधीयते किंवाऽपृथक्यां विणिष्टं विधीयते। नाद्यः यमावास्यादी योषिदानाप्राप्ती कयं तदनूद्यापृथक्त्वमात्रविधानं। नान्यः
तथापि अवसानदिनाहतद्वयस्य वैयर्ध्यापत्तेः यवसानदिने तु। स्वीणामप्येवसेवैतदिको द्विष्टमुदाद्वतं स्ताइनि
यथान्यायं न्यां यद्यदिहो दितं, द्वित मार्कग्डेयपुराणीयेन यां प्राप्ते विशिष्टिविधित्वानुपपत्तेः। तस्माद-

माताभ्य दत्यमा स्वीयभर्न् साम्रोद्देश्यकदत्तिपण्डभागपरत्वं नतूत्तव्युत्पत्या उभयोद्देश्यकपिण्डभागपरतित ति विरोधनाष्ट्रयक्दानस्य पूर्व्वार्वे वोधना-सभवाच। नान्य इति, विशिष्टविधित्वानुपपत्तेरिति, अवसानदिने पृथक्योषित्याद्य प्राप्तत्वात् सामान्यविभेषन्यायेन पृथग्द यादिति सासान्यविधेरवसानदिनेतर या हु परत्वलाभे किसवसान-दिनाहते इति वचनेनेति भावः। यद्यपि अधावस्थायां पितृस्था द्यादिति पृयक्षियशाबपातावप्यपृयङ्साख्यावस्य विधेयता सामान्य-विविवनात् पृथक्षाडापृथक्षाडयोरविरोधात् न चैक्षाडेन स्तिसिडी श्राह्यान्तरकरणमनर्थकं इति वाच्यं, साह जीवने पितृणां पृथक्शाहं तद्वरिप्रध्यक्याइ मिति विकल्पद्ये विधिदयविकल्पनात्। तयाऽव-सानदिने पित्रजीवने पृथङ्मात्य्याचं तदजीवनेऽपृथङ्मात्याचित्रति विकलापत्या अवसानदिनाहते चत्यस्य सार्थक्यसक्षव इति तथापि अवसानदिनभिन्नकालेऽपृथग्योविद्धेगादेचादितिविधी कालविशेषा-लाभात् सामान्य विध्यसम्भवः किन्तु यत्र हिच्यादी मात्रयाडं सामान्यतीविच्तिं तत्रैव छन्दोगानासपृथक्याचविधायकसिद्सिति करोगोष्टदाव चष्टकाया चारिय ङ्मात्र भ्ये दियादिति विभीषती विधि-कल्पने भवमानदिनाहते इत्यसा वैयर्थं इदस्पलचणं भिन्नभिन विधिक स्पनगौरवचेति चानुवादः उज्ञार्यक्षेधक म्बदः तयाच पृथक् पदस्यार्थी न विविच्चतः किंग्तु उद्देत्ततया नजः पर्व्युदासत्वे तात्पर्थ-ग्राह्म इतिभाव:। वैपरीत्यं अवसानदिनाहते इतिवाक्यसनुवादः

वसानहिनाहतस्ति वाक्यसा सार्धकलाय पृथक्पदमेवानुवादः। न च वैपरीक्षं तथाले वाक्यानुवादः सात्।
प्रव्ययपदानुवादे तु विभक्तेनीनुवादकतितः। एवमेवेपानन्यायाचार्यः। तसात्। साष्ट्रशावन्तु पूर्वं सात्।
पितृणां तदनन्तरं। ततीसात्रामहादीनां वृद्धी शावचयं
स्मृतं, द्वति भाषात्रवचनात्। चन्वष्टकावद्गी
हुला देवपूर्वं साचे वितामधी प्रितामधी पूर्ववद्वाद्धा-

पृथक्पदं मञर्थान्वयितया सार्थकं। वाक्यानुवादः स्रादिति एकस्र पदस्यानुवादकातया सामञ्जस्ये एकवाक्यानुवादकताक ल्पनानीचि-त्यात्। ननु विभक्तेरि प्रक्तिमत्त्वेन पदलात् प्रयक्पदानुवादेऽपि वाक्य-स्यानुवाद अतासंग्रादि खात आह विभन्नो नी नुवाद कतिति, विभन्नो न्ति स्वादिति-भाव:। शातातपवचनादित्यादिपश्चमीत्रयसा जन्यज्ञानविषयत्वमर्थ-स्तमा याडे अवयस्तया च प्रातातपादियचनजन्यज्ञानविषयेषु हडाादिनि-मित्रकारा देखियार्थः विषयताग्तसम् वसमादि निमित्तकत्सम् च वाक्यार्थे न प्रवेश:, किन्तु वोषिदितरत्वसा स्वार्थकार्या मात्रशाहसावसान-दिनभिन्ने प्राप्ते तज्ज्ञापनाय, तेन छन्दोगोऽवसानदिनभिन्ने योषिदि-तरेभ्यः पिरुभ्योदयादिति वाक्यार्थः योषिदितरेभ्य इतिविश्रेषण-सार्धकावायित्युक्त्या पित्रध्य इतिविशेष्यपदपूरणं स्चितं योगिवाच अपद्धाकाङ्कलात् स्त्रीणामशीचान्ति वितीयदिनादि या हेषु पर्युदासापत्ते अतएव शातातपेन सिपण्डी करणादूई मित्युक्तं तत पिछपदं प्राप्तिपतृलोक्षपरं अख्या योषिदितरत्वसम्बद्धावर्त्त कतापत्तेः तयाच बद्यादिनिधित्तकयादं अवसानदिनभिन्नकालीन प्राप्तपितृ-लोकयाद्य वेनासावास्यादिनिसित्तकयादसाधारणक्षेणानृद्र योषिदि-तरत्वं विधीयते येन रूपेण प्राप्तं तेनैव रूपेणानुवादः क्रियत द्ति नियमाभावात् न चावसानदिनेतरस्मिन् छन्दोगोयाषिक्षेत्रा न दया-दिति नञः प्रतिषेधपरतास्तु किं पर्य्युदासेनिति वाचां ऋन्दोगानां मातृत्राइस्य प्रत्यवायजनकत्वात्रवणात् तृतिरूपफलस्य भर्त्तृपिण्डभागि-

णान् भोजयिता, इति विष्णुसूचात्। सृताहिन तु कर्त्तव्या स्त्रीणामप्युत्तरा क्रिया, इति विष्णुपुराणात् वृद्धान्वष्टकावसानदिननिसित्तकशाहेषु कृन्दीगोऽवसान-दिनव्यतिरेकेण योषिदितरेभ्योदद्यात् (५२)।

ततश्च योषिदितरे भ्यद्गति विशेषणसार्धकात्वाय तासां दानाभावे तव तसा योषितां क्रबं दृष्टिसितिचेत् अमाव-सादिसामान्यनिमित्तात् प्राप्ताभ्यः खभर्तृपिण्डमावाभ्यः। तवापि क्रयं तत्प्राप्तिरिति चेत्। सपिण्डीकरणादृईं यत् पितृभ्यः प्रदीयते। सर्वेष्वंश्रहरा माता द्वति धर्मोषु निश्चयः, द्रति शातातपवचनात्। न च कन्दोगेत-रोष्टद्यादी योषिद्धाः पृथक्षादं द्यादिति वाच्यं विधय-प्रागर्थापोषकात्वेन खभर्तृपिण्डमावाभ्योयतस्तृप्तिरित्यसा-

तया सिदिप्रदर्भनेन खतन्त्रतयासातृश्राद्य निष्मलत्वावगतेः पर्यु-दासखीकारात् नजोऽन्यान्याभावे लाघवेन भक्ततया निषेधपरतया लचणा पत्तेयः न च योषिदितरश्राद्यविधानेऽपि क्रमं योषितां श्राद्धनिष्ठत्तिः सात्रे पितासहै प्रपितासहै द्यात् इति सर्व्वभाखिसाधारणविधिना मातृ श्राद्धापि प्रातेरिति वाच्यं सामान्यतः प्रातस्य पुनर्विभेषविधानसन्येक सित्यनुपपत्तिमुखेनापरविभेषनिष्ठत्तिरवसीयते त्राह्मयाचितं भुज्जीत इत्यादी याचितसोजननिष्ठत्तिवदिति (५२)।

ननु योषिदितरत्विशेषणं किमर्थिमत्वत ग्राह ततश्चेति, नन्वेममुद्दिश्य दत्तेन पिण्डेनान्यस्य तृप्तावितप्रसङ्ग इत्यभिप्रेत्याह तत्रापीति,
सत्रं वंग्रहरेति, पितमुद्दिश्यदत्ते धने पत्नीस्रत्वत्रत् एकत्वं सागतायसाच हमन्त्राहितव्रतैरित्यादिवचनादिति, क्रन्दोगस्य प्रक्रान्तत्वेनीपस्थित्या
तत्र नञ्चभेदान्वयेन क्रन्दोगितर इत्यस्य लाभः, विधयम्क्रन्दोगितरकर्तृकयोषित्सम्प्रदानकपिण्डदानरूपः, प्रागर्थः पूर्व्वार्डस्यार्थस्तदपोषकात्वेन तदनुपयोगित्वेनेति। ननु न योषिद्भा इति वचनं यदि निरुक्त-

न्वयानुपपत्तेः । किन्तु न योषिद्वा द्रष्टसा योषिदितरेश्य द्रुव्यक्षेत्र वे द्रद्वादी योषित्सप्रदानक याद्विधीनां कन्दोगेतरक पृंकित्वं प्रतीयते, यजमानि चितं इविज्ही-तीतासार्थानुरोधेन स्वर्गकाम पदसा मेतरपरत्ववत् । व्यवा न योषिद्वा द्रतासा कन्दोगेत रोष्ट्रद्वादी योषिद्वाः पृथक्षाद्वं द्यादि स्वेवार्थः । ततस्य वृद्वादी कन्दोग-योषितां क्षयं तृतिरित्याकाङ्कामुख्यात्र उत्तराद्वीन्वय द्रति । चन्वष्टकायान्तु साम्नीना नेवाधिकारः । विष्णु वचने होमत्वादेवानिप्राप्तेरिक ग्रहणं तद्वियमार्थः । नचान निष्मा ने करण्होने विप्रपाण्यादेविधानाद्वापि तथितवाच्यं । प्रक्षती भूतशाद्वविध्यक्तस्याधारस्य विक्षती-

व्याखानित छन्दोगयोषित्सम्पृदानकिष्णदानिषिधतात्पर्य्यकं तदा

हाद्वादो मातृत्राहपरवचनस्य तनवाद्वाहिरोध इत्यत प्राह्न किन्विलादि ।

प्रमाधिकारिले तस्येचणासभावाद्यज्ञमानिचितत्ववाधेन तत्तत्

श्रुतिविरोधः स्यादिति स्वर्गकामपदस्यान्धेतरस्वर्गकामपरत्वदित्यर्थः ।

नतु न योषिद्वा इति वचनस्य योषिदितरत्वरूपसम्पृदानिवर्भषणविधा
यक्तत्वमफलं । स्विपतृभ्यः पिता दद्यात् स्वतसंस्वारकर्मास्, इत्यादि

कन्दोगपरिभिष्टादि वचनेन योषिदितरेषां पित्रादीनां स्वाहस्य प्राप्तत्वात् ।

कन्दोगयोषितां स्वाहस्याप्राप्तत्वाच न तासां स्वाहकरणप्रसङ्गः । मातृ
स्वाहन्तु पूर्वं स्वादित्यादि वचनस्य कन्दोगितरपरत्वलाभाय तत्समा
नार्यकतामिप्रसेख न योधिद्वा इति वचनत्र्यास्थानमाद्व स्वविद जीवत् ।

स्वत पृथक्पदमपि सार्थकं तस्य मात्रादिक्षमेण स्वाहतात्पर्यक्तत्वात् ।

उक्षाहिस्य प्रागर्थापोषकत्वेऽपि सार्थक्यायाह तत्रभित सत्र केचिद् जीवत्

पतिकानां स्वतानां कन्देगयोषितां ह्यादीतृष्व्यभावप्रसङ्गः पितृस्वाहा

भावादिति, न योषिद्वा इति ह्यादी विहितमातृत्राहमवसानदिन
भिन्नकालीनयोषित्साद्वेनानृद्य तन्नाप्रयक्त्वं विधीयते स्वत हेतु-

भृतश्राह्मविश्रेषविहिताधारेण वाधात्, शरमधविहिषा कुश्रमधविह्मविष्यत्। न वा लौकिकाग्री होमः। न पैत्रयन्नीयोहोमोलौकिकाग्री विधीयते, द्रति मनुना निषधात्। वाचस्पतिमिश्रीऽप्येवं। (५३)।

श्रयेकादश्युपवासवताधिकारिगः। यावद्गोपवसिञ्चन्तः पञ्चनाभदिनं शुभमिताच जन्तुपदश्यवगात्। श्रष्टा-

श्क्रन्दोगयोषितां उभयोद्देश्यवदत्तिप्रक्रभागादेव तृतिजननादिति श्रेषार्दे न च तावता क्यं जीवत्पतिकाया योषितस्त तिरुभयोद्देश्यकपि खा-भावादितिवाचां। न योषिन्ना इत्यव प्राप्तिपतृ की कपतिकास्य इति विशेषणं पूरणीयं। आसामित्यसमापि प्राप्तिपत्नोकपतिकच्छन्दोग-योषितासित्यर्थः। पृथक्पदं भर्त्तृशासित्याभावविशिष्टपरं तत नकी-योग भर्त्त, सिंहताभ्य इत्यर्थोत्तभ्यते, एवश्व जीवत्पतिकाभ्यः पृथग्दानं विशास्त्रादिसामान्यवचनात्। सिवण्डोकरणादूईमिति भातातप-वचनं सर्वगाखिसाधारणसमावस्थादी सातृत्राङ्गाभावेऽपि तासां तृति-वोधकिमला हु:। तिचालां नान्दी मुखाः पितरः प्रीयन्तामिति दैवे वाचियत्वा नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः पितासहेभ्यः प्रपितासहेभ्यः माता-महेभ्यः प्रमातामहेभ्यः इहप्रमातामहेभ्यः प्रीयन्तां। न स्वधाञ्च प्रयुश्चीतिति गाभिलस्त्रे पिवादिषट्पुरुषाणामेळ विशेषतीनिईशादित। स्रोमलादेविति सुजेति पदलव्यादित्यर्थः, तित्रयमार्थं प्रक्रतीभूतमष्टका-यादं आधारान्तरं विप्रपाखादि, विक्रतीभूतमन्बष्टकायादं तत विग्रेष-विहितोऽग्निरूपाधारस्तेन वाधादित्यर्थः प्रक्ततीभूताग्निष्टोमयागे क्रमस्यवर्हिविहितं तदिक्षतीभूतयागे शरमयवर्हिविधानात् क्रमस्य विहिंबीवाधविद्यार्थः न वा लीकिकारनी होस इति तावतापि अग्निनिय-मस्य साग्निकर्त्तव्यतायाय सन्धव इति भावः (५३)।

अयेकादग्युपवासाधिकारिण इति वैशावावैशावग्रहस्ययत्यादि-भेदे-नाविकारिविशेत्रभेदाय वहुवचनं। अधिकारी विधिनियोजातया करणाकरणयोः पुख्यपापभागिता। मर्त्तापदवैयर्थ्यापत्तेरिति तथाच व्हादिधिकोमत्त्री ह्यपूर्णाणीतिवत्सरः। भुङ्केया मान-बोमोहादिकाद्य्यां स पायक्षदिति कालमाधवीय-धृतनारदवचने मत्त्रामानवपदयोः यवणात् मनुष्यमाव-स्थाधिकारो न जाखायमविचारः। एवञ्च निर्धापवासी योमत्त्राः सायं प्रातर्भुजिक्रियां। संयजिन्मतिमान् विप्रः संप्राप्ते हरिवासरे। द्रित काखायनवचने मत्त्री द्रस्यभि-धानानत्तरं विप्र द्रितिपदं तस्याधिकदोषार्थं। चन्यया मत्त्रीपद्वेयर्थांपत्तेः। नव, चनद्वान् बद्धावारीच चाहिताग्रिञ्च ते चयः। चञ्चन्त एव सिद्धान्ति नेषां सिद्धिनस्त्रतां। द्रित स्मर्णात् साग्निक्षचारिणोर-चानिधकार द्रित वाच्यं। हेमाद्रिधताग्निपुराणवचनेन तथारप्यिकारावगमात्। यथा। गृहस्थावस्मवारी च

विप्रस्य सर्त्तात्वकी र्तनं सर्च्यवेनी प्रवास। दिकारं स्चयति। विह्निताकरणनिविद्वाचरणयोरिषकदोषताप्रयोजकविप्रत्वमितमस्वाभ्यासुपादानश्व
भोजनेऽधिकदोषं दर्भयति न तु विप्रत्वमितमस्वाभ्यासिकारिमिति
भावः। परन्तु वचनिमदं भोजनचतुष्टयनिष्ठस्वात्मकोपवासासमर्थे
भोजनदयनिष्ठित्तरावस्यकीति प्रदर्भयिक्व्योपवासकचणपरिमिति वोष्यं।
स्वत्रुवन् वृषः स्वयञ्च दृष्टान्तार्थः व्रह्मचारी सक्षतसमावर्त्तनः। सिद्धान्ति
स्वत्रार्थम् मा भवन्ति वृषस्य कार्य्यं भारवहनादि, व्रह्मचारिणः कार्यः
सध्ययनगुरुश्वसूष्वादि, स्वाह्मतापृकार्यः होमतदर्थकाष्ठवहनादि।
नैवां सिद्धिति न सिद्धः न स्वकार्यकरणसामर्थः। तथाच व्रह्मचारिणः स्वाध्ययनाद्यन्तरोधात् साण्वकारावग्रमादिति। तथाऽनङ्गानिति वचनं
वारिणः स्वाध्ययनाद्यन्तरोधात् साण्वकारावग्रमादिति। तथाऽनङ्गानिति वचनं
कास्योपनासप्रतिषेवकं वज्ञतस्तु कास्यमि स्वाध्ययनाद्यविरोधे व्रह्मचार्याहितागिनभ्यां एक्यं सामान्यनित्यञ्च स्वाध्यायाद्यन्तरोधे प्रतिनिधिना
संवाद्यं एकादस्यादिविग्रेषोपवासस्तु स्वयं कर्त्तव्यः न तु स्वाध्यायाद्यन्तरोधे प्रतिनिधिना

त्राहितागुलयेव च। एकाद्यां न भुद्धीत पच्यी-रूभयारिव। संभर्त्त्राया व्रतीपवासादिः पृषङ्निषिद्वा मनुना, यथा। नास्ति स्त्रीणां पृथग्यद्भी न व्रतं नाष्युपोषणं। पतिं शुश्रूषते यत्तु तेन खर्गे सही-यतै। विशानाऽपि भर्तः समानवतचारित्विसिखुत्तां। समानवतचारित्वं भर्त्वताचरणे तदानुकूल्यकारित्वं। यत्र तु सावित्रीव्रतादी विशेषविधिस्तत्र भर्ननुत्रया पृथगपीति। यथा गङ्घः। कामं भर्त्रज्ञातव्रतोप-वासनियमे ज्यादीनाम स्थासः स्त्रीधर्यः द्वति । यत्तु, पत्यैा जीवति या नारीउपोध्य व्रतमाचरित्। आयुः संहरते पत्युः सा नारी गरकं बजित्। इति विष्णूतं तद्दननु-न्नातविषयं। कात्रायनः, विधवा या भवेद्वारी भुन्नी-तैकादगीदिने। तस्यास्तु सुक्ततं नध्येद् भूगहत्या दिने दिने। जीमृतवाहनः, एकाद्यां न सुद्धीत पच्चिंगरूभयारिष । वनस्थयतिधन्धीऽयं मुकामेव सदा गृही। द्रति गी सिलवचनाङ्गृष्टिणः गुक्की काद्रग्यामेवाधि-न च ग्रहीतरपरत्वे क्षणीत्रादश्याः, कयं, दशस्यां नियताहारीमांसमैयुनवर्ज्जितः। एकादश्यां न भुज्ञीत पचयारुभयारिय। इति विष्णुधस्मी चरमत्स्य-

रोधात् प्रतिनिधिना सम्पाद्यंतयोरिप विश्वेषोपदेशादितिभारः। तदानुसूख्यकारित्विमिति पतिकतकर्मः पैव स्त्रीणां तत्फलभागचारित्वादितिभावः। पत्नीससभावन क्रियमाणे कर्माण यदुपवासादिकमङ्गं तत् पत्नाः
कार्श्विमिति वोध्यं। भूणच्छ्या भूणच्छ्यापापं दिने दिने प्रत्येकादिश्व।
स्वमितं सतं तत्मस्यन्थीति यावत्, स्पयित्वा पक्षा यतीनां मांस-

पुराग्यवचने उभयवचीयद्यम्यां मांसमेष्नवर्ज्ञतिषधान-मिति वाच्यं। वानप्रस्थस्यापि ऋती सैयुनसंभवात्। चतएव पुरागे ऋषिकुमाराः श्रूयन्ते। पुत्रेषु भार्त्यां नि: चिप्य वनं गक्तेत् सहैव वा। दति सन्वचनाच तस्य मांसभाजमसयाइ वीधायनः। चय वानप्रख-हैविध्यं पचमानका अगचमानका श्चे युवक्र स्य। कियह्री खतोऽवसितमाममांसंव्याघुड्काधीनहतमिधेवमाहिभिर-न्येर्चा हतमानीय श्रवित्वा सायं प्रातर्गाही शं कृत्वा अयस्यतिथिवति । इत इत्वा अयेत के बभच्या द्रति । मधुमांसवर्ज्जनन्तु वनस्थानाममांसङ्त्रीनामित्रादि। तसात् क्यं दयस्यां नियताहार द्यादि वचमवलाद-पुत्तुसा गृष्टिगोऽप्युभयैकादभ्युववासव्रतिमिति। तथा इन्दु-चयेऽर्कसंक्रान्त्रानेकाद्यां सितेतरे। . कुर्व्वीत पुत्तवस्थनचयात्। दति वायुपुराणवचने वस् पद्यवणाच । न हि वस्यूण्न्यः कश्चिद्गृही पितृश्वावा दियु वन्युनइर्यनात्। वध्यदस्याने दारेति कचित् पाठस्तवापि तथैविति। यच न कुर्ध्यात् पुचवान् ग्रही-त्यच पुत्रवानितिपदं तत्पुत्तृवतां वान्यस्थादीनायि। निषेधार्थसित्या ह। हेमाद्रिरपि, शुक्तामेव सदा गृही-

भोजनिविधाइयतीति। इतरवत् ग्रहस्य इव। अप्रांसहत्तीनां त्यत्त-मांसभोजनानां स्त्रीविरिष्टणां तेषां निवृत्तिधर्मात्वात्। न च श्रीतेन पण्यता अमां यजेत वनाश्रमीत्येकादशस्त्रन्थवचनमध्येवत्परं। वन्धु-पदश्रवणाचिति वन्धुपदं ग्रहिमाचस्य निषेधाधिकारं सूचयित्तत्तच वीज-माइ न हीत्यादि। तथैवेति तथाच दारपदमपि ग्रहिमाचमधिका- तित्रचन । श्री लोचनया सकलक्षणोकादशी जूपवासाभाव-प्राप्ती । श्रयनी वोधनी मध्ये या क्षणो कादशी भनेत्। सैवो पोष्या एष्ट स्थेन जान्या कृष्णा कदाचन । द्रति ब्रह्म वैवर्त्तत्रचने श्रयनवोधन मध्यवर्त्ति कृष्णोकादशी जूपवास-विधानात्ता स्वेव एष्टिणो ऽधिकारः, नान्य व प्राप्ता भावात्। सामा त्यविशेषयो विक न्यांसकावात् पर्युदास एव। तैन श्रयनवोधन मध्यवर्षि कृष्णो कादशी व्यवि पुच्चवतो एष्ट-स्थस्य नाधिकारद्र त्याष्ट (५४)।

अवीच्यते। ग्रह्मश्ची ब्रह्मचारी च आहितान्निस्तयैव च। एकाद्रश्यां न भुञ्जीत पचयोक्तभयोरित। दृति हलायुधहेमाद्रिष्ठतान्निपुराणवचने ग्रहस्यमावस्य कृषी-

रितया स्वयित तह वने कर्नृ विशेषाश्रवणादितिभावः। श्रप्तस्थेति श्रक्तामेव मदा ग्रह्मीत वचने ग्रिष्ठपदस्य पुश्चवद्ग्रहिपरत्वादितिभावः। इन्दु खयेऽमावास्यायां। वानप्रस्थादीनामपीति, तथाच ग्रहिणां पुश्चवताञ्च निषेशः न तु पुश्चवत्त्वं ग्रहिविशेषणं पुश्चवन्धुधनच्चयादित्वविशेष-श्वणात्। पुश्चवतो ग्रहस्थस्य नाधिकार इति ग्रहस्थमामान्यनिषेधे पुनः पुश्चवद्ग्रहस्थस्य निषेधोविशेषनिषेधायेति भावः (५४)।

मतद्वयं दूषयित, श्रवीच्यत इति, श्रायोजकिमिति, तथाच पुचादि-चयरूपानिष्टस्चनाय पुच्चत्पदं न तु कर्नृविशेषणतया विविच्चत-मितिभावः। दोषकथम्बस्य दोषविशेषचापमाय योऽनुवादः क्षण्येका-स्माां क्षयं ग्रहो नोपत्रमिदित्याकाङ्गोत्यापितं बाक्यं तिविश्यं तेन वोधितभित्यर्थः न च कर्नृविशेषणार्धसिति न तु कर्त्तृविशेषणतया वोधितभिति, वन्धुमच्चेऽत्युपवास इति भावः। कर्त्तृविशेषणतया वोधितं पुच्चव्यभित्यर्थः। चत्रपव कचिद्रथैवादस्य प्रामाण्यानुरोधा-देव। च्रामाण्यभितीति। व्यवहारात् प्रदानां शक्तिग्रहस्तथाहि क्षेनिचिद्देन घरमानय इत्युक्ते तत् श्रुत्काऽपरेण हेर्द्धेन घर श्रानीतः काद्य्युवासप्राप्ती युक्ताभेव सदा ग्रहीति पुचवद्गृहि-विषयं तस्येत्र कृष्णायां निषधम्नतः। तयाचा यास-सिक्षृय ब्रह्म ग्राणां। एकादगीषु क्षणासु रिवसं-क्रमणे तथा। चन्द्रस्र्यीपरागे च न कुर्यात् पुच-वान् ग्रहीति। न च व पुमत्त्ववत् पुच्चव्त्वमप्यप्रयो-जक्षां। वधुपदं दोषक्षयनार्धवादमात्रं नतु कर्चृविश-षणार्थं न कुर्यात् पुववान् गृहीति विधिवाक्ये पुच्-वानिति कर्नृविशेषणासिति विशेषः। अतएव सीमां-

ततः पार्ष्वस्थी वाली घटानयनकृपं कार्यः घटमानयेति गाव्दप्योज्य-मित्यवधारयति तत्रस् घटमानय गामानय इत्यादि-वास्यादावापीहापाभ्यां कार्थान्वितघटादी गिक्षं ग्रह्माति, इसच्च भूतले घट इस्यादिगय्दान शाब्दवीधः घटादिपदानां कार्थान्वितघटादिवीध एव सामर्थावधारणात् कार्ख्यतावोधं प्रति च लिङादोगां सामर्थ्यावधारणादिति लिङ्पदाद्य-घटितवाक्यात्र गाव्दवीध इति मीमांसक्रीकादेशिमतं तद्भिप्रायेणेदं। तिडाग्लस्त्राभ्यामिति, वेदसामान्यस्य प्रामाण्यसाधकस्त्रास्यामित्यर्थः प्रामाण्यमुक्तसित्यनेनास्यास्वयः। विधियक्तिविधिसामर्थः भवसीदन्ती यापालाले नाचाते वहविज्ञव्ययायाससाध्ये हेषोदयेन प्रदित्त जनयन्ती स्तुत्यादिभिः फलमाधनत्वाद्युपस्थापकवास्यैगत्तभ्यते फलसाधनतावोध-चारा देवविवयनेन प्रवृत्तिजननो सुखी-क्रियते यया रात्री जुंहोतीति विधिना प्रतितिष्ठन्ति इवै य एता रात्री रूपयजन्ती त्यादिस्तुतिबादक-स्येकवाक्यतया प्रासाण्यं तत्र प्रतितिष्ठन्तीति ससुदितवाक्या इचण्या राविसवरणं प्रतिष्ठाकासकार्यसिति प्रतिष्ठाकामस्योपस्थित्या वाक्याभ्यां वोध:। न च वाक्यस्य पदसमुदायात्मकस्य शक्त्यभावात् कर्यं वाक्यसम्बन्धक्पलच्णितिवाचं पदार्थस्थेव विभिष्टपदार्थक्ष्पवाक्यार्थस्यापि शक्या प्रतिपादित्वात् तत् सम्बन्धस्वैव वाक्यलचणापदार्वतात् एकेन पदेन लच्याप्रतिष्ठाकामादेशपस्थापने पदान्तरवैयर्थं स्थादिति। एवमन्यत्र यथायोगं विवेचं पिडार्थानामिति स्तृतिभिन्नानामर्थवादा-

सायां साम्रायस क्रियार्थत्वादानर्थक्यसतद्धीनामिति सूत्रेण साम्रायस्थ वेदस्य क्रियार्थत्वात् कार्व्यार्थत्वात् सत-दर्धानां कार्याप्रतिगादकानामानर्थक्यमप्रामाण्यमिति पूर्व्यव्ययित्वा सिद्यान्तसूत्राभ्यां विधिना त्वेकावाक्यत्वात् स्तु यथंत्वेन विधीनां स्युरिति क्रिचिन्त्रतार्थानाञ्च क्रियार्थेन समाम्रायादियेताभ्यां क्रिचिन्तिस्तिवायसीदनी स्तुत्यादिसिन्तस्थत द्रति न्यायात् क्रिचिन्त्रतार्थानां सिद्या-र्थानां क्रियार्थेन सहैकवाक्यत्वाञ्च प्रामाण्यमप्यक्तं। स्रतो न कुर्यात् पुत्रवान् गृहीति निध्धविधी पुत्रवस्वेने-वाधिकारित्वं (५५)।

श्रवेव पुत्त्वश्रधनचयार्धवादः। श्रतः पुत्रवतएव गृहस्यस्य कृष्णायामनिधकारः। श्रवेव श्रयनवीधन-मध्ये प्रतिप्रसवः। जीसृतवाहनस्तु। यदीक्छेहिष्णुना

नामित्यर्थः यथा यो ब्रह्माणं विद्धाति पूर्व्वमित्याद्यवेवादानामीक्षरं सुपासोतित्यादिवाक्येरेकवाक्यतया प्रामाण्यभिति वेदमावर्ध्वेव साचात् परम्पाया क्रियाकार्थ्यतापरतया प्रामाण्यभितिभावः। क्राचिच विधि वाक्ययोरप्यङ्गाङ्गिभावनाभायैकवाक्यता यथा दर्भपौणीमासाभ्यां यजीत स्वर्गकाम दत्यादिवाक्यानां समिधीयज्ञतीत्यादिवाक्येरेकवाक्यता। यथोत्रं भद्यादैः स्वार्थवोधसमाप्तानामङ्गाङ्गत्वव्यवस्थया। वाक्यानामेकवाक्यतं पुनः संहत्य जायत इति। एतत्यायस्य प्रक्रतोपयोगमाङ निषेध-विधाविति, त्रत्र सतस्यर्थविध्यत्वं तस्याधिकारित्वमित्यनेनान्वयः पुक्रवन्त्वेने वाधिकारित्वमिति ग्रहस्थस्येति ग्रेषः। एवञ्च यत्न वाक्ये, वेदलग्रहस्थपरं तत्र गृहस्थपदं पुच्चवद्ग्रहस्थपरसितिभावः (५५)।

यनैविति एतिन्विधवाक्ये एवेत्यर्थः पुक्तवस्युधनद्यश्चितादः पुक्तवस्युधनार्थवोधनार्थवादैकवाक्यता एवच्च पुक्तवस्युधनद्ययादित्यच चयपदं क्षणो नादश्युपवासनिष्ठद्यसाधनतापरं प्रयोज्यता च पच्चस्यर्थः तस्याया-

वासं पुत्तुसम्पद्मात्मनः। एकाद्य्यां न भुञ्जीत पचयारभयारिष, द्रति गृहिणो न निषिडं काम्यत्वात्। अव पुत्तार्थिनः सकृहिधानं विष्णुना सहवासार्थिनस्तु यावक्जीवाचरणं। काम्ये रव्यादिदीषीनास्ति निस्ये स द्रत्याह। हेमादिरिष। केचित्तु। वैष्णवस्य गृहिणः पुत्तिणोर्भक्याङ्गदादेः कृष्णोकाद्य्यपवासयवणात् सर्वे-षामुभयैकाद्यां नित्यवतोपवासेऽधिकारः कृष्णानिषे-

ख्यातार्थमाध्यत्वेऽन्वयः प्रतियोगिनिर्दिष्टमाधनत्वस्याभावेसाध्यताप्रयो-जकत्वात् तथाच क्रणोकादध्युपवासकरणाभावः क्रणोकादध्यपवास-करणनिष्ठपुनादिचयसाधनताप्रयोज्यपुनुवद्ग्यहस्यसाध्यतावानिति पर्ध-साध्यता च चैभिकी। उपसंहरति अतद्रति, अबैव पुनुवद्ग्टहस्थस्य क्षणीकादण्युपवासनिषेध एव प्रतिप्रसवः वाधकं पुन-र्विधानं। वहवस्तु प्रामाणिकाः प्रथमतः कार्यान्वितघटादी ग्रत्यव-धारणेऽपि पश्चात्तस्य त्यागस्यौचित्यात् गर्भिणौ ते बन्या पुत्तस्ते जात इत्यादी मुखप्रसादमालिन्याभ्यां सुखदु:खेऽनुमाय तत्कारणत्वेन परिशेषाच्छाव्दवोधं निश्चित्व तद्वेतुतया तच्छव्दस्यावधारणेन व्यक्षि-चाराच न कार्यान्विते मित्तिरित्यर्यवादानां विध्येकवाक्यतां विनापि प्रामाण्यमिति प्राहु:। सक्त दिधानिमिति, काल विशेषानियमात् सक्त दि-धानेनैव पुनादिसम्पादकादृष्टसिंदी च पुनिरच्छानुत्पत्ते: पुत्रोत्पत्ती च पुत्तवत्त्वेन निषेधविषयत्वाच । विश्युना सह वासस्तु पारलीकिकतया तत्कालवा इल्याय तद्धे यावज्जीवमा चरणस्य युक्त लादिति भावः। एवच्च ग्रहस्यस्य क्षणीकादस्यां न नित्योपवासाधिकारः वोधनी मध्येऽधिकारोऽस्ति तत्रापि पुत्रवतां ग्रहस्थादीनां नाधि-कार:। पुत्तृवतामपि सर्वेषां विश्वासहवासकामानां यावज्जीव-मधिकार इति जीमूतवाइनमतं। न नित्य इति एवच्च रक्साङ्गदादीनां यत् क्वर्णोकादस्यां व्रताचरणं तत्कास्यतयिति भावः। ईमाद्रिमत-निष्कर्षश्चायं पच्चदये काम्ये मानवमान् स्याधिकारः नित्यव्रते ग्रुलायां

धस्तु गृहिविषयः कास्य एवेत्याहः। तन्न। पुत्तवां-स्रोव भायप्रीवान् धकीयुक्तस्तयेवच। उभयोः पद्ययोः कास्यं कुर्याच वैष्णवं व्रतमिति वचनेन कास्य एवाधिकारो न नित्यद्रत्याह (५६)।

वस्ततस्त वैष्यवानां सपुत्तागां गृहस्थानासि सर्जाः कृष्णानित्या हलायुधहेसाद्रिष्ठततत्त्वसागरवचनात्। तद्यथा। यथा श्रक्ता तथा कृष्णा यथा कृष्णा तथेतरा। तुल्ये ते मन्यते यस्तु स वै वैष्णव उच्यते। कालसाधवीये

नरमात्रस्थाधिकारः क्रणायां श्रयनीवोधनीमध्यव्यतिरिक्तायां ग्रहस्थस्य नाधिकारः श्रयनीवोधनीमध्ये क्रणायां ग्रहस्थस्याधिकारस्त्रत्रापि पुनु-वतोगृहस्थस्य नाधिकार इति । श्रव्य केचित् नित्ये वते उभयपच एव नरमात्रस्थाधिकारः नित्योपवासीति वचने संप्राप्ते हरिवासरे इति सामान्यत एवोक्तेः, इन्दुच्चये इति वचनस्य तत्साहचर्य्यात् काम्यव्रत-परत्वात् काम्यव्रते च क्रणांकादश्यां पुनुवतोगृहस्थस्य नाधिकारः न तु गृहस्थमात्रस्य ग्रहस्थोब्रह्मचारी चेति वचनविरोधात् न कुर्यात् पुनुवान् ग्रहीति वचनेकवाक्यत्वाच श्रयनीवोधनीमध्ये तस्याधिकारः पुनुवांय समार्थयेति वचनं यदीच्छेदिति वचनच्च पचमानवानप्रस्थ-परं। न च वनस्थयतिधम्प्रोऽयं श्रक्ताभव सदा गृहीतिवचने सदापद-श्रवणाद्वित्यव्रत एव निषेध इति वाच्यं तत्र सदापदस्य फलाभिसन्धि-दशायां तदभावदशायाच्च इत्यर्थकत्वादित्याच्चः (५६)।

मतद्वयं दूषियत्वा खमतमाच वस्तुतस्विति स वैण्यव उच्यत इति। भन्नेदमवधेयं ग्रेडीतिविणुमन्त्रत्वेनाधिकारितावोधकं नेदं वचनं किन्तु उभयपचीयैकादशीव्रतस्य वैण्यवव्रतत्वेन सर्व्वेरवतत्कर्त्तव्यमन्यया वैण्यवत्त्वाच्या विण्यामिकारतो देव श्रासुरस्तिद्वपर्यय द्रत्युक्तमचाननर्धः स्यादिति वोधयति, पुत्रवद्ग्रहस्यस्य निषेधत्तु कामनान्तरं व्यावर्त्तयति, वनस्ययत्तीनां निष्कामतया संसारितवर्त्तकविण्युभिक्तिकामतया चासाधारणाधिनारित्वं सूचयति। वनस्ययतिध्मिति। य दच्छेदिष्णुना वासं

नारदः। निखं अित्तसमायुक्तेनीरै विश्वप्रदायगैः। पचे पचे च कर्त व्यमेकादण्यामुपोषणं। यव विश्वप्रदाय-गानां पचे पचे चिति वीप्तया यावत्पचैकादण्यपवासस्य नित्यता प्रतीतः। श्रीपितव्यवहारिनर्णये। शुल्के वा यदि वा कृष्णे विश्वप्र्वनतत्परः। एकादण्यां न भुङ्गीत पचयोक्तसयोरिष, इति वचनात्। नित्यं अित्तसमा-युक्तेरित्यनन्तरं सपुत्त्र्य सभार्थ्यय स्वजनेर्भिक्तसंयुतः। एकादण्यामुपवसेत पचयोक्तसयोरिष। स ब्रह्महा सुरा-पश्च कृतद्दोगुक्तल्यगः। विवचयित योमोहादेकादण्यौ सितेतरे। गृहस्थोब्रह्मचारी च आहिताम्विर्यतिस्तया। एकादण्यां न भुङ्गीत पचयोक्तसयोरिष, द्रत्येतिर्ह्णायु-

प्रवसम्पद्मालन इति वचने यत् पुत्रसम्पदीऽभिधानं तदानुषि क्रिक्षणन्ते विण्युना सहित्युक्तिविण्युसालोक्यं तदिपमुक्त्यन्तरोपलक्षकं, यचे किं उमयोः पचयोः काम्यमिति, तदिप मिक्तिसाधनत्वेनाभिलितिज्ञापकं एयमुक्तरचापि विवेचिमिति। समाला समदर्भी भगवदिधिष्ठानत्वेनिजाचारात्रिजवर्णायमधर्मात् विष्णो समर्पितोऽखिलाचारो येन सः। याचर्यते यत् इतिष्युत्पत्या लौकिकवैदिक्तकर्मः, तदपंणं भगवत्परेणया प्रवर्त्तितीऽहं त्वत्प्रीत्यर्थमेव करोमि नतु खफलार्थमित्यादि निवेदनरूपं क्रतकर्मणः समर्पणन्तु त्वत् प्रेरितेन क्रतमिदं
त्वत् प्रोतये भवतु न तु समफलान्तरायेत्यादिज्ञापनरूपं यया स्वामिनि
भत्यो निवेदयित सयदं क्रतमिति, ययैकाद्यो, यवणं कीर्तनं ध्यानं
इरेरद्भुतकर्म्यणः। जन्मकर्मगुणानाञ्च तदर्थोऽखिलचेष्टितं। इष्टं दत्तं
तपो जतं वत्तं यचात्मनः प्रियं। दारान् सुतान् ग्रहान् प्राणान्
यत्परस्मै निवेदनिमिति। दारादेरिष भगवदर्थत्वेन विभावनमेव
समर्पणमिति। प्राणः प्राणमयकोषः क्रियाणिकामान्। दुिन्दिज्ञानमयकोषः ज्ञानणिक्तमान् मनोमयकोषस्याप्युपलच्चणं देहः स्थूल-

धेन तथाव्यवस्थापितत्वात्। वैणावानां तथा व्यवहाराच्च।

मुमुज्ञुत्वेन सुतरामेव तथा, तथाच भविष्ये, श्रुक्ता
गृहस्थैः कर्त्त व्या भोगसन्तानविर्ज्ञिनी। सुमुज्ञुभिस्तथा

कृष्णा तेन तेनोपदर्शिता। वाराहेऽपि, यथा श्रुक्ता
तथा कृष्णा उपोष्या च प्रयक्ततः। श्रुक्ता सुक्तिप्रदा

नित्यं कृष्णा सुक्तिं प्रयच्छिति। दिजन्मनोविश्रेषतोऽपि,
यथा गोविन्दमानसीक्षासक्रत्यमहार्णवयोर्भविष्योत्तरीयं,
उभयोः पचयो राजज्ञेकादस्यां दिजन्मवान्। योभुङ्के
नीम्जः सोऽपि प्रत्य चण्डालतां वजित्। एतद्वनं
भविष्यपुराणीयमिति कृत्यकल्पलता। सोऽपीत्यच्यः
सोऽयेति विश्रेषः। यच कश्चित्। खादित्येऽहिन
संक्रान्त्यामसितैकादशीदिने। व्यतीपाते कृते याद्वे पुन्ती
नोपवसिद्गृही, द्रति ब्रह्मपुराणवचनादेकादस्यां रिववारादावुपवासनिषधमाह। उपवासनिष्ये तु किश्चिइच्चं प्रकल्पयेत्। उपवासाञ्च दृष्येत उपवासफलं

देहः तेषां धर्मः खभावः अधिकारोनित्यनैमित्तिकार्मज्ञानणास्त्र प्राप्ता-धिकारः तस्मादित्यर्थः एतेन लौकिकवैदिकयोः संग्रहः। सुष्ठिदणा-यामपि प्राणसञ्चारोऽस्ति तत्य खासप्रखासाभ्यां मिक्कादेक्दरप्रवेशम-रणादिना पापमृत्पयते गङ्गाजलसंयुक्तवायुप्रवेशादिना पुण्यमप्युक्तं वाचा वागिन्द्रियेण ब्रह्मार्पणं ब्रह्मार्पितं ब्रह्माण निवेदितमितियावत्। खमात्मानं जुहोसि त्विय गमयामीति स्वाहापदार्थः भगवत्याविष्टोभ-वामीति पर्य्यवितिरोऽर्थः। पौराणिकस्त्वित समर्पणमन्त्वइतिशेषः। विश्वपरायणेः सिद्धरित्यर्थः। विवेचयतीतिपृत्तवतोग्यहस्थस्य मम कृष्णेकादशीवतिऽधिकारोनास्ति किन्तु गुक्कैकादशीवते दत्यादिकं यो विवेचयति सब्रह्महादितुल्यो भवतीत्यर्थः सर्व्यत्र पञ्चस्यन्तः वैश्ववपृत्तवद् लभेदिति वराइपुराणादनोदनादिकमप्याइ। तन्न।
विष्णु, धर्म्मोत्तरे। एकाद्य्यां यदा राम ग्रादित्यस्य
दिनं भवेत्। उपोष्या सा महापुण्या पुत्रयौत्तुप्रविद्यि।
स्गुभानुदिनोपिता सूर्य्यसंक्रान्तिसंयुता। एकादणी
सदोपोष्या सर्व्यसम्पत्करी तिथिरित्यादिवचनेषु एकाद्य्यां रिववारादी प्रत्युतानुषिक्षक्रफलश्रुतेः। न च
नित्ये निषेधः काम्ये फलमिति जीमृतवाहनोत्तं युक्तमिति
वाच्यं सदापदश्रुतेः कामित्वाकामित्वक्रपविश्रेषाभावात् (५०)।

किन्तु संक्रान्त्यादिषु उपवासनिषेधस्तु तिव्विभिन्तो-पवासपरः। तिव्विभिन्तोपवासस्य निषेधोऽयमुदाहृतः।

ग्रहस्थानां क्रण्वैकादग्रामिधकारे हेतु वीध्यः मुमुक्तवे सर्वेषा-मेव क्रण्वैकादग्रामुण्यासाधिकार दत्यिभग्रियणाह सुमुक्तवेनिति ग्रज्ञायां भोगमन्तानफलकात्वात्त्र्या क्रण्णायां तत्फलकामनिषेध ग्राया-तीति, सुमुक्तिभिरिति कर्त्त्रव्येत्वनेनान्वयः। तथा मुिक्तफिलका क्रण्णा क्रण्णाणि तेन तेन वेदव्यासादिमुनिना। भुक्तौत्युपलक्षणं तेन मुिक्त-प्रदापीत्वर्थः। दिजन्मनोऽणि दिजमात्रस्थाणि। किश्वदिति ग्राहितिपद-द्वितास्थान्वयः। व्यतीयातमाह इहन्मनुः। श्रवणाध्विधनिष्ठाद्रा नाग-देवतमस्ति । यद्यमारिववारेण व्यतीपातः स उच्यते द्वित। उप-वासादित्यस्य नञ्चेऽन्वयः तथाच उपवासहेतुको यो दोषाभावस्तदानि-त्यर्थः। यदा उपवासादिति रिववाराद्युपवासहेतुको यो दोषस्तदभाववान् पञ्चस्यर्थस्य दुषधात्वर्थेऽन्वयादित्वर्थः (५७)।

तिन्निमित्तकोपवासपर इति, रिववारिनिमित्तकोऽमावस्यादी श्रंमा-वस्यादिनिमित्तको रिववारादीययासभवस्त्राज्यः एकादशीनिमित्तकस्य नित्यतया न कुत्रापि त्याज्यता व्यतीपातिनिमित्तस्तु श्रादिने संक्रान्ती च निषिदः इत्येवं विवेशं वस्तुतस्तु तत्तिनिमित्तकोपवासपर इति, संक्रान्ति नानुषङ्गतियाद्योयतोनित्यम् वोषणसिति जैसिनिस्पृतेः।
संज्ञान्त्रादिनिसिन्तकोपवासः सम्बर्तेनोत्तः। स्रमावस्या द्वादणी च संज्ञान्तिस्य विशेषतः। एताः
प्रमस्तास्तिययोभानुवारस्तयेव च। स्रम स्नानं ज्ञेषेद्वामोदेवतानाञ्च पृजनं। उपवासस्तया दानमेनेवं
पावनं स्पृतं। तथा। उपवासञ्च ये कुळ्रेरादित्यस्य
दिने तथा। जपन्ति च सहाख्वेतां ते लभन्ते यथिप्यतं।

निमित्तक-रविवार-निमित्तक-व्यतीपातनिमित्तकोपवासाः पुत्तवता ग्रह-स्थेन न कार्या इत्यर्थ:। कास्ये रविवारादिनिधित्त ककास्योप-वासेनिषेवकमितिशेव:। नित्ये तु नित्योपवासे तु याद्यसामानाधिकरण्य-प्रदर्गनेन तद्वाधकालाभाववोधकाद्दित प्रशीयं कात्यायनान्तपदार्थेना-ऽस्यान्वयः। सप्टमुतां स्कान्दे। यिसान्दिने पितुः यादं सातुयापि भवेद-गुइ। तिसानेव दिने तात भवेदेकादगी वर्ता। तदाल्ला तु वै याडं भुताशेषन्तु यद्भवेत्। तत् सर्वं दिल्णे पाणी गरहीलावं शिखिष्वज। अवजिघेदनेनैव तेन यादं ग्रिखिध्वज । पितृणां तृतिदं जातं व्रतभङ्गो न विद्यते इति। प्रागुक्तेति, सत्तवारानुपोष्येतिवचनीक्रेत्वर्थः। एतत्-पारणस्येव संक्रान्त्यां निषेव:, संक्रान्त्यां प्राप्तमितीति, अस्यैव च रविवारे निषेध: नतु एकादग्रापवासवारणस्य रविवारे रविसंक्षान्ती च निषेध इति भावः। वस्ततस्तु प्रागुक्तेति, तथाच श्रनिवारनिभित्तकोपवासपारणं रविवारे पुत्तवतोग्रहस्यस्य निधिहसित्वर्थः सं-क्रान्यां प्राप्तसितीति एतत् संक्रान्यां पारणं पुनुवतोग्टइस्थस्य निविद्यिसत्यर्थः। शनिवारे संक्रान्तिपूर्व्वदिने च ग्टह्स्यपुत्तुवतोनोपवासः परदिनेपारण-स्योत्सर्गिकस्यनिषेवादिति। यय सम्वर्त्वचने अम्रावस्यादादशीचेत्य-नेन दादग्रापवासउत्तः सोऽिवनित्यः यथा हरिसित्तिविलासे। यथा चैकादशी राजन् दादशी च तथा नृणां। समाना तत्फलाप्रीका व्रतेऽस्मिन् चक्रपाणिनः। परन्तु कचिदेकादग्रापवासेन हादग्रापवास-सिब्धिः कचिच दादग्रापवासेन एकादग्रापवासिसिंदः कचिचे। भययो- महाखेतामकास्वागमे। हामिल् क्षा ततो ही त सकार स्व विसर्गवान्। सहाखेतास्त्रमकोऽयं भानोस्त्राचर देशितः। संवत्सरप्रदीपे। सप्त वण्रालुपोस्त्रैव सप्तधा संवतिन्द्रयः। सप्तजन्मकृतं पापं तत्चणादेव नप्र्यति। कृते श्राह द्रति कास्ये, निल्धे तु वराहपुराणविष्णुधक्षीत्तरकात्या-यनाः। जपवासो यदा निल्धः श्राहं नेमित्तिकं भवेत्। जपवासं तदा कुट्यादा प्राष्ट्रसिवतं। यत्तु।

गैन तन्त्रेणोभयसि दि:। एका दशी सुपवसे द्वादशी सथवा पुन:। विसिद्यां-वापिकुर्वीत न दश्यायुतां कचित् इतिवचनात्। तथा पाद्ये। एकादगी दादगी च तत्र सिन्दितीहरि:। उपोच्च रजनीमेकां ब्रह्म-हत्यां व्यपोहति। रालाविप दादशीयोग एव दादश्यपवाससिंदिर्यया व्रह्मवैवर्तः। ये कारयन्ति कुर्वन्ति हादशीं दश्भीयतां। ग्रह्मये तन्युखं वीत्यसूर्यदर्भनमाचरेत्। नमो नारायणायिति जपेदा दादशाचरमिति अत वेधरहितत्वे कर्त्रव्यतासूचनं। द्वादश्रामुपवासभेदमाह हरि-भिक्तिविलासे पद्मपुराणं। उद्भीलनी वञ्जली च त्रिस्प्रणा पचवर्डिनी जया च विजया चेव जयन्ती पापनाशिजी। न वारिष्यन्ति ये सीका द्वादशाष्ट्री ससाज्ञ्या। तेवां यसपुरे वासीयावदाचूतसंप्नवं। ब्रह्म-वैवर्तः। हादस्थोऽष्टी समास्याता या पुरागै विचचगैः। तासाम-कापि च इता इतं पुर्खं पुराक्षतं। तथा तवैव। एकादशीतु संपूर्णा वर्दते पुनरेव सा। द्वादशी न च वर्देत कथितोस्त्रीलनीतु सा। वर्दते पादिनगा सा एकादगी, बादगी अहोराजव्यापिनी सती नच वर्डेत न परिदिनगा तदा सा दादशी उत्सिलभी दादश्या अहोराव्यापिताभावे विस्पृशालेन नोकीलनीति वोध्यं। संपूर्णा-लच्णमनुपदं वक्तव्यं तथाच तर्वव। हादश्यव विवर्हत नचैदैकादशी यदा। वज्जलीति अगुयेष्ठ कथिता पापनागिनी। पाझे च संपूर्णिका-दगी यत हादगी च यदा भवत्। त्रवोदग्रां मुहूर्तार्हं वज्जुली सा हरे: प्रिया। अब संपूर्णकादशी न परदिन्या तथाविधदादशी

रिववारेऽर्कसंक्रान्त्रामेकाद्यां सितेतरे। पारणञ्चीप-वासञ्च न कुर्धात् पुच्चान् गृहीति पारणनिष्धी-रिववारसंक्रान्तिप्राप्तीयवासनिष्धवत् रिववारसंक्रान्ति-सावप्राप्तपारणपरः। तयोरेव पारणन्तु प्रागुक्तशनि-वारोपवासानन्तरं रिववारे। निष्यं हयोरयनयोर्निष्यं विषुवतोर्हयोः। चन्द्रार्कयोर्यहणयोर्द्यतीपातेषु पर्व्वसु। श्रहोराचोषितः स्नानं श्राह्मं दानं तथा जपं। यः करोति

च परिदनगा तदा वञ्जलीत्यर्थः। ग्रक्लपचे तया क्षणो यदा भवति एकादशीदिने भुक्का दादश्यां कारयेदृतसित। यदि द्वादखिप न वर्दते तदा ग्रद्येकादग्रामुपवासः एकादशीमुप-वमेदित्युतोः पारणञ्च द्वादग्रा श्राद्यपादमुत्तीर्व्यति। त्रिस्प्रशा प्रसिद्धा। ब्रह्मबैवर्ते। कुह्राके यदा वृद्धिं प्रयाते पचवर्षिनी। विहायैकादशीं तव दादशीं समुपोषयत्। पाद्मे। अमा वा यदि संपूर्णा सम्पूर्णा जायते यदा। भूत्वा च षष्टिषटिका दृश्यते प्रतिपिह्ने। अश्वमिधा-युतैस्तुत्या सा भवेत् पचवर्षिनी इयमप्येकादण्याः संपूर्णत्वे चया तदसम्पूर्णले एकादगीहादग्योभियतया तबैव व्रतमिति वोध्यं। यन्ये तु एकादगोद्दारखोद्देयोर्व्ही पच्चविंनी भवति पच्चपदस्य एकादशीद्दादश्य-भयपरत्वात् दितयं वर्दते यदौत्येकवाकात्वाच कुहूराके इत्यादिकवचनं मतान्तरिमितिप्राष्टुः । ब्रह्मवैवर्ते । पुष्य-श्रवण-पुष्याद्य-रोहिणीसंयुतास्तु ताः । उपोविताः समफला हादम्योऽष्टी पृथक् पृथक् । तत्र पृष्ययुता पाप-नाशिनो गोविन्दहादशीति विख्याता अवणयुता विजया वामनहादशी। पुष्यादाः पुनर्वसुस्तद्युता जया-रोहि गौगुता जरम्ती। तथाच ब्रह्मपुराणे विशिष्ठमंवादे। यदा तु ग्रुक्तहादः यां पुष्यं भवति कि चित्। तदा सा तु महापुखा कथिता पापनाशिनी। यदा तु शुक्क द्वादश्यां नच्चं व्यवणस्थवत्। विजया सा तिथि: प्रोक्ता तिथीनामुत्तमा तिथि:। द्वादश्यान्तु सिते पत्ते ऋचं यदि पुनर्वसु:। नामा सा तु जया ख्याता तिथी नामुत्तमा तिथि:। यदा त गुलद्वादग्रां प्राजापत्यं प्रजायते।

प्रसन्नातमा तस्य स्थादचयन्तु तदिति ब्रह्मपुराणीक्तसंक्रान्ति-पूर्व्वदिनोपवासविधानेन संक्रान्यां प्राप्तमिति (५८)।

श्रय पूर्णितियिलच्यां। स्कन्दपुराये। प्रतिपत्-प्रस्तयः सर्व्वा उदयादोदयाद्वेः। संपूर्णा द्वित विख्याता हरिवासरवर्ज्जिताः। हरिवासरएकादशी। अतएव सीरधर्क्षे, श्रादित्योदयवेलायाः प्राङ्महर्त्तेद्वयान्विता। सैकादशीति संपूर्णा विद्वान्या परिकीर्त्तिता। श्रव च

जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्व्वपापहरा तिथिरिति। तत्र व्यवस्था स्कान्दे। द्वादमी च प्रकर्त्तव्या एकादश्यायुता विभो। सदा कार्या च विद्वद्वि विश्युभक्तैय मानवैरिति (५८)।

उदयात् सूर्योदयचणमारभ्य उदयात् अपरसूर्योदयपर्यन्तं वरे-रित्यस्य उभयतान्वयात्। सीमार्थे ग्राङ्गव्दस्तेन पूर्वसूर्योदय-सारभ्यापरसूर्व्योदयाव्यवहितप्राक्त्वणस्थायिनीत्वर्वः । तेन परदिनसूर्व्यां-द्यस्पर्गे तदस्पर्गे च सम्पूर्णाभवतीति तात्पर्थ्यार्थः। इरिवासर-वर्ज्जिताः हरिवासर्भिना हरिवासर्ग्रव्स्य कचिहादग्रामपि प्रवृत्तेराह हरिवासर एकादगीति। अतएव हरिवासरवर्जनादेव। अत च प्रति-पत्प्रभृतयद्तिवचने च। तत्तिथेरेकोदयमारभ्यापरोदयपर्थन्तस्थायिहरि-वासरभिन्नतिथे:। उदयानन्तरावस्थिताविप परिदनगतलेऽपि। उदयात् पाक् परदिवसीयोदयात् पाक् इदं तूदयादित्यस्य विवरणं। सम्पूर्णत्व-कीर्तनं समाप्तत्वकीर्तनं। सन्तिऽपीति, तत्तत्तियिखण्डस्थेतिशेषः। श्रग्रद-वेन तत्तत्तियमलक्षवेन। असत्तव्यापनाय असत्त्यताव्यापनाय-की र्तनसित्यनेनास्यान्वयः, तथाचेति परदिवसीयतिथिखण्डस्याग्रद्धत-ज्ञापञ्चेत्यर्थः। तिथिस्बिति तुरवधारणे सेतरनेनास्य सम्बन्धः। तथाच याएवभातातिथः सैव हि निश्चितगुडा न परदिनसम्बन्धिनी तिथिमल-रूपाऽग्र देत्वर्थः । सार्वतिष्य इति, एकादगौज्यतिरिक्तसर्व्वतिधिविषयक द्रत्यर्थ:। षष्टिनाडोहीति, हि यतस्तिथः षष्टिनाडात्मकः तद्धिकस्य परदिनगतसा न तिथिलं किन्तु तिथिमललमितिभावः। परे परदिने

तित्रिथेत्रदयानन्तराविद्याताविष यदुदयात् प्राक् संपूर्णतकीर्त्तनं तदुदयानन्तरं तित्रिथेः सन्तेऽिष अगुडत्वेन कार्यानर्हत्वादसन्त्रस्यापनाय, तथाच कालमाधवीये नारदीयं,
आदित्योदयवेलाया आरभ्य षष्टिनाङ्का। तिथिस्तु सा
हि गुडा स्थात् सार्व्यतिथ्योद्ययं विधिः। सूर्व्यसिडानोऽिष, सर्व्वाद्येतस्य तिथय उदयादोदयस्थिताः।
गुडाद्रति विनिश्चेयाः षष्टिनाङ्गोहि वै तिथिः। एतस्य
रवेः। कालविवेके, षष्टिदण्डात्मिकायास्य तिथिनिष्कृमणे परे। अकस्थायं तिथिमणं विद्यादेकादभीं
विना। अथ पूर्णेकादश्य पवासः। प्रचेताः, पूर्णाऽ-

तिविमलमिति, तत् निष्कमितिविखखण्डमित्यर्थः। एकादशीं विनेति, निष्कुभितैकादगीतिथिखण्डं विनेत्यर्थः, एवच सूर्योदयमारभ्य षष्टि-दण्डात्मिकायाः प्रतिपदादितियेस्तु पूर्णत्वकयनात् सौरधर्मावचने सैका-दशीतिवचने तत्पदेन स्योदियमारभ्य षष्टिदण्डात्मिकेत्यर्थीवुध्यते तत्-फलन्तु पूर्णाप्येकादमी त्याच्या दितयं वर्षते यदि। द्वादस्यां पारणा-लाभे पूर्णेव परिग्रह्मते। इत्यादी पूर्णापदेन पूर्वदिनसम्बन्धितिष ग्रहण' श्रन्थया दिनद्वय एव सूर्योदय-प्राङ्मुहूर्तद्वयान्विततया तदन-ध्यवसायः स्यात् ,प्राङ्मुहूर्तदयान्वितत्वविशेषणपत्वचारणोदये दशमी-योगे विदात्वेन तद्यावर्त्तनं । तथाक्तं विदान्या परिकीर्त्तिति अन्या-प्राङमुहूर्त्रद्वयान्वितान्या विदा दशभीविदालेन त्याजग्राद्दित यावत्। यतएव हरिभिति विलासे ब्रह्मवैवर्त्तवचनं। यरुणोदयवेलायां यास्तो-कापि तिथिभवत्। पूर्णा सेत्यवगन्तव्या प्रभूता नीदयं विना। अव हरिभिताविलासीयटीका तिथिरेकादगी अरुणोदयञ्च विना प्रभूता सम्पूर्ण एकसर्णाद्यमारभ्यापरार्णाद्यं यावदमापिन्येव सती संपूर्णा समादितमर्थइति। तथा गाँकड़े। आदित्योदयदेनाया-मारभ्य षष्टिनाडिका। संपूर्णैकादशीनाम त्याज्या धर्माफलेपुभिः। शिव-

प्येकादशी त्याच्या वर्डते दितयं यदि। दादश्यां पारणालाभे पूर्णेव परिगृद्धते। दितयमेकादशीद्दादश्यी।
भगुः, संपूर्णेकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा। तत्रीपोष्या दितीया तु परतोद्दादशी यदि। विष्णुधर्मातिरे
वहद्दशिष्ठसंहितायाञ्च। संपूर्णेकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा। लुप्यते दादशी तिस्मिझ्पवासः कयं भवेत्।
हपोष्ये दे तिथी तत्र विष्णुप्रीणनतत्परेः। एवमेव
गारुङ्, किन्तु मध्यार्डमेवं, च्योदशी उषःकाले
हपोष्या तत्र का भवेदिति। चत्र देतिनर्णयः। एकादशीद्दादश्योरुभयत्र सर्व्या षामुपवासविधानं तत्सङ्गुक-

रहसाञ्च। उदयात् प्राग्यदा विप्र सुहूर्तदयंसंयुता। संपूर्णेकादशी-नाम तत्रैवोपवसेद्गृहीति। अब तबोत्तरां यतिः कुर्यात् पूर्वामुप-वसेद् गृहीतिवचनस्वरसात् परदिवसीयतिथिखण्डव्यावर्त्तनाय पूर्व्वदिव-सीयाहीरात्रव्यापितिये: पूर्णत्वमाख्यातिमतिवोध्यं। एवच्च वच्चुत्यादि-लच्ण यदेकादश्याः पूर्णत्वमृत्तं तदर्णोदयमारभ्यापरार्णोदयपर्यन्त-स्थायित्वं वोघ्यं। केचित्त् अरुणोदयकालसा तियामां रजनीमितिवच-नेन परद्विसीयत्वकथनात् तदारभ्य षष्टिदण्डात्मिकैकादशी संपूर्णत्याहुः। दादश्यां पारणालाभे खण्डापरदिने पारणयोग्यदादश्यलाभे। अत केचिदिइमपि द्वाद्या अहोरावचापित एव, अन्यवा राविशेषे वयो-दशीलाभेन त्रिस्प्रात्वेन सर्वैं: खखेापोष्येति ध्रियमित्राहु:। हरि-भिक्तिविलासे भविष्यपुराणं। एकलिप्ता समायुक्ता यदि इंडा परा तिथि:। अथवैकादशी नास्ति दशस्या वाघ संयुता। दादशी तु कला काष्ठा यदि सप्रादपरेऽहिनं। हादश हादशीईन्ति त्रयोदश्यान्त पारणमितिकाष्ठया अन्युनले वोधयति, काष्ठा अष्टादशनिमेषाः, अष्टादश निमेवास्तु काष्ठास्तिंगत्तुताः कलाइत्यमरात् । पूर्णेव परिगृच्चत इतिग्टिचपरं त्रवैवोपवसेद्गृहीति वचनात् पूर्वामुपवसेद् गृहीतिवचनाच । दादशी-

यदधानाजङ्जनविषयं एकेनैवोपवासेन फलसिडावपर-वैयर्ध्यादिति। तद्व। एकेनैवोपवासेनिखादिखोक्तहेतोरे-केकपुरुषख उभयचाकाङ्गाविरहाद्युक्तोविकल्पः (५९)।

तथाच अविष्ये। स्मृतिशास्त्रे विकल्प स्तु आकाङ्गा-पूर्णे सति। एतेन साकाङ्गएव स्मृतीनां परस्परान्वयः

सियितायाद्या सर्व्यवेकादशीतियः। द्वादशी च त्रयोदश्यां विद्यते यदि वा न विति वचनं गृहिभिन्नपरं, लुप्यते नग्यति तिस्मिन् दिने प्रभाते द्रयमुक्षीलनी। उषः काले रात्रिशेषे द्रयंत्रसृशा। सङ्ग्यकोऽस्थिरः सन्देहयुतद्दतियावत् सन्देहहतुश्चीभयदिने दश्मी-वेधरहितैकादशीलं। दे तिथी तिथिखण्डे एकादशीयुक्तद्वादशी दिनद्वय दति यावत्। दत्रवयर्थादिति, एकविधिप्राप्तस्थासकदनु-ष्ठानानुपपत्तेरित्यर्थः तयाचेच्छाविकल्पप्येति दैतनिर्णयतात्पर्थः सत्तिसं दूषयति तन्नेति विकल्प दत्यतं दैतनिर्णयसतानुवादः। श्राकाङ्वाविरहात् एकादश्यासुपवासेनैव विहितपालनसिद्धेरन्यत्राकाङ्वा-विरहात् उपवासविधी एकादश्यास्तिथिरन्वयेनैव कालविशेषाकाङ्वा-विरहात् उपवासविधी एकादश्यास्तिथिरन्वयेनैव कालविशेषाकाङ्वा-विरहात् उपवासविधी एकादश्यास्तिथिरन्वयेनैव कालविशेषाकाङ्वा-विरहत्तेस्तिथ्यन्तरान्वयानुपपत्तेरिति वा (५८)।

द्याकाङ्गापूरणे उभयोरकतरणाकाङ्गानिवृत्ती। परस्परान्योवाकादयेकवाक्यतया युगपत् पर्थ्यायेण वोभयोः कर्त्तव्यतापरता। तत्नेत्यादिस्त्रभतं तद्र विकल्पमध्ये। प्रमाणत्वेति, प्रमाणत्वाप्रमाणत्वयोः
परित्यागप्रकल्पनित्यर्थः तद्र प्रमाणत्वस्य परित्यागः त्रप्रमाणत्वस्य
प्रकल्पनिति क्रमान्वयः तददिति समुचयार्थकं तदुज्जीवनहानाभ्यामिति
वा पाठः। तत्न तयोः प्रमाणत्वाप्रमाणत्वयोरुज्जीवनहाने ताभ्यामित्यर्थः।
प्रत्येकं प्रतियोगं तथाच प्रत्येकप्रयोगे दोषचतुष्टयात् उभयत्राष्ट्रदोषवत्त्वं त्रत्न वीहिभिर्यजेतित्यनेन प्रक्षतयागसाधनीभृतपुरोडाणसम्पादकद्रव्याकाङ्गानिवृत्ती यवैर्यजेतित श्रुतिरेवं यवैरितिश्रत्यानाकाङ्किता व्रीहिभिरिति श्रुतिरिति परस्परानपेक्त्वात् विकल्पाश्रयणं, नच मिलितयोत्रीहियवयोर्थागाङ्गतालाभायोभयोपादानमितिवाच्यं तथात्वं व्रीहियवाभ्यामित्यस्य वक्तव्यतापातात् भित्नभित्रवाक्योपस्थापितानां मिलि-

सृचितः, अत नेच्छाविकाल्पोऽष्टदोषग्रासात् तथाच, प्रमाणत्वाप्रमाणत्वपरित्यागप्रकाल्पनात्। तदुक्जीवनहाना-स्थामित्येवसष्टदोषता। तथाहि ब्रीहिभिर्यजेत यवै-र्यजेत, इति शूयते। तच ब्रीहिप्रयोगे प्रतीतयवप्रामाण्य-

तोपकारकत्वाभावात् अन्यया विष्णुं यजीत रुद्रं यजीतीत वाक्याभ्यां विश्य रुद्रयोर्भि लितदेवतात्वं स्यादितिवोध्यं, प्रक्षतयागविध्यन्तर्गततया यवैर्यजेतिति शुत्या प्रक्ततयागसासान्ये यवकरणकत्वस्य प्रामाणिकत्वरूपं प्रामाख्यमापाततः स्त्रीक्षतं, तच त्रीहिकरणकप्रक्षतयागे यवकरण-कत्वानन्वयेन परित्यक्तं तथाचं वेदस्थले श्रीत्सर्गिकस्यैकपदार्थसामान्ये-उपरपदार्थानुयवोधस्य परित्यागः ननु यागसामान्ये यवकरणकत्वस्या-ननुयेन यवस्य नियतानुष्ठानं न स्यात् किन्तु कदाचित् ब्रीहियागेऽपि यवसम्बन्धोऽस्वित्यत ग्राह ग्रप्रमाणलेति, न प्रमाणलं यतद्रतित्युत्-पत्था अप्रमाण्त्वपदेन स्वार्थस्याभावी वोध्यते तथाच यथा-श्रुत-भ्रव्दे-नाप्रतीतस्य यवकरणकलाभावस्य त्रीहियागे कल्पनादिलार्थः तथाच वीहिभिर्यजेतित्यत यजिधातुना यवकरणकत्वाभावविशिष्टयागवीधस्य लच्णया स्त्रीकारादिति गौरविमिति, एवं यवैर्यजेतद्रत्यस्य सार्थकत्वाय यवैरित्यस्य कुत्रचिद्यागिऽन्येन प्रामाख्यवस्थापनं तदेवाहउज्जीवनेति, प्रामाख्यस्योज्जीवनमित्यर्थः। तथाच वाक्यभेदस्वीकारस्यावश्यकतेति भावः। निनुदं वाधितं यागसामान्य एव यवकरणकत्वाभाववोधनात् तत्र च ताद्दशार्थतात्पर्ध्यग्राहकं यवैर्यजेतिति श्रुतिवाक्यसित्यत श्राह हानिति हानं त्यागः अप्रमाणत्वस्य त्यागद्रत्यर्थः तथाच यागविशेषएव यवकरणकत्वाभावानुयेन यागविशेषे यवकरणकत्वस्य न वाधः परन्व-भावानुयेऽपि श्रीत्सर्गिकस्य सामान्येऽनुयवीधस्य त्यागः इति दोषचतुष्टयं तथा यवप्रयोगे ब्रीहिभिरिति शुत्या यवकरणकयागे ब्रीहिकरणकत्वान-नृयेन जीत्सर्गिकस्य सामान्धेऽनुयवीधस्य त्यागद्येवं प्रामाखत्यागः यजिधातीवीहिकरण्कलविरहविशिष्टपरताकल्पनरूपम-प्रमाणत्वज्ञत्यनं तयाच यागविशेषे बीह्निरणकत्वानुयस्वीकारस्तया यागसामान्ये ब्रीहिकरणकलाभावस्थाननुयद्गति दोषचतुष्टयं मिलित्वाऽष्टी

परियागः अप्रतीतयवाप्रामाण्यकल्पनं दूदल् पूर्वस्मात् पृथक् अन्यया समुचयेऽपि यागसिडिः स्थात्। अतएव विकल्पे नोभयः शास्त्रार्थद्रत्युक्तं। तथा प्रयोगान्तरे यवे उपादीयमाने परित्यक्तयवप्रामाण्योक्जीवनं स्वीक्षतयवा-प्रामाण्यक्ति चित्रार्थे दोषाद्रक्ताविकल्पे। तथाचीकं। चलार द्राय्टी दोषाद्रक्ताविकल्पे। तथाचीकं।

दोषाइतिभाव:। अत्र च यवकरणकालाभावविशिष्टत्री हिकरणक्याग-लेनैकं स्ट्यफ्लं प्रति जनकल-मपरच वीहिकरणकलाभावविशिष्ट यवकरणकयागत्वेनिति परस्परव्यभिचारवारणाय फलवैजात्यद्वयं कार्य-ताव च्छे दकं क च्यनीयसिति न सिलितयारी फलसिडिरितिवीध्यं। ब्रीहिप्रयोगे ब्रीहिकर्णक्यागे। इदिन्वित अप्रामाण्यकल्पनित्वत्यर्थः पूर्वसात्प्रामाखारितागात् पृथगिति, अप्रमाणलपदस्य प्रमाणलाभाव-परत्वे पूर्वसादभेदः प्रमाणत्वपरित्यागस्यापि प्रमाणत्वाभावकत्पनरूपत्वा-दिति अप्रमाण्लपदं स्वार्थयवकरणकलाचभावपरिमति पूर्वसादिन-प्रित्यर्थः। नन्वे तत्कल्पनंव्यर्धसित्यत याह यन्ययिति यप्रमाणत्वकल्पना-भावद्रत्यर्थः, विकल्पेन परस्पराभावसहकारेण गास्त्रार्थः ग्रास्त्रवोधित-फलजनकः। अष्टदीषद्रतिविकल्पविशेषणं। केचितु यवपचे स्वार्थस्य वौहेस्ताागः अन्वार्थस्य वीद्यभावस्य कल्पनं वीद्यिभिरिति ततीयार्थ-साधनत्वस्य प्रक्रत्यर्थे बीहावननृयः बीह्यभावेऽनृय दितचत्वारः, एवं ब्रीहिपचेऽपि चलारदलाष्टी दोषाः, तथाच भद्दपादाः। स्वार्धत्यागी-उन्यार्थिक्तिः प्रक्तत्यर्थेत्वननुयः। अनुयसाप्रक्तत्यर्थे दयोरित्यष्टदोषतित। अव ब्रीहिभिर्यजेतित्य नुधे यवपदं लचणया यवाभावपरं यवैर्यजेतित्यनुये ब्रीहिपदं ब्रीह्मभावपरं, एवं द्रीहिपदं यवपद्च तत्तहाक्यार्थानुये स्वार्थ-परमपि। ननु वीहियागे यवाभावस्य यवयागे वीह्यभावस्य कयं करणतितिचेत्र त्रीहियागजन्यकार्योऽपूर्वे स्वकरणकयागसम्बन्धेन यवस्य प्रतिवस्वकतया तदभावस्य हेतुलादेवच यवाभावकरणकलस्य व्रीहि-यागकार्यें उन्वयः एवं यवयागकार्ये ब्रीहेः स्वकरणक्यागसम्बन्धेन प्रति-

एव-मेवाष्टरोषोऽ । यहुी हि-यववाक्ययोः । विकल्प याश्रितस्त्र गतिरन्या न विद्यतद्गति । ननु यदि पुरो-डाणाय ब्रीहियवी विहितो तर्द्याग्ने यादिवत् समुद्ययह्या गतिरिस्त्विति चेच्च । प्रकृतक्रतुसाधनीभूतपुरोडाणद्रव्य-प्रकृतितया हि परस्परानपेची ब्रीहियवी विहिती एक्षात्रव्यो प्रतेडाणं सम्पाद्यित् । तत्र यदि मित्राभ्यां पुरोडाणः सम्पद्येत तदा परस्परानपेचे ब्रीहि-यवविधाहणी उभेग्रिय शास्त्रे वाध्येतामिति (६०)।

वस्यकतया तदभावस्य कर्णत्विमिति सामञ्जस्यादित्याष्ट्रः श्राग्नेया-दिवदिति आग्नेयादी दिधपयसी: समुचयवदित्यर्थ: प्रक्षतितयिति, पुरी-डामात्मकद्रव्य स प्रकृतितयेत्यर्थस्तत्पक्षतित्वच तदारभकावयवार्यते-सति तज्जनकना ग्रप्रतियोगित्वं यवादिपदानां यवाद्यवयवे लाच्या कत्वे प्रकातित्वसत्रोपादानकार्ण्तं वोध्यं। पुरोडाश्रमिति, यज्ञाङ्गतयेत्वर्थः परस्परानपेचे सति लौकिक प्रमाणेन प्ररोडाशसम्पादकलमोषधिमातस्य प्राप्यतद्ति। ब्रीहेर्पि पच्तः प्राप्तं। तत्र च विशेषाकाङ्घायां ब्रीहि-भियंजितित्युतिर्नियमार्था नियमः पाचिके सतीत्युक्तेः तत्र च ब्री हिपदं ब्रीह्न-प्रकृतिकपुरौडाग्रपरं नियमय इतरनिरपेचलं ब्रीहीतराकरणक-बीह्विरणक्यागवीधकत्वं नचेतरनिरपेचत्वं न नियमफलं अपदार्थत्वात् किन्तु परिसंख्याफलं नियमस्त नियतप्रवित्तिविषयत्वं सच वीहे: करणत वोधेनैव सन्भवति तथाहि ब्रोहे: कारणत्वे लब्धे कारणं विना कथं यागसिद्धि:स्यादिति विवेकेन बीहिनियतानुष्ठानं यवसम्बलितत्वे कयं तद्वाधः स्यादितिवाच्यं तयापि मुद्रादिसम्वलितवीह्निसाधितपुरीडाशे-नावि क्रापुः स्यादिति, श्रुतेः प्रमाणान्तरनिरपेचतया ब्रीहीतराकरणकत्व वोधे तात्पर्याकल्पनात्तेन यादच्छिकग्रहण्यावृत्तिः। वरच यदि बीह्यवसम्बलितादपि पुरोडाग्रसिद्धिः स्यात्तदाकथितपरस्परनिराकाङ्ग-अल्योर्विरोधः सप्रादित्यगत्या विकल्पंकल्पनं यत्र च अल्योः साकाङ्कता तत्रैकवाक्यतया समुचयपरतितिभावः। शास्त्रेशतिवाक्ये (६०)।

परियागः अप्रतीतयवाप्रामाण्यकल्पनं द्रदन्तु पूर्वस्मात् पृथक् अन्यया समुचयेऽपि यागसिडिः स्थात्। अतएव विकत्ये नोभयः शास्त्रार्थद्रस्तुतं। तथा प्रयोगान्तरे यवे उपादीयमाने परित्यत्तयवप्रामाण्योज्जीवनं स्वीक्षतयवा-प्रामाण्यक्ति चित्रारेषाः। एवं ब्रीक्षाविष् चत्वारे द्राषाद्रक्ताविकल्पे। तथाचीतं।

दोषाइतिभावः। अत्र च यवकरणकालाभावविभिष्टत्रीहिकरणक्याग-त्वेनैकं स्त्यफ्लं प्रति जनकत्व-मपरच ब्रीहिकरणकत्वाभावविशिष्ट यवकरणकयागलेनेति परस्परव्यभिचारवारणाय फलवैजात्यद्वयं कार्य-ताव च्छेदकं क च्यनीयसिति न सिलितयागे फलसिडिरितिवीध्यं। ब्रीहिप्रयोगे ब्रीहिकर्णक्यागे। इदिन्वित अप्रामाख्यकल्पनित्वत्यर्थः पूर्वसात्प्रामाख्यारित्यागात् पृथगिति, अप्रमाणत्वपदस्य प्रमाणत्वाभाव-परत्वे पूर्वसादभेदः प्रमाणत्वपरित्यागस्यापि प्रमाणताभावकत्पनरूपत्वा-दिति अप्रमाण्लपदं स्वार्थयवकरणकलाचभावपरिमति पूर्वसादिन-प्रित्यर्थः। नन्वे तत्कल्पनंव्यर्थसित्यत याह यन्ययेति यप्रमाणत्वकल्पना-भावदृत्यर्थः, विकल्पेन परस्पराभावसत्त्वारेण गास्त्रार्थः गास्त्रवोधित-फलजनकः। अष्टदीषद्रतिविकल्पविशेषणं। केचित् यवपचे स्वार्थस्य व्रोहेस्ताागः अन्वार्थस्य व्रोह्यभावस्य कल्पनं व्रीहिभिरिति त्रतीयार्थ-साधनत्वस्य प्रकत्यर्थे बीहावनन्यः बीह्यभावेऽन्य इतिचत्वारः, एवं ब्री हिपचेऽपि चलारदत्याष्टी दोषाः, तथाच अद्यादाः। स्वार्धत्यागी-उन्यार्थिक्तिः प्रक्तत्वर्थेत्वनन्यः। अनुयश्वाप्रक्रत्यर्थे दयोरित्यष्टदोषति। श्रव ब्रीहिभिर्यजेतित्यनुषे यवपदं लचणया यवाभावपरं यवैर्यजेतित्यनुये ब्रीहिपदं ब्रीह्यभावपरं, एवं ब्रीहिपदं यवपद्च तत्तहाकार्यानृये स्वार्थ-ननु वीहियागे यवाभावस्य यवयागे द्रीह्यभावस्य कथं करणतितिचेत्र त्रीहियागजन्यकार्योऽपूर्वे स्वकरणक्यागसम्बन्धेन यवस्य प्रतिवन्धकतया तदभावस्य हेतुलादेवञ्च यवाभावकरणकलस्य वीहि-या्गकार्यें उत्वयः एवं यवयागकार्ये ब्रीहेः स्वकरणक्यागसम्बन्धेन प्रति-

एव-मेवाष्टदोषोऽपि यहुगिह-यववाक्ययोः। विकल्प आश्रितस्तव गतिरन्या न विद्यतद्गति। ननु यदि पुरो-हाणाय ब्रीहियवी विहितो तद्यांग्ने यादिवत् समुद्यक्रगा गतिरिस्त्विति चेन्न। प्रक्षतक्रतुसाधनीभूतपुरोडाणद्रव्य-प्रक्षतितया हि परस्परानपेची ब्रीहियवी विहिती एक्षात्रव्ये तो प्रत्येकं पुरोडाणं सम्पाद्यित्। तव यदि मिश्राभ्यां पुरोडाणः सम्पद्येत तदा परस्परानपेचे ब्रीहि-यवविधाहणी उभेचिप शास्त्रे वाध्येतामिति (६०)।

वस्थकतया तदभावस्य करणत्वभिति सामञ्जस्यादित्याष्टुः दिवदिति आग्नेयादी दिधपयसी: समुचयवदित्यर्थ: प्रक्रातितयिति, पुरी-डाशात्मऋद्रव्य स्य प्रकृतितयेत्यर्थस्तत्पक्ततित्वच तदारभाकावयवारस्यते-सति तज्जनकना प्रप्रतियोगित्वं यवादिपदानां यवाद्यवयवे लाच्णिकत्वे प्रकृतित्वसत्रोपादानकार्ण्तं वोध्यं। पुरोडाण्यमिति, यज्ञाङ्गतयेत्वर्थः परस्परानपेचे सति लौकिक प्रमाणेन परोडाशसम्पादकलमोषधिमातस्य प्राप्यतद्ति। ब्रीहेरपि पच्तः प्राप्तं। तत्र च विशेषाकाङ्गायां ब्रीहि-भियंजीतितश्वितिनियमार्था नियमः पाचिके सतीत्युक्तेः तत्र च ब्रीहिपदं ब्रीहि-प्रकृतिकपुरौडाग्रपरं नियमय इतरनिरपेचलं ब्रीहीतराकरणक-बीहिकरणक्यागवीधकत्वं नचेतरनिरपेचत्वं न नियमफलं अपदार्थत्वात् किन्तु परिसंख्याफलं नियमस्त नियतप्रवित्तिविषयत्वं सच व्रीहे: करणत वोधेनैव सम्भवति तथाहि ब्रोहे: कारणत्वे लब्धे कारणं विना कथं यागसिद्धिःस्यादिति विवेकेन बीहेर्नियतानुष्ठानं यवसम्बलितत्वे कयं तहाधः स्यादितिवाच्यं तथापि मुद्रादिसम्बल्तिवी हिसाधितपुरी डाग्रे-नापि क्रतुः स्यादिति, युतेः प्रमाणान्तरनिरपेचतया ब्रीहीतराकरणकत्व वोधे तात्पर्य्वकल्पनात्तेन यादच्छिकग्रहण्यावृत्तिः। वरञ्च यदि वीहियवसम्बलितादपि पुरोडाग्रसिडिः स्यात्तदाकथितपरस्परनिराकाङ्ग-श्रुत्योर्विरोधः सप्रादित्यगत्या विकल्पंकल्पनं यत्र च श्रुत्योः साकाङ्कता तत्रैकवाक्यतया समुचयपरतितिभावः। शास्त्रेणुतिवाक्ये (६०)।

यय मा भृहाक्यहयसामर्थ्यात् समृद्धयः, यङ्गसहित प्रधानानुष्ठानापेचप्रयोगिविधिर्जीहियवी समृद्धेतुमईतीति चित्र। स हि यथाविहितान्यङ्गानि समीद्ध्य प्रवर्त्त-मानोनैतान्यन्यययति सियणे चान्ययात्वं तेषामिति। ननु मा मिय्रेयातां ब्रीहियवी उभयविध्यनुरोधादेकस्मि-व्रेव प्रयोगे ब्रीहिभिरेकवारं यवेरप्यपरवारसिज्यता-सिति चेत्र। यङ्गानुरोधेनायुतप्रधानाभ्यासस्यायुक्तत्वात्। एवञ्च न केवलब्रीहि-यवसमुद्धये प्रमाणाभावः किन्तु

अधिति। अङ्गसहितप्रधानानुष्ठानिऽपेचा यस्य तादृश्साङ्गप्रधानं क्यं कर्तव्यमित्याकाङ्मयेव विध्रात्यानात् प्रयागविधिः समुचेतुमर्हित तथाच ब्रीहियवयोरङ्गलात् उभयाङ्ग्कभव यागं साधियतुमर्हतीति-भावः। स हि प्रयोगविविर्हि यथाविहितानीति, समीच्याङ्गविधितः समीचणानन्तराकाङ्कावलादुष्याय प्रवर्त्तमान इतिकर्त्तव्यतावीधजन-नोत्रुखो न तान्यन्यययति अन्यप्रकारेण ज्ञापयति तथाच ब्रीहियव-योविक त्यतयाभिहितत्वात् विक त्येन ब्रीहिभिर्यवैर्यागं कर्त्त व्यतया विद्धातीति, अत्ययाऽनाकाङ्किताभिधानं स्यादितिभाव: : अङ्गानुरोधेन ब्रीहियवयोर्विधानानुरोधेन प्रधानस्य होमस्याभ्यासः पुनरनुष्ठानं। इस्रच एवं विरोधभीये च प्रमाणाभावः समुचयवीधकचकाराद्र-भावः प्रमाणविरोधः प्रमाणयोः श्रुतिवाक्ययोः परस्परविरोधः । प्रमाण-विरोधमेव दर्भयति तथा हीत्यादिना, पुरोडाश्रविधिनैव पुरोडाश्रेन यजीतेत्यादि-विधिवोधितपुरोडामे पुरोडामपदवाच्यतावोधकप्रमाणेन यिसान् किसां शिदिति यथेच्छिमेकिसानित्यर्थः। पचतदच्छातः निर-पेवेति प्रमाणान्तरनिर्पेचेतितदर्थः। एतेन यवैर्यजेतित्यादि-श्रुतिम-पेचा ब्रीहिभिरविति एवकारेण ब्रीहीतरयवेतरकारंणकत्ववीधकल्पनेन विरोधपरी हारोनिरन्तर:। ब्रीहिभिर्विति ब्रीहीतराकरणकलक्पनियमं गमयेत् साचात् परम्परयावोधयति सिद्धेसत्यारकोनियसायेति न्यायात् है रार्थकवेरे यत्क भीसाधनतया यहुत्रं स्ततं तत्र तहुत्यवाचक-पदस्ये- प्रमाणिवरोधोऽपि तथा हि पुरोडा शविधिनैवी पिछ व्ये यिक्षान् किक्षां खित् प्राप्ते वी ह्योऽपि पचे प्राप्ता क्षाना-प्राप्तां प्राप्त पार्था निर्पेच वी हिश्रु ति वी हि भिरे विति नियमं गमयेत्। एव ख्रु तब यवसमुख्ये निर्पेच वी हि-श्रु तिवाधः स्थात्। एवं यवश्रु तरिपि नियमार्थ त्वाद्रीहि-समुख्ये तद्वाधः स्थादिति। चत्र प्रवीक्तं गतिरन्था न विद्यतद्वति। एकार्थ तथा विविधं क्षण्पतद्वति वि-क्षण्पः (६१)।

तस्मादष्टदोषभिया उपोध्ये हे तियो दूखन नेच्छा-विकल्पः किन्तु व्यवस्थितविकल्पः। चतएव हैतनिर्णये स्कन्दपुराणं। सम्पूर्णेकादभी यन प्रभाते पुनरेव सा।

तरासम्बिलिततद्व्यपरतानियमाच तत्र ब्रोहिकरणकलं कयं साचादितराकरणकलं परम्परया यथा प्राप्तस्य पुनः प्रापणितराकरणकलवोधं विना निर्थकसित्यनुपपच्या तद्दोधद्दित। वस्तुतोब्रोहिपदस्य
ब्रोहीतरासम्बिलितब्रोहीवेदस्थल क्षृप्तलचण्या वोधद्दित। एवच्च नियमवोधक वे च, तत्र ब्रोहियागे, यवसमुचये यवैरिति विधिना निर्कतयागसामान्ये यवकरकलान्येन, यवस्थापि प्राप्ता निर्पचब्रोहिच्चतिप्राप्तब्रोहोतराकरणकलेन विरोधः। एवच्च, एवं रीत्याच, एकार्यतया एक
जातीयफलं प्रति खणारणिमणिन्यायेन कारणतया विविधं यागादिकम्म
कल्पातद्दित विकल्पो विकल्पपदार्थः (६१)।

तसात्विकल्पे दोषाष्टकसत्त्वाके च्छाविकल्पइति । अनैकादस्यामुप-वसेदिति सामान्यविधानन्तरं पूर्णाखण्डयोरूपस्थित्या उपवासः कथभवे दित्याकाङ्कायां पूर्णायामेकादमामुपवसेदित्युक्ते खण्डायामुपवासव्यावृत्ति रायाति खण्डायामुपवसेदित्युक्ते पूर्णाव्यावृत्तिरितिविरोध स्तत्परिहाराय पूर्णेकादच्युपवासाभावविधिष्टे खण्डोपवासस्य खण्डोपवासाभावविधिष्टे पूर्णीपवासस्य च श्रुतिवाक्यद्वयेनं वोधनेऽष्टदोषप्रसङ्गद्दतिभावः। उत्तरान्तु यतिः कुर्व्यात् पूर्व्वामुपवसेद्ग्रही । कूर्मापुरागो-ऽपि । एकादशी प्रव्वाचिक्कुक्ते कृष्णे विशिषतः । तचेत्तरां यतिः कुर्व्यात् पूर्व्वामुपवसेद्गृष्टी । एका-दश्येव प्रकर्षण वृद्धा प्रदिने निर्गता न दशमी नापि

व्यवस्थितविकत्यद्रति, अधिकारिभेदेन विविधकत्यद्रत्यर्थः। ननु दर्भपौर्ण-सासान्या यजेतेत्यव यथासस्चयस्त्रया उपोष्ये हेतियौतचेत्यवापि सस्चयः स्याहित्वेनीक्षेखादित्यत आह अत्रविति, प्रभाते पुनरेव सेति, परिदने हाइम्यनिर्गभेचेति पूर्योयं, पूर्णाप्येकादमी त्याज्या हितयः वर्दते यदी-त्युतालात् रहितसामन्यतीनिईशात् वैष्णवस्यापि यहणं उपोष्ये हे तिथी-तत्रविशाप्रीणन तत्परैरिखन उभयनविशाप्रीणनतत्परद्वन्वयादिशा-सक्तस्यापि ग्टिइयतिभेदेन व्यवस्थावीधनाच। विधवायासेति, चकारेण ब्रह्मचारिग्रहणं पत्याज्ञावग्रात् सधवायाउपवासथेत् स तदा तस्याः पूर्व-दिने, पतिसमानधर्मदर्भनादिति वोध्यं। अचघटिकेत्यपलचणं प्रभाते पुनरेवसीत समान्यत एवी ज्ञालात् एकादश्यासिव दादश्यासप्युपवासस्य विहितत्वात् हे तिथी तत्रेत्यनेन एकादशापवासीभयपरत्वमस्तु किं व्यवस्थितविकल्प परत्वकल्प नितिचेव एकादगी भुपवसेहादशी मथवापुन-रिखादिनैकोपवासनैवोभयसिडेक्जलात् तत्रोत्तरां यतिः क्र्यादित्या-दिना विकल्पवीधनाच । नचयत चयोदशीदिने किञ्चिहादशीलाभः नतुसा पारणयोग्या तत यत वा पूर्णेकादशी-परदिने निर्गता द्वादशीचार-णोदयव्यापिनी न परदिने निर्गता तत्रं पूर्णीखण्डयो गृहि-यत्यादि-भेदेन व्यवस्थापरमुत्तरान्तु यति: लुर्थादित्यादिवचनं नतु त्रिस्प्रास्थलपरं तत क्रतुश्रत पुरायसित्यनेन सामान्यत स्तत् प्रशंसनादितिवाचां हादश्राां पूर्णैवपरिग्टह्यतद्त्युक्तदादशीपारणालाभहेतोरविश्रेषात् पारणालाभे विस्रावचनविषयस्य अनुपद्सेव दर्शयिष्यमाणत्वात्। न च निरुक्त पूर्णाखलीयदादश्या उसीलनीलेन तिस्रशालेन वा तदुपवासस्य नित्य-वंन ग्रहिणां तत्परित्यांगे नित्रातिक्रसदोषः स्यादितिवाचं उमी-लगीतप्रागी दोषश्रवणस्य यतप्रादिपरत्वात् तेषाभेव तत्रोपवासविधानात् नितात्वाभिषानन्तु दश्रमीविष्वैकादशी परदिवसीयित-विस्त्रगाया

हादगी खर्यः। पुनः प्रभातसमय घटिनेना यदा भवित्। तवापवासो विश्वितावनस्यस्य यतस्त्या। विधवा-यास्य तवेव परतो हादणी न चेत्। तेन पारणदिने हादणी लाभे सर्वपव पूर्णा त्यन्ता खगडामुपवसेत्। तदलाभे यही पूर्वामितरस्तू तरां विधवापी ति लभ्यते (६२)।

यय निस्पृशेकादशी। यहा पूर्व्वदिन दशमी पर-दिने चैकादशी खल्पातती बादशी राविश्व चयादशी तदा सैव सर्व्वेक पोष्या। एकादशी बादशी च राविश्व वयोदशी। यव क्रतुशतं पुख्यं वयोदश्यान्तु पारणमिति हलायुधधत-वचनात्। हैमाद्रिलु परिशेषखग्छे स्कान्दं। एकादशीकला यव बादशी च चयंगता। नकं तव प्रकुर्वीत नीप-वासोग्रहाश्रमे। यव च प्रवासनिष्ये तु किञ्चिह्नच्यं प्रक-ल्पयेदिति सामान्यशास्त्रस्य नक्तविधायक विश्वशास्त्रे ण

स्थ्यापरं तदन्यित्रस्था च यत्रादीनामेव नित्येतिविवेकः, त्रयो-द्यान्तुपारणं, विवादेषु च सर्वेषु हाद्य्यांससुपोषणं। पारणच त्रयोद्यामान्नेयं सामकी सुने। हेतुवादीनकर्तव्योहित्ना पत्ते नरहति। पूर्वदिने सूर्योद्यपूर्वम् हूर्नह्यानितेकाद्यी, परदिने यत्नेकाद्यी हाद्यी त्रयोद्यीति तिथित्रयं तत्र विकल्पेनोपवाससुक्का पूर्वदिने द्यभी विवेकाद्यी परदिनेच तिस्त्र्या तत्र तिस्त्र्यायां सर्व्यापेष्यतां विशेष-फलच्च वक्तुमाह (६२)।

अय तिस्ह मैकाद मीति। परतः परिदेने दादमी न चेदिति एतच रातिभेषे त्रयोदमी लाभार्यं, परतोद्दादमी न चेदित्यत रातिभेषे त्रयोदमीति क्षचित् पाठः। अत पूर्व्वदिने एकादभ्याः पूर्णत्वे गृष्टिणां पूर्णायामुपवासविधानादेतद्वचनं पूर्व्वदिने दश्यभी युक्तेकादभी स्टलाभि-

वाधः। एकादशीकलाऽधेका हादशी यव लुप्यते। . तवीषवासं कुर्जीत निष्कामीविषातत्परः। इत्याह। अत परवचनपर्धालोचनया नताविधानं कामिनः काम्य-व्रतविषयं। निष्कामस्य निस्वीपवासार्थिनीविषापरा-यणस्य ग्रहस्थस्याप्यपवासद्ति तत्तुं। अतएव निखं भित्तसमायुक्तेरिखनेन पचे पचे निखम्पोषणमिख्तां। चतएवाव दादभीहानियुक्ताविद्वाधिकति विद्वायाः सप्तमे प्रकारे पृव्यीतक्षे सप्तम्यान्त व्यवस्थितिरिखनेन ख-वाक्येन विश्वक्षेपणायेषैव व्यवस्थीता। नचाव, नि-ष्कामस्तु एही कुर्याइतरैकादणीं सदा। सकामस् सदा पूर्वामिति वौधायनोऽज्ञवीदितिविणा्रहस-वाक्यात् सकामेन दशमीविद्या कार्या निष्कामेण हादशीयुक्तैकादशीति वाचस्पतिमित्रीका व्यवस्थायुका। पूर्वीपदर्शितनत्त्वोधकवच्यमाग्यदशमीविहानिन्दावचन-विरोधात्। विष्णुरहस्यानार्धत्वस्य दानसागरे अनिकड-सट्टेनाभिहितलाच यथा लोकप्रसिडमेतिहिणा रहस्यं

प्रायकिमितिभावः। वाधदति, तेन न दिवसे किञ्चित् भच्चणं कार्य-सितिभावः। हेमाद्रिभावाधं स्मुट्यित तव्यप्यचनेनित। तव हेमाद्री। हादशी हानियुक्तिति परदिने हादशीच्ये पूर्व्वदिने दश्मी-युतैकादशी हादशीहानियुक्ता विद्वोच्यते साधिकासप्तमीतार्थः। सप्तस्या-न्विति सप्तस्या विद्वायासितार्थः वत्रविद्यतिः व्यवख्या। न चाचेति हादशीच्यख्यवद्रतार्थः पूर्व्वोपदिशितिति, नक्तव्रतविधायक-हेमाद्रिष्टत-स्वान्दवचनेनेतार्थः। श्रानिष्दभद्वाभिधानसाइ यद्यति न परिगृहीतं स्मृतान्तरिवरोधे न याद्यसितार्थः, श्रवहेतुतया विशेषणसाह संग्रहरूप-च्रोति श्रव चकारो हेल्वर्थः संग्रहरूपसिदानीन्तनरिचतसनार्धसितियावत्। णिवरहस्य इयिमह न पिर्हिहीतं संदहहृदञ्च यत-तोऽवधार्योति। यत्तु णिवरहसामिति कृत्वा तिथि-विवेकीऽभिहितं तन्मुनिवचनस्यस्वयास्यानसंबादाय। अ-वापि विषाुरहस्यं (६३)।

वच्यमाण्याक्रपचीयामणोदयवंधे वेणावावेणावगृहिविधिसंवादायेति। समयप्रदीपेऽपि यक पृर्व्वदिने दश्मीविद्वा परिहने हादशीमिया दिनान्तरे च हादशी न
वर्धते तदा हादशीमियोवोपेष्या प्रधानकालानुरोधात्।
पारणादी तु हादशीवाध एव। एतन्मूलकमेव गौड़ीयवचनं। एकादशी हादशीमिया परतोऽपि न
वर्धते। गृहिभिर्यतिभिश्चेव सैवोशेष्या सदा तिथिः।
एतिहस्पृशि विस्पृशि च सम्भवत्यविभेषात्।
यय दशमीविद्वेकादशी। सा च देधा पृर्व्वाहे दशमा।
उत्तराहे हादश्या च युता दशस्य निर्मृक्ता चेति, तवेशमयी
दशमीयुतामनुपोष्य पूर्वेव हादशीयुतामेकादशी उत्तरव शुद्धां हादशीमुपवसेत्। एकादशीमुपवसेहादशिमयवा पुनः। विमियां व्रापि कुर्व्वीत न
दशस्या युतां क्रचिदितिवचनाद्वन्यमानवचनजाताच।

सुनिवचनेति, सुनिवचनस्य यद्यास्थानं तस्य संवादाय यथार्थस्थीप-नाय नतु स्वतः प्रसाणतयेत्यर्थः । अलापि एतद्यस्थेऽपि, विश्रुरइस्य-मिति उक्तमितिशेषः संवादायेत्यनेनानुयः (६३)।

वच्यमाणिति श्रुक्तपचेऽरुणोदयविडायामवैणावानामुपवासः परिने वैणावानां ग्रिडिणाभिति योवच्यमाणिविधिस्तत्संवादायित्यर्थः। तथाच विणारहस्यवचनमप्येतद्गवस्थाभिधायकमिति। नतु कामिनां विडामा- उत्तरपचे विशेषोऽपि वचाते। यतु यानि दशमीविद्या-निन्दावोधकवचनजातानि तान्युभयतोवेधे द्रष्टव्यानि। दशमीमाववेधे तु सैवोपोष्या। एकाइशी न लभ्येत सकला दाइगी अवेत्। उपोध्या दशमीविदा ऋषि-महालकोऽत्रवीदिति ऋष्यशृङ्गस्रुतेः। चये पूर्वानु कारयेदिति विश्वक्पनिवस्था । न हादश्यपवासः प्रमाणाभावात्। एकाइशीस्पवसेदादशीसयवा पुनः। द्रयसा राजाद्यलिखितत्वेनामूलकृत्वादिति वर्द्धमानीपा-ध्यायवाचस्पतिसिश्रमतं। त्र । तद्वजीव्यहरिनायो-पाध्यायेन सहाजनपरिग्रहीतत्वेन तदचनसमासिधानात्। न हि राजाद्यलिखितमेवाप्रमाणं रामायणादेखयात्वा-पत्ते:। न हि दशसीविद्येति वचनं राजलिखितं। तस्माज्ञानादेशीयसंग्रहकारिलिखितवचनसंवादादेव प्रामा-ग्यपरियहद्रति। उपाष्या दशमीविद्वेतासा विषय उदयपूर्ववेधे वच्छते। नवा नानासंग्रह-धतनानास्नि-वचनान्य नाहता संग्रहक तुर्वि खह पसा वाक्यादावस्था युक्ता। तथाच समयप्रदीपे श्रीदत्तीपाध्यायाः यदि तु, एकादशीमुपवसिद्वादशीमथवा पुनः। विसिश्वां वापि कुर्ज्ञीत न इग्रस्या युतां कचिहिति गौड़ीय-वचनं प्रमाणं तदानेनेवं विधे हैचे एकाइशी-

त्रोपवासविधायकं, इदन्तुवोध्यं कासिनां पूर्णायां निस्कासिनां तिस्र-शायामित्येतत् परत्वप्रपि सक्षवतीति । न चात्रविषाुरहस्यवचने निष्का-. मस्तुग्रहीत्युक्तं नतु वैषावद्गति क्यां तत्सम्बादद्गतिवाचां विषापिता-खिलाचारः स हि वैषाव उच्यत दत्यनेन वैषावस्यनिष्कामत्वलाभात्

कार्यो हादभीविधर्म्त एव हादश्युपवासः। वतान्तरमेव एकादशीसन्दंशपाठात् अयवेत्यनेन पूर्वा-पेचितविधेस। पचहानी स्थित सोने लङ्गवेदयमीयुता-मिति वाक्यमुद्यपूर्वकालीनद्यमीयोगविषयं वचनान्तर-वलादिति प्रयिद्धतं जितामिचादिभिरिखा हः। तथाच वालविवेक क्रत्यमहार्भवयोर्भविष्यपुराणं। एकादणी दणायुक्तां वर्डमाने विवर्ज्जयेत्। पचहानी खिते सोमे लङ्कयेद्द्रमीयुतामिति। वर्डमाने सोने शुज्जान्ते। पच-हानी सितं सोने क्षणापचे। लङ्घातं उपवसित्। चयमार्गस्थित सोमे कुर्व्वीत दशमीयुतामिति कालमाध-वीयपाठे व्यक्तएवार्यः। केचित् । विद्यायेकादशी याह्या परतो डाइशी न चेहिति। सुहूर्ने दादशी न स्याचयोदभगं यदा स्ने। उपीव्या दशमीविद्या सर्जे-रेकाइ भी तदेति। चयोद भगं यदा न खाडाद भी घटिका-इयं। इश्र थेकाइमी विद्या सेवो नेष्या सदा तियि-रिति मत्खकूक्मनारदीयवचनेरेवस्मृता दशमीविहैवो-

परतोऽपीति अपिभिन्नक्रमे परतः परिदने न वर्षतेऽपि द्वादशीत्यर्थः। दिस्या एकादशीमित्राद्वादशी यदि त्रयोदशीदिन-प्रथमचणे नष्टा दिस्थाति। यदिवैकादशी द्वादशी त्रयोदशीचैकदिने त्रिस्थाति अयौतावतायत्थेन ग्रह्मातस्य पूर्णेकादशीलामे त्रयोदशीदिने द्वादश्यलामे पूर्णायामेवोपवामः नतुत्रिस्थशादाविष परिदने यत्र विदेकादशी परिदने निःसरित द्वादशी-चयच तत्र तिस्थशायामेव सर्वेषामुपवामः, परन्तु तदिने काभिनां वैणावतरं ग्रहिणां न काम्योपवामः किन्तु तेषां नक्तवतं नित्योपवासस्वस्थवित यन्यक्रकातं पर्धविततं प्रतीयते। केचित्तु खपोष्ये दे तिथी एकादशी द यौ तिथिदयपवोपवासविधानात् एतच

पोष्या नयोदणां हादणीनिर्गते तु मुमुचु भिद्धाद्य पोष्या सकामेस्वगि दणमीविष्ठेव । श्रु हैव हादणी राजज्ञ-पोष्या मोचका क्षिः । तया, निष्का मस्तु ग्रही कुर्या-दुत्तरेकादणीं सदा । सकाम तु सदा पूर्व्या मिति वीधायनोऽ ज्ञवीदिति विष्णु रहस्यवचना दिति वदनि । चन, विष्ठा प्रे ज्ञादणी यादिवचनानां नाना देणीय संग्रह कार भत्तनानावचनत त्त ह्या स्यानाद नुपदं विषयः स्पृटी-भविष्यति । चनार्ष विष्णु रहस्यवाक्य मिष्ठ चत्तेकादणी-मिष्य भिधाना ज्ञो त्त्र विषयः क्षिटी-पिष्य । चनार्ष विषयः कित्तु वच्य माणाकणो दयवेध-विषयं । यदि , कुर्याद वाभे संयुक्तां नाना भेऽपि प्रवेषिनीं । उपोष्या हादणी तन चथो दण्यान्तु पारणं । उदयात् प्राग्दणस्यास्तु भेषः संयोगद्रष्यते । उपरिष्टात् प्रवेण्यत् तस्यान्तां परिवर्ज्यते । दस्य नयोः समुलत्वेऽपि चलाभे चयो दण्यां हादणा वाभे संयुक्तां स्र्योदयात् चलाभे चयो दणां । समुलत्वेऽपि चलाभे चयो दण्यां हादणा नाभे संयुक्तां स्र्योदयात् चलाभे चयो दणां । हस्य नयोः समुलत्वेऽपि चलाभे चयो दणां हादणा नामे संयुक्तां स्र्योदयात्

ग्रहिपरं तद्येषामेकाद ग्रापवासः परिदेने, तत्रोत्तरां यतिः कुर्थात् पूर्वीमुपवसेदग्रहीत्युक्तेः उत्तरां परिद्यमीयैकादग्रीं तद्युक्तदिनमितियावत्। तत्रोपवास ग्रामामर्थी परिदेन एव तिथि वययोगस्य वलवत्त्वेन नित्योपवास सि बेरित्या हुः। साचेति, दश्रमी वि बैकादश्रीचेत्यर्थः। पूर्व्वदिनेदश्मीयुता सती परिदेने दादशीयुतित्येका दश्रमी निर्मुक्तेति, श्रपरा तत्र द स्यति मुक्ता दश्रमीयुता परिदेने न निर्गता। पूर्वत्र प्रथमविद्याः स्थले उत्तर दित्तीयविद्यास्थले। उभयोविधे दश्रमीद्वादस्थीविधे। दश्रमीमात्रविद्यादश्मीयुक्तदिने श्रयङ्गताचेत् सेवोपोष्याद्व्यर्थः, तु श्रव्दो-यदी यर्थः। राज्ञा भोजराजेन, तद्यजीयेति, भोजराजोपजीयेत्यर्थः। विश्व स्था वाश्वाद्वावस्थिति निष्का समक्तासभेदेन भित्रेत्यर्थः। एका-दश्मीकार्थे एकादसी जत्यक्तानिमित्तं द्वादश्मीविधे द्वादश्मी प्रथवापुनिर-

प्राग्वकावलोकनसमय दणस्यायुतां षष्टिदण्डात्मिकामेकादणीं कुर्प्यादिखर्थः। बादणां पारणालाभे पृणेव परिएत्यत दति प्रचेतोवचनैकवाक्यत्वादितिभावः। लाभे तु
संयुक्ता न याद्या ज्ञलाभद्रति वचनस्वरसात् पृणीप्येकादणीत्यांच्या द्रत्यनेनेकश्रुतिमूलकत्वाच। नालाभेऽपि प्रवेिणनीमिति बादण्यास्त्रयोदण्यामनिर्गभेऽपीत्यर्थः। यच
दणमी सूर्य्योदयात् परतः, परदिने चैकादणी बादणी
राचिणेषे चयोदणी चेति चिस्पृणा तच दणमीविष्ठैकादणीनिषेधकमिदं। ज्यमाणयः। एकादण्यां प्रकृष्यं नि
उपवासं मनीषिणः। उपासनाय बादण्यां विष्णीर्थबदियं तथिति भविष्यपुराणवचनात् परदिने बादण्यां
विष्णूपासनार्थत्वमेकादश्रुपवासस्यावगतं तच्चोक्तविषये
दणमीविष्ठैकादश्रुपवासमन्तरेण न सन्धवित सोऽप्यस्त्वत्याण्ञ्ञोक्तमुपोष्या बादणी तचेति। एकादणी
बादणी च राचिणेषे चयोदणी। तच क्रतुणतं पुण्यं

त्युत्रेयद्वाद्य्युपवासिविधः, नचेदिमिति द्वाद्यीमयवा पुनरितिवचनमित्यर्थः व्रतान्तरं एकाद्य्युपवासव्रतादन्यदेव द्वाद्यीव्रतं वोधयतीति ग्रेषः, एकाद्यीसन्दंग्रपाठात् एकाद्यीव्रतपकरणपाठात् पूर्व्वापिचितविधिरिति, विधः द्वाद्यीविधः पूर्व्वापिच्चतवस्य एकाद्यीव्रते
कालविग्रेषाकांच्योत्यापितवस्य वोधनादित्यर्थः। उदयपूर्व्वकालीनेति, अरुणोद्यकालीनित्यर्थः सर्व्वागृहस्थवनियतिप्रशतिभः। एवस्तृतद्याविद्वा उभयविधयुता, सदिति नित्योपवासपरव्वाभाय। वचनानामित्यस्य विश्वय द्रत्यतेनान्वयः, नोक्वविषयमिति, पूर्व्वविद्वेकाद्यीपरिदिने न निःसरित द्वाद्यी च व्योद्य्यां निःसरित न तत्परभित्यर्थः। अत्र हेत्रत्तैकाद्यीमित्यभिधानादिति परिदिने एका-

नयोदश्यान्त पारणिमिति वचनात्। नयोदश्यामिति
नतु हादश्यां विषापृत्रां कृत्वा। नच एकादश्याः परदिने हादशीसम्बन्धे हादश्युपोष्या द्रव्यसङ्गतं। एकादशीयुक्तहादश्या अपि हादशीत्वाचतिरित्याहः। तदप्यश्रद्धेयं। यतीजीमृतवाहनहत्वायुधप्रभृतिभिस्तहचनमभिहितं यथा श्रुतं व्याख्यातञ्च। हमाद्रिमाधवाचार्यप्रभृतिधृतवचनान्तरसंवादिशिष्टाचारपरिग्रहीतञ्च। ततश्य
तहचनस्याधान्तरकल्पनं कल्पनमेव। तथाहि। एकादशीमुपवसेहादशीमथवा पुनः। विमिश्रां वापि कुर्वीत
न दशस्या युतां. क्वित्। द्रव्यभिधाय कुर्यादलाभ-

दगीनिर्गमवोधकादित्यर्थः यदा च पूर्वविदैकादशौ परदिने निःसरित तथा दुादशी परदिनगत तन सर्वेरिव उत्तरैकादश्या उपोषलात् परदिने दादखनिर्गमे पूर्वेकादखा सर्वेषामेव तैक्पोष्यत्वेनोक्तत्वाच, नव तत्वरत्वसकाव इति, तेषां विश्वरहस्यकचनीपादानमनर्थकमिति भाव। यदा नोक्तविषयं न विडाप्येकादमी इत्लादि वचनदत्तविषयपरं तस परिनासम्बन्धरणोदयविद्येकादशीपरत्वादिति भावः। पूर्णविति उदशा दुदयाद्रवेरित्युक्तपूर्णलचणाभिप्रायेणदं। लाभेतु चयोदश्यां पारणयोष् दु।द्गीलाभित्वत्यर्थः। तत्रेति न तु प्रविश्वनीसामान्यनिषेधकं तेन दश स्यंकादशी द्वादशी चेति विस्पृशीपोष्येति। ननु यवैकादशीलादि तिथित्रयरूपा विस्थमा तव प्रविभानी सर्व्या निषिदैवेति तद्ग्रहस्यस्म-प्रसत्त्वा कवं तिक्षेधकमिदमित्यत आह अयमाश्यद्ति दाद्यां विश्राणां कवेति, चयोदया मिलस्यादी पूरितं तद्चनं। कुर्यादलाहे संयुक्तामितिवचनं यथायुतं प्रविशिनीसामान्यनिषेधकं। समूललेऽपीत्यनेव यत् सन्दिग्धमूलकत्वमुक्तं तद्पिदूषयति हेमादीत्यादि। तत्य तदचनस् सम्बलाच समूललं तत्रहेतुकत्तरेकादशीमित्यभिधानादिति परदिने स्कादगी निर्ममवीधन्नापकतत्सम्बादवचनं प्रदर्शयन्यान्तरकत्यने वाधन इत्यादिवचनद्यं की की प्रवाभिहितं। तत्र प्रकृतत्वाद्य-दशम्या युतामित्यस्यैवायवादकं विधायकञ्च कुर्व्यादलाभ-द्रत्यादि (६४)।

एवच्च संयुक्तैकादशीकरणविधानादलाभद्रत्यचायेकाकाद्य्या एव परिद्नेऽलाभद्रति प्रतीयते नतु चयोद्य्यां दादश्यलाभोऽनुपिस्यतेः। यदुक्तं पूर्णैवित्येकवाक्यत्वं तदिप न भवदुक्तविषये पूर्णत्वा यागात्। तथाच
सीरधर्में, चादित्योदयविलायाः प्राद्युहूर्ण्डयान्विता।
सैकादशीति संपूर्णा विद्यान्या परिकीर्त्तिता। द्रव्यनेनैकादशीपूर्णत्वस्य सूर्य्योदयप्राक्कालीनसुहूर्ण्डयान्वितत्वेन विश्विष्याभिधानात्। स्कान्देऽपि। प्रतिपत्प्रभुतयः सर्व्यांद्रयादोदयाद्रवेः। संपूर्णाद्रति विद्याताहरिवासरवर्ज्ञिताः। चतस्तदुक्तपूर्णाविषये पूर्व्याया विद्यलात् परेकादश्यपोष्या। कुर्य्यादलाभे संयुक्तामित्यनेन दादश्यामेकादश्यलाभे संयुक्तां प्रातर्वकृतवलोकनसमयविद्यां कुर्य्यात् खर्याद्वादश्यामेकादशीलाभे तादश्य
विद्यां न कुर्य्यादित्यवगतेस्तच परोपोष्येति गस्यते।
एतद्विषये, षष्टिद्रश्वात्मिकायास्य तियेर्निष्कृमणे

माइ तथाहीत्यादि, कोमी एवित्यनेन समूलतं दर्शितं प्रक्ततत्वात् प्रक्रान्त-त्वात् भवदुक्तविषये अक्षोदयकालीनदश्मीविधविषये। अथीदलाभा-दित्युपादानात् अन्यया तद्वार्थं स्थादिति भावः (६४)।

संको हा विदा स्रवापि पूर्वदिने स्रक्षोदयविदा परिदनगायव तवापीत्यर्थः नोचेत् वयोदशांद्वादश्यालाभे एकादशीमुत्तीर्थ्यति द्वादश्यां पारणनियमादितिभावः। द्वादश्या साद्यपादमुत्तीर्थेतिपाठः। तवापि

परे। अकसी एवं तिथिसलं विद्यादेकादशीं विनेति-सङ्गच्छते। तथा कालमाधवीये गामुं। आदियो-दयवेलाया आर्भ्य षष्टिनाड्का। संकीर्णेकादशी नाम त्याच्या धर्माफलेप्सुभिः। अवावि वयोद्ध्यां हाद्या-लाभएव परोपोष्येत्यवधयं। नवित्तव पूर्व्वामुपोष्य परदिने दादम्याद्यपादमुत्तीर्थ्य पारणं कुर्थादिति। विद्यायेकादशी याच्या परतोदादशी नचेदियादि प्रागुत्तवचनेभ्यः। अयैवं विद्यापूर्णयोर्व्यवस्थायामविशेष-द्रति चेत्। दाद्भ्यां पारणालाभे पूर्णेव परिगृहाते। द्रखिविश्वादेषावेनापि पूर्णीपोध्या। अन्गोदयविद्या तु दादशीपारणसालाभेऽपि वैशावैनीं पोच्या किन्तु खगडेका-द्रायपोध्येति विशेषः। दशमीशेषसंयुक्तोयदि स्यादम-गोदयः। नैवोबोध्यं वैषावेन तद्दिनैकादशीव्रत मितिगामड़े वैषावेने यभिधानात्। तजापि क्रषापचे-उस्लोदयविद्वेवोशोध्या शुक्रपचे तु न तथिति विशेषः एकादणीं दणायुक्तां वर्डमाने विवर्जयेत्। पचहानी

परदिनिनः सत्पागरणोदयविष्ठै कादणी खलेऽपीति, चेन्नेति, अस्य एका-दगी दादणी चेतिवचनस्य अस्य च विषयेखनेन वाधकत्विमत्यनेन चान्वयः उदयोपरिविद्याया एकादण्याः परिदने विषयस्य तिस्पृण्णैकादण्यपः वासरूपस्य सभवात् अरुणोदयविद्या च पूर्णाचेति ते अरुणोदयविद्याः पूर्णे विषयी ययोस्तयोविश्येषवचनयोविधकत्वेनेत्यर्थः ते च वचने विद्याः प्येकादगीपाद्या परतोद्यादशी नचेदिति द्यादण्यांपारणालाभे पूर्णेव परिग्टह्यत द्रित, विश्वाविद्यास्य सामान्यतिस्पृणाविषयकवचनमपेच्य, तथाच सामान्यविश्वाययोविश्रीषविधेवेलवच्यात् तिस्पृणाविषयकवचनस्य सामान्यस्य चारुणोद्यविद्यापूर्णा परिद्वसीयैतरिहस्पृणा विषयकवचनस्य सामान्यस्य चारुणोद्यविद्यापूर्णा परिद्वसीयैतरिहस्पृणा विषयकत्विद्यति

स्थिते सोमे लङ्घयेद्दशमीयुतामिखेकवाक्यत्वात्। एत च्छुक्त पचैकादशीसंवादाय। निष्काम स्तु कुर्वादुत्तरैकादशौं सदा। सकामसु सदा पूर्वामिति वौधायनोऽव्रवीदिति विष्णुरहस्रवाक्यमिति। मगोदयविद्योत्तरैकादशी पृगीत्तरैकादशी च हादश्या-स्तयोदश्यामनिर्गमे सर्वेरिव कयं नोशेषाते। एका-दशी दादशी च परतोदादशी नच। तव क्रतुशतं पुग्यं वयोदभ्यान्तु पारणमिति वचनादिति चेन। अस्योदयोपरिविडैकादशीपरिदने विषयसकात् नामगो-द्यविद्यापूर्णाविषयकविश्रेषवचनवाधकविमिति। नमते तु नालाभेऽपि प्रवेशिनीमित्यनेन अलाभेऽपि परदिने एकाद्रश्यलाभेऽपि सूर्योदयाननारवेधमात-निषेध:। भवतांमते पर्दिन एकादशीलाभ एवेति सङ्कोचः स्यात्। उपोष्पा दादशीत्यव दादशीवदस्य एकादशीयुक्तहादशीपरत्वे प्रमाणं नास्ति लचणा च स्यात्। किन्तु दादशीमयवा पुनरित्यसा प्रवेशिन्य-न्तरितक्वेवलहाइशीपरत्वप्रदर्शनाधं नालाभेऽपि प्रवेशिनी मिति। तथा च कालविवेके जीमृतवाहनः। द्गी द्गाविद्या परतोऽपि न वर्द्धते। गृहिभिर्यति-

भाव: । प्रविश्वनी तु कदाचिदिप नोपोष्येत्याह अस्मन्मतीत्विति नालाभे-पौत्यिपना परिदने एकादशीलाभ इति लभ्यते तथाच प्रविश्वनीमाने नोपवास इतिपर्व्यवसितमुपदर्शयित स्र्योदियानन्तरविधसाने निषेधइति सङ्गोचइति तथाच दशमीविडां वर्ज्जयेदित्यत्र परिदने एकादशीलाभ-इति विशेषणज्ञानं परिदने एकादश्यलाभे विडायां उपवासविधि- भिश्वव सैवोगोष्या सदा तिथिरिति भविष्य-पुराणीयात्। दशा दशमी, तव दादशीदिन एका-दशीकलाईमाच स्याप्यनिर्गमे दशस्या विहैकादशी उपी-ष्येति प्रचरित शास्त्रार्थः सतु सौरधस्मीत्तरकूर्मापुरा-गादिविषदः। तथाच सौरधक्षीं तरे। एकादशीमुप-वसेद्दादशीमयवा पुनः। विमियां वापि कुर्ज्ञीत न दशस्या युतांकचित्। कौर्मो। एकादशीमुदवसेहादशी-मयवापुनः । विभिन्नां वापि कुर्व्यात न दशस्या युतां कचित्। कुर्यग्रादलाभे संयुक्तां नालाभेऽपि प्रवे-शिनीं। उपोष्रा दादशी तब वयोदश्यानु पारगं। उदयात् प्राग्दशस्यास्तु शेषः संयोगद्रषाते। ष्टात् प्रवेशस्त तक्षात्तां परिवर्जयेत्। अस्थार्थः। दादश्यां कलाईमानमधेकादध्यात्रनिर्गमे यदि दशमी नोदयं स्पृण्ति तदा संयुक्तीच्यते सैवी शोष्या अधोदयं स्पृण्ति तदा सैव प्रविश्वनीपदवाच्या तां विहाय हादशीभेवी-पवसेत् तदिदमुत्तां नालाभेऽपि प्रवेशिनीमिति। सौर-

कल्पनच गौरव यितभावः। यचीक्तं विद्यापरिदने एकादश्यादितिथित्वयस्पर्भे तिहने उपवासविधायकमुपोष्या हादशी तचित्वचनपितिहादशीपदं एकादशीपरिमिति तदिप दूषयित एकादशीयक्तेति,
किन्त्वित्यादि। हादशीमथवा पुनिरत्यस्य यत् ग्रहहादश्यापवासपरत्वं
तत् कुत्रेत्याकांचायां तत्स्थलमाह नालाभिऽपि प्रविधिनीसित्यनेन स्र्योदयानन्तरं विधमातं निषिदं तत्परिदने एकादश्यालाभे ग्रहहादश्यपोष्याहत्य विद्यितुमाह उपोष्या हादशी तत्नेतिभावः। परतोऽपि परिदने
च न वर्षते न निःसरित। एकादशींग्रह्वैकादशींदृादशीं ग्रहद्वादशीं
विमित्रां दृादशीयतां। दशस्या युतां उदयानन्तरदश्मीयुतां कचिदि-

धर्मात्तरे स्तज्वाच। कीट्यस्तु भवेदेधो योगोवि-प्रेन्द्र कीट्यः। योगवेधी समाचच्च याभ्यां दृष्टस्वी-षणं। व्यासं ज्वाच। या तिथिः स्पृणते सृत प्रात्वेकुाविशीकानी। स वेधद्रति विद्वेयोयोगः स्यर्गी-द्यी सतः। सूर्व्योदयात् प्रागन्योन्यसुखावलीकान-योग्यं प्रातःकालं यदि द्यमी स्पृणति नतूद्यं स वेधद्रति परिभाषितं यस्य कूर्क्यपुराणवचने श्रेषः संयोगद्रत्युक्तं। यस्य तूपरिष्टात् प्रवेशस्त्वित्युक्तं सोऽनेन योगः सूर्योदयी मतद्रत्युक्तं (६५)।

परिभाषितत्वादेवास्य परस्परिवरोधीन वाच्यः। तेन सूर्य्योदयकाले इशमीस्पृष्टैकादशी न कदाचि-दुपीषा। किन्त्वेकादशी निःसरतु न निःसरतु वा

त्युक्ते:। ननु तियामांरजनीं प्राइित्यादिवचनवलात् प्रदोषे घांटका युग्मंप्रभातिघटिकाद्यं। दिनवत्मर्व्वकम्माणि कारयेत्रविचारयेदित्यादि वननाचारणोदयकालस्यापि दिनत्वतिदेशात् स्रव दश्मीयोगे एकादशील्याच्या न वित्याकाङ्गायामाह कुर्यादलाभ इति। स्रव प्रविधिनीस्त्ले। संयुक्तलचणमाहउदयात् प्रागिति उपिरष्टादिति उदयस्थेत्यर्थः। दम्भ्याः स्रेव इत्यनुषङ्गेनान्वयः प्रविधदतास्यच उचते इत्यनुषङ्गेनान्वयः तां संयोग्युतां प्रविग्युताञ्च। व्यवस्थाभेदायसंयोग्ग्यवेग्भदेन विधद्यमुक्तं साच व्यवस्था दर्भिता कुर्यादलाभइत्यादिना। सैवोपोष्येति दृादस्यां पारणालाभे दृादस्यामेकादश्यनिर्गमे चेतिस्रेषः। एदच्च भविष्यप्राणवचने द्याविद्वत्यस्थार्णोदयविद्वत्यर्थः। स्र्योदयी स्र्य्योदयी स्र्य्योदयी कालीनः (६५)।

परिभाषितत्वादेविति परिभाषाया स्तत्तद्ग्रस्थकता सस्यस्य व्यवस्था-भेदाय कतत्वादेवित्यर्थः। एवकारेण सङ्गार्द्दो न वैदिक इति स्चितं। व्यवस्थाभेदस्त वेदे ग्रन्दान्तरेण कथित इतिभावः। परस्परविरोधः। हार्श्यवी शेष्या। यहा तु वत्नावली कनमा वं स्पृष्णित इशमी नोइयं परहिने चैकाइशी न नि:सरित तदा एकादणीं वेधवतीमुपवसेत्। एकादणी दणायुक्ती-खादि दगमीयतामिति दगम्याही खादिकमविधान् विषये वोडव्यमियां स्म। स्मृतिमहार्गवे भोजदेवो-उत्येवमेव वंचनमाहं। एवमेव कालकीमुदी। तस्मात् पूर्वित्तमात्स्यकीसीनारदीयवचनानां। दिग्भीकद्रे समा-युंती चयेऽहान तथापरे। उपवासातु पूर्व्वेयुनीप-वासः परेऽहिन । दति विषाधर्मीत्तरीयस्याप्यमणोदय-विद्यायामेव व्यवस्था नतुव्यवस्थान्तरं जीसृतवाहन-लिखितकूर्मपुराणसीरधर्मीत्तरविरोधात्। एवमन्यान्यपि वचनानि व्याख्येयानि संवत्सरप्रदीपे इलायुधोऽप्ये-तन्मतानुसारी सन्निद्मधिकमुत्तवान् यथा। अक्णो-दयवेलायां दशमी सङ्गता यदि। उपीष्या दादशी शुडा चयोद्यानु पारगं। दशमीशेषसंयुक्तीयदि स्यादम्णोदयः। वैशावेन न कर्त्तव्यं तद्दिनैकादशीव्रतं द्रत्यादिवचनेष अम्ग्राद्ध आदित्यवाचकोवोडव्यः अम्-गोभास्तर्ऽिव स्यादित्यभिधानात्। तस्यादेकादशी

क् मीपुराणेऽक्णोदयकालीन दश्मीयोगे संयुक्तेति संज्ञा उदयानन्तर संयोगे वेधसंज्ञा सोरधर्मात्तरे तद्वैपरीत्यमिति परस्परविरोधः। इत्याह दति जोमूतवाहनद्व्यनेनास्यान्वयः। सवचनं प्रसाणवचनसहितं। तस्मात् प्रविश्वन्याः सर्व्यदा निषधात्। पूर्व्योक्तेति केचित्त्वित्यादिनोक्तानां विद्याऽ-प्येकादगोपाह्याद्व्यादिवचनानामित्यर्थः। दिग्भिः समायुक्तेक्द्रेदत्वन्वयः दिक्पदं दशमीपरं। वहुवचनमनेकस्थलाभिप्रायेण क्द्र एकादशी स्थाज्या दशमीपलमिशिता। उपोष्पा हादगी गुडा चयोदम्बान्त पारणं। यत्तु। हादग हादगीर्हन्ति स्योदम्यान्तु पारणमिति तत्परहिने हादगीलाभे तां स्यक्ता पारणे वोडव्यं (६६)।

कानि वचनानि यथाक्रसं सकाससुमुच् विषयकाणि, यथा कोर्मो, हिस्पृथेकादणी यत्र तव सिक्कितोहिरः। तामेवोपवसेन्सर्थः सकामोविष्णुतत्परः। दणमी दाद-णीच्च या स्पृणित सेकादणीहिस्पृक्। समन्तुसखनती। दिनचये तु णुडाच हादणी मोचकाङ्किभिः। उपोध्या दणमीविडा नोपोध्येकादणी सदा। पुत्तवहृहिमात्रेण दणमीविडा नोपोध्येकादणी सदा। पुत्तवहृहिमात्रेण दणमी विडा नोपोष्पा किन्तु गुडा हादण्युपोष्या। यथा पितामहः, एकादणीदिनचये उपवासं करोति यः। तस्य पुता विनश्यन्ति सघायां पिण्डदोयथा। दिन-चये तु संप्राप्ते नोपोध्या दणमीयुता। यदीक्षेत् पुत्तृपौत्तागास्रुद्धिः सम्पदमात्सनः। एकादण्यां यदा

तथापरेऽहिन चये सित हादशीचयेसित एकादश्यादितिथिवयसभी सतीतियावत्। अरुणोदयिवद्यामिवेति, तथाच पूर्व्वाक्तसत्स्यपुराणादि-वचनेषु विद्यापदं अत्र च समायुक्तपदमरुणोदयविद्यापरिमित्यर्थः। व्यवस्थान्तरं उदयोपरिविद्यामुपवासपरत्वं इदं वच्यमाणं। यत्र पूर्विवचनस्थापि वैणावपरत्वं परवचने वैष्णवपद्यवणात् तथाचारुणोदयपदं यथायुतं सङ्क्तित्रत्ववधेयं। वोद्ययमित्यन्तोह्नसायुध्यन्यः (६६)।

हेमाद्रिरपीति। आहेति परेणान्वयः। दशमीविषायासित्यादि-तत्र दशमीविद्या सकामैरपोष्या सुमुक्तिभिर्निष्कामैरनुपोष्येत्यर्थः। दशमी दशमीयुक्तपूर्व्व दिनमरुणोदयकाले दशमीयोगिऽपि पूर्व्व दिनमिति यावत् वत्स दिनचयतिथिभवित्। तचावीच्या दादशी स्थाचयी-दम्यान्तु पारगं (६०)।

व्यासः। दशमीमित्रिता पूर्व्वा दादशी यदि लुप्यते। एकाद्ध्यां महाप्रान्त उपवास: क्यं भवित्। शुहैव हादशी राजज्ञ्योष्या सोचकाङ्किसः। पारगन्तु चयो-द्यां पूज्यित्वा जनाईनं। भविष्ये। दशसीभिष-संयुक्ती यदिस्यादमणीदयः। वैषाविन न कर्त्तव्यं तहि-नैकाइशीवतं। ब्रह्मवैवर्त्तः, चतसीघटिकाः प्रातर-त्योदय उच्यते। यतीनां सानकालोऽयं गङ्गासः सद्यः स्मृत:। वियामां रजनीं प्राइस्तातादान्तचतुष्टयं। नाड़ीनां तद्भे सन्धेर दिवसाद्यन्तसंज्ञिते। तथा, नन्दा गरीरं देवस्य भद्रा ह्यात्माचयोमतः। तस्मात् सरोगं त्यताङ्गसात्मानस्पवासयेत्। नन्दा एकादशी। अद्रा दादशी। तथा, वरनेकादशी त्याच्या न कार्या दश-द्वादशीं द्वादशीयुक्तदिनं परदिनिमितियावत् यैकादशीम्प्रशति सा विस-गित्यर्थः एकस्मिन्दिने दगमीद्वादशीयुक्तत्वेन दिस्पृगित्युक्ती तस्याः प्रविधिनी लेन कस्याप्यनिधकारात्। केचित् एवस्त्रति इस्टक् प्रविशिन्यपि सकामैरपोचेति हिमादिमतिमत्याहः। दिनचये एकादशौचये चेत ग्रहाएकादशीयोगरिक्ता दशसीविहैकादशीनीपोधेल-न्वय: (६७)।

व्यासद्दित पूर्व्वाएकादशी। तत्परिं हादशीलुप्यते हादशीच्यः एकाद्यादितिथिचयस्पर्भद्दित यावत्। ग्रहा मिश्रिता यहा दशमीयृता पुर्व्वाएकादशी अनन्तरं राचिश्रेषे हादशी परिंदनेच लुप्यते तत्र ग्रहा-एकादशीयोगरिहता हादप्युपोधेल्यर्थः। यतीनां स्नानकालोऽयिमिति अर्गोदयकालस्यदिनत्वातिदेशकं वियामामिति तद्भेतेषभित्रादिदण्ड-चतुष्टयमन्तदण्डचतुष्टयस्य अर्गोदयदण्डचतुष्टयस्यरावित्वनिराहेन पर-

मीयुता। इत्यक्षणोद्यवेधनिषधवाक्यं यदा हादश्यां वियन्माचायेकादशी हश्यते चयोदश्याञ्च कियन्मावा हादशी हश्यते तदा पृट्वी त्याच्या दृष्टेतत्परं (६८)।

काम्येकादणीव्रतिवषयं वा। अक्षणोद्यकाले तु दणमी यदि दृष्यते। न तत्रैकादणी कार्य्या धर्मका-मार्थदायिनी, द्रति अवणादित्याच। पास्रात्यनिर्णया-स्रते भविष्योत्तरीयं। अक्षणोद्यकाले तु दणमी यदि दृण्यते। सा विज्ञैकादणी तत्र पापमूलमुपोषण भविष्य-पुराणीयमेतदिति माधवाचार्य्यः। ततस्राक्षणोद्यवेधे तु भागवतैनीपवासः कार्य्यः। स कालः स्कान्दे उक्तीयया। उदयात् प्राक्ष्वतस्तु नाङ्का अक्षणोद्यः। तत्र स्नानं प्रणस्तं स्थात्ति पुण्यतमं स्मृतं। विश्वादर्भे, वेध-स्तूद्ये निषिदः। दणस्याः प्रान्तमादाय यदोदिति दिवा-करः। तेन दृष्टं एरिदिनं तद्दत्तमसुराय हि, द्रति स्मृतेः। अच दत्तं जस्मासुराय त्विति साधवाचार्यः। पठित । कालसाधवीये साधवाचार्य्योऽपि, व्रस्नवैवर्त्तः,

दिनलातिदेशः तेन तत्र दश्यभीयोगे तिह्वसीयैकादंशी विद्याभव-तीत्यर्थः। देवस्य विश्वोः। सरोगंदश्यभीयुतं सर्वेत्रतिथिद्वययोग एक-दिनहत्तित्वं। ऋष्णोदयिनिषेधक्रमिति, योगमातस्थाभिधानात्।यहा ऋष्णोदयिनिषेधक्रमपीति तदर्थः। ननु श्रद्यशोदय विद्यायामप्युषवास श्रवणात् कयं तिनिषेधद्रत्यतश्च यदेत्यादि द्वादश्चां एकादश्मानिर्गमे पारणायोग्यत्वे वाऽक्णोदयविद्यायां उपवास विधानान्न विरोधद्रतिभावः। स्थलविश्वेषक्रतस्थनां विनाप्याह (६८)।

कास्यैकादशीवतिषयंविति श्रव वाकारोऽनास्थायां हिस्पृशैकादशी यत्रेति प्रागुक्तकूर्भपुराणवचनविरोधात् एतदचनेऽक्णोदयकाले वित्यवा- कीहणस्तु भवेद्देधोयोगोविप्रेन्द्र कीहणः। योगवेधी समाचक्त याभ्यां दृष्टमुपोषणं। चतस्तोघिताः प्रातर-कणोदयिनश्चयः। चतुष्टयिवभागोऽत्व वेधादीनां किलो-दितः। श्रकणोदयवेधः स्थात् साईन्तु घितादयं। श्रतिवेधोदिघिता प्रभासन्दर्भनाद्रवेः। महावेधोऽिय तवैव दृष्यतेऽकीन दृण्यते। तुरीयस्त्व विहितोयोगः सूर्योदये वृधैः (६६)।

तथा। यातुधानवतं योगे महावेधे तु राचसं। जन्मासुरसातिवेधे मोहिते वै प्रवेशिमी, इत्यनेन तत्त-देकादणी फलं तत्तदपुरः प्राप्नोतीति विशेषः। घठिका दण्डं। उदयात् प्राक्चतस्रक्तु नाड्किंग अम्गोदयः, इति स्कान्दनारदवचनेकवाक्यत्वात्। क्यवः। उदयो-परिविद्या तु दणस्यैकादणी यदि। दानवेभ्यः प्रीणनार्थं दलवान् पाकणासनः। गामङ् । दणमीशिषसंयुक्तो-यदि स्वादमणोदयः। नैवोपोध्यं वैषावेन तहिनेकादणी-

क्णपदस्य सूर्यपरत्वात् अतएवतुकारोऽपि सङ्गच्छते अन्यया पर-दिनगत्वेऽपि वाद्याः सर्वेक्पोष्यत्वात्तदुपादानसन्धकं स्यादिति। कीचित्तुएतदक्णोदयनिषेधकवचनजातं वैष्णवपरसित्याद्यः। प्रान्तं ग्रेषं। तहत्त ससुरायहीतातः। सार्षं अर्वघटिकासन्तिः घटिकादण्डः। तथाच षट्पचाग्रहण्डोपि सार्वदण्डवयसध्ये दश्मीयोगश्चेदक्णोदयवेधः। विघटिकायां योगोऽतिवेधः। प्रभासन्दर्भनात् तत्पर्थन्तं अत दण्ड-दयं न सम्पूर्णं प्रथमार्वदण्डस्याक्णोदयवेधगतत्वात् परदण्डस्य किश्चिद-सागस्य सन्दर्भवात्वाचेति। अत्रैवाक्णोदयकालसध्ये एव न द्यगतिद्ति तेन सूर्य्यदर्भनाव्यवन्तितप्राक्चणपर्यन्तः सूर्य्यदर्भनसंग्रययोग्य-काले दयसीयोगोसन्दावेधदति (६८)।

वास्तालोस्यविश्वेष:। मोहिते मोहिताच्यास्र मोहिनीतिपाठे

वतं। उदयात् प्राग्यदा विप्रमुहूर्तदयसंयुता संपूर्णेका-दशी ज्ञेया त नैवीपवसिङ्ग ही त्यादि वचन जातात् सूर्यी-दयानन्तरविडा सर्वेदिव नीवीच्या। अमगीदयविडा तु वैषावैनीयोध्या द्वाह। तेन जीमुतवाहनप्रभृतीनां मते सूर्योदयाननारदशमीविडेकादशीं पिपत्यच्य शुडां हादशीमुपोष्य वयोदश्यां पारणसिति वर्त्तुलार्थः। तथाच कालनिर्णये स्पर्तत । अतिवेधसहावेधा ये वेधास्तियिषु स्मृताः। सर्वेऽप्यवेधाविन्नेयावेधः सूर्य्योदये सति। एवच्च सूर्योदयकालीनवेधः सर्ज्ववा त्याच्यः। अक्गोदयवेधे तु प्रतिप्रसवसन्वात् क्वचिद्या चलिमिति। गौड़ीयानां विशेषतीदेशाचाराहुद्योपरिविद्या सर्वधा नोपोध्या। तथाच सरीचि:। येषु स्थानेषु यक्कीचं धक्षीचारश याह्य:। तच तब्लावमन्येत धक्मस्तचैव ताहम:। येष देशीष ये देवा येषु स्थानेषु ये दिजा: येषु स्थानेषु यत्तीयं यातु यत्नैव सृत्तिका। सैवतव प्रयूच्या स्थात्तेषु क्वत्यं विधीयते। राजमार्त्तगढे भोज-देवः। देशाच।रस्तावदादी नियोज्योदेशे देशे या स्थितिः सैव कार्था। लोकहिष्टं पिग्डितानाचरन्ति शास्त्रज्ञी-ऽतोलोकमार्गेण यायात्। अतएव यत्र न्यायागमयोर्न निश्चायकता तत्रान्छेरसर्जन्नस्य धर्मतत्त्वसाचात्-

मोहाख्यासुरसम्बन्धिनीत्यर्थः। प्रविधिनी। सार्ददण्डदये दशमीयुतैका-दशी तत्रैवित्येवकारेण उदयात् उदयपर्यम्तस्यायिन्याः संकीर्णायाच्यावितः नोपोष्येत्याहदति पूर्वीक माधवाचार्य्य दत्यनेनास्यान्वयः। तिथिषु एकादशीषु ये विधा सहाविधायते सर्वे अविधाः क्षचिददुष्टाः सूर्योदये- कारासस्मवाच्छिष्टाचारं प्रमाणमाह हैमाद्रिनिवसे व्यास: (७०)।

तर्कीऽप्रतिष्ठः श्रुतयोविभिन्ना नासी सुनिर्यस्य मतं न सिन्नं। धकीस तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनी-येन गतः स पत्याः। स्कान्हे, येषां विश्वेश्वरे विषाी शिव सितानीविद्यते। न तेषां वचनं दाहंग्र धन्मिनिर्णय सिइये। कालसाधवीये, यिख्यन् देशे यिख्यन् काले येषु भिष्टेषु नीरागदेषस्य खस्य प्रामाण्यातिशयवुधिस्तदा ताहणसाचारस मुख्यविमिति। एतद्भिप्रेत्य गुरोः शिष्यान्यासने तैतिरीयाः समामनन्ति। अय ते यदि धर्मविचिकित्सा हत्तिविचिकित्सा वा स्याद्ये तव ब्राह्मणाः सम्बग्द्धिनोयुक्ता त्रायुक्ता त्रक्षाधर्म-कामाः खर्यथा ते तव वर्त्तरन् तथा तव वर्त्तथा-द्ति। सन्यग्दर्शिनः शाखतत्पराः युक्ता युक्तिकुशलाः षायुक्ता स्तदर्थानुष्ठाननिरताः चम्चा क्रीधादिवर्ज्जिताः धर्मकामा जीवन्य ज्ञवत् कर्माखोदासीन्य मकुर्ज्ञाणा-दूतार्थः। अतोदशसीविज्ञानिन्दावचनान्यविश्वषाइशस्य-निर्मतायासि । यथा स्कन्दपुराणं, दशस्यैकादशौ

सित यो वेध: स वेध: सर्वदा दुष्ट इत्थर्ध: । ये देवा उपास्थाइति शिष: । दिजा: उत्तमत्वेन प्रसिद्धा यत्तीयं शुद्धत्वेन शिष्टेर्व्यविद्ध्यमाणं यत्रसेवस्यत्तिकेत्यन्वयः । तत्तत्कक्षीण नियोज्यसानाः । तत्रदेशे सैव-देवादिविततिः प्रयोक्तव्या उपादेयास्तेषु देवादिषु कृत्यं पूजा-दिकं (७०)।

अतृषे: ऋषिभिनस्य ऋषिर्ज्ञानार्थः तेनासर्वज्ञस्येत्यर्थः। अप्रतिष्ठः अनवस्थादुःस्यः तदुतं यत्नेनापादितोऽप्यर्थः कुम्पनैरनुमात्वभिः। अभि- विद्या गान्धारी तामुपोषिता। तह्याः पुच्चतं नष्टं तह्मात्तां परिवर्जयेत्। तथा, सुरायाविन्दुना स्पृष्टं यया गाङ्गं जलं त्यजित्। तथा चैकादभीं रम्यां दशस्या दृषितां त्यजित्। ये कारयन्ति कुर्व्वन्ति दशस्येकादभींयुतां। चालोक्य तन्मुखं व्रह्मन् सूर्यः-दर्भनमाचरेत्। येः क्षता दशमीविद्या जड्वाक्यात्तु-मानवैः। तें गता नरकं घोरं युगानामेकविंश्यतिं। वृह्मवैवर्त्तः। दशमीभिषसंयुक्तां यः करोति विमुद्धीः। एकादशीफलं तस्य नश्येद्वादशवार्षिकं (०१)।

तच संचेपः। पारणदिन हादशीलाभे सर्वणव पूर्णां त्यत्वा खगडामुपवसेत्। तदलाभे गृही पूर्वां तदन्यः परां विधवापि। यदा तु पूर्व्वदिने दशस्या उत्तरिने हादश्या युतैकादशी तदोत्तरामुपोध्य हादश्यां

युक्ततरेरन्थेरन्थये वोपपद्यते, इति । मतंदर्भनं संहिता न्यायादिशास्तं तदिप विभिन्नमितिभेषः क्वित् परस्परविषद्यार्थक्षिमितितदर्थः । निहितं गुहायां गुहायां निहितमिव उच्छन-प्रच्छन-स्रुतिषु स्थितमित्यर्थः । शिवे शिवेच, शिष्टेषु त्राचारेषु प्रामाण्यातिश्रयवृद्धः प्रमाणिसद्दवाव-धारणं वहुभिग्र्य होतत्वादिनेति शेषः । ताद्यस्याचारस्थेत्यभेदान्वयः । यद्याश्रिष्टेषु भ्रमप्रमादोदिश्र्न्यतया प्रधितेषु प्रामाण्यं प्रमादत्वं कर्त्तरि खुर्। प्रमात्रयत्वं प्रमा च शास्त्रतत्वादिविषयिका । ताद्यस्य जनस्य य साचारस्तस्थेत्यर्थः । ते तव विचिकित्सा संभयः स्थादिति तदित्भेषः यत्र यस्मिन काले देशेचेत्यर्थः । जीवन्मुक्तवदितिव्यतिर्वे दृष्टान्तः । तथाच जीवस्नुक्ता यथोदासीनास्त्रयान्त्वर्थः । दशस्यिनर्कृत्वाया-मिप (७१)।

अने दमवधेयं। उपोध्य हेतिथीतचेति हेतिथी एकादभी हादशी उभययुक्तदिनिमितियावत् एकादशी हादशी च तनसिहितोहिरः। .पारणं कुर्यात्। परदिने हाद्यानिर्गमे चयोद्याम पीति। यदा सूर्योदयानन्तरं दशसीयुतैकादशी अथव परदिने न नि:सरित तदा तां विचाय दादगीसुपवसेत्। यदा तु सूर्योदयात् प्राक्कालीनदशमीविडैकादशी परदिने च न नि:सरित तदा तासुपवसित्। यदा तु तथाविधा सती परदिनेऽपि नि:सरित तत्परदिने च हादशी तदा तां विचाय खग्डास्योध्य हादगां पारयेत्। यदा तूभयदिने ति इधैकाद् भी परदिने च न दार्गी तदा षष्टिदग्डात्मिकां विद्यास्पीय परदिने हादग्राः प्रयमपादम्तीर्यं पारयेत् वैवावस्तत्रापि श्रुक्त-पची पराम् नीव्य चयोदश्यां पारयेदिति। सर्व्य स्था क्षणीकाद्यां वैषावानां सप्ताणां ग्रहस्थानामप्पवासी-नियः। ब्राह्मणस्य तु विशेषतीनियः। वैषावैतरेषां तादृशाणां हरिश्यनमध्यवर्त्तिनीषु क्षणीकादशीष्पवासी-निखः। अपुचवतां गृहिणानु सर्वाखेव निखाधिकारः। काम्योपवासे तु अविशेषिणैव सर्वेषामधिकारः। निर्छाप-वासे रविशुक्रादिदीषोनास्ति। अष्टाव्हाधिकापूर्णाशीति-वत्सरी मानवी नियाधिकारी। विधवायास्तु सर्जा-

उपोथरजनीमेकां व्रह्महत्यां व्यपोहतीति विष्णुप्राणवचनेकवाक्यत्वात् अत्र विश्वप्रोणनतत्परद्दति अवणात् हादम्यां पारणालामे पूर्णेव परिग्यस्ते दितवचनं पूर्व्वामुपवसेद्ग्यहीति वचनञ्चावैष्णवपरं दिस्पृणेका-दणी यत्र तत्र सित्तिहितीहरिः। तामेवोपवसेक्यर्चः सकामोविष्णुतत्-परद्दति कूर्मापुराणवचनस्यापि हेतिथी एकादभीहादस्थीस्प्रभतः यिहनं तिहस्यक् तिहन्हित्तरेकादभीतियावत्। यथा त्रिस्पृक् मञ्देन तिथिवय-युक्तदिनहित्तरेकादभी लभ्यते तथाच पूर्णापरदिवसीयखण्डतिथिपरत्वं

स्वेव नित्राधिकारः। यत्र मलमासादिदोषीनास्ति,

तया पद्मपुराणे। दादशी-सिञ्जितायाच्या सर्व्वत्रकादशीतिथः। दादशी च वयोद्यां विद्यते यद्वा न विति। तथा, एकाद्यीकलायेका हादशी यत लुप्यते। तत्रोपवास हुर्व्वीत निष्कामी विश्वांतत्पर इति हेमाद्रि-ध्तवचनञ्च। नचैतद्वचनं पूर्व्वदिने एकादश्या दशशीविद्यत्वे तत्पर-मिति वाचा तसावपरत्वे प्रसाणाभावात् हवी त्याच्या वेधहीनेत्यादि वचनाच एवं वैषावानां एकादशीदादध्योस्तु त्यत्वेन तद्भययुक्तदिनस्य कदाचिदपि न त्याच्यता। यथाचैलादशी राजन् हादशीच तथारुणा-मित्यादिवचनात्। पूर्व्वापरदिवसीवैकादशीयुक्तद्वादश्याउनीलनीलेन विस्प्रभावेन वा वैषावानामावश्यकाद्य तत्रोसीलनीलवणं प्राग्दर्शितं। तिस्प्रशालचणञ्च यया वैष्णवास्ति पद्मपुराणे जाह्नवीं प्रति भगवद्माक्यं। एकादशी दादशीच राविशिषे वयोदशी। विस्पृशा सा हि विज्ञेया दममीसंयुता नहीति। दशशीसंयुता तिस्य मा तत्वैव जाह्ववीपश्चे यथा, दगस्येकादशी भद्रा दिनैकस्तिन् यदाअवेत्। त्रिस्पृशा संभवेद्देव कान्या वा वद मे प्रभो। अब माधवस्थीतरं। आस्रीविस्पृशा देवि सा त्वया परिकीर्तिता। वर्ज्जनीया प्रयक्षेत्र यथा शूद्रीपतिर्दिजः। तथा तहैव वृद्धी त्याच्या विवहीना खवणादियुता तथा। उपीष्या दादशी भद्री नोपोष्यैकादभी मता। पचल्डी विभिषेण सन्देहे समुपस्थिते। ममाज्ञया पकर्तव्यं दादशीवलभा सम । समाज्ञयाप्रकर्त्तव्यं महिनं मत्परायणैः। महिनं तिं जानीयाद्यभीवेधवर्ज्जितिमिति। कूर्मपुराणेच। एकादशी कलाप्येका परतोऽपि न वर्डते। ग्रहिभिः पुचविद्वय सैवोपोया सदा तिथिरिति। परतः परिविधिद्वीदशीत्यर्थः सैव कलारूपैव। अत गरिह-पदं वैशावपरं हडी एकादशीमावस्य वा पचहडी तदुभयहडी। पचस्य पदान्तदिनपौर्णमास्यमावास्यान्यतरतियेव दाविति हेमादिहरिभक्तिवि-लासादय:। स्कान्दे। एकादशी ऋषीणाच दादशी चक्रपाणिन:। तत्कयं दादशीनाम नोपोया क्रियते जनै:। हेमाद्री पद्मपुराणं। वहुवाक्यविरोधेन सन्देहोजायते यदा। हादशीतु तदायाह्या त्रयो-दथ्यान्तु पारणं। तया विवादेषु च सर्वेषु द्वादखां समुपोषणं। पारणञ्च वयोदण्यामाच्यें मामकी सुने। एवच कुर्यादलामे संयुक्तेति यदुक्तं

यथा, च्योति:पराशरः, अनादि-देवतार्ज्ञासु काल-

तदपि वैश्ववतरपरं तथाच भविष्ये। इसमी श्रेषसंयुक्ती यदिस्यादर्गी-दय:। वैण्विन न कर्त्तव्यं तिहनैकादभीवतिमिति। एकादशीसपवसेदि-त्यादि सर्व्वसाधारणव्यवस्थां निक्ष्य कुट्यादलाभ इत्यादिकं वैष्ण्वतरपरं वचनमुक्का कूर्मापुराणे वैष्णवपरतया दिस्पृशैकादशीयवेत्यादिकमुक्तं तथा अवैषावेन परदिने एकादशालाभेऽ क्योदयविद्योपोधोत्युक्तं यदि चैकादशी परदिने नि:सरित तत्परदिने च दादशी न नि:सरित ततापिवै श्विन विद्यायाचा विद्यायेकाटमी याच्यापरतोहादमी न चेदित्यादिवचनात् विडाऽर्णोदयविडा यदि च परिदने डादशी नि:सरित तदाप्यवैष्णवेन क्षाप्यचेऽक्णोदयविदेवीपोष्या मुक्कपचे परोपोष्या न च कष्णपचेऽवैष्णव-ग्टिहिणासुपवासनिषेधात् कथमेतिदितिवाचं शयनी वोधनी सध्ये तेषा-मप्यिषकारादिति। एकादशीं दशायुक्तां वर्डमाने विवर्जयेत्। पच-हानीस्थित सोमेलङ्गयेद्शमीयुतामितिवचनात्। लङ्गयेत् उपवसेत् दशमीयुतामरूणोदयविडां स्योदयविडाच सर्वीरेव सर्वदा त्याच्येति वैशावानामर्गोदयविद्यापि सर्वदा त्याज्येति। यदाच सूर्योदय प्राङ्मुहूर्तदयान्विताऽहोराव्यापिनी परदिने न निःसर्गत हादश्यपि न तत् परिदने तत्रैव केवलैकादशी वैषावेनीपोष्या तथाऽवैषावेन तादशी संयुक्ता पौत्यभिप्रायेणोक्तं एकादशीसुपवसेदिति। यदिचैकादशी संपूर्णा न नि:सरति दादशीच तत्परदिने नि:सरति तदा वैणावेन गुडा दादशीयाह्या, तथोतां, संपूर्णेकादशी यत दादशी च तदाभवेत् तयोदश्यां मुद्दूर्तार्ड बञ्जली साहरे: प्रिया। श्रुक्तपचे तथाकणो यदाभवति यञ्जली। एकादशीदिने भुक्ता हादम्यां कारयेद्वतिमिति। संपूर्णा संपूर्णापीत्यर्थः तेन पूर्व्वदिने दशसीविषैकादशी परदिने गुडदादशी तत्परदिने च नि:सरति तदापि वञ्जलीति यदिचाविषैका-दशी रात्री दादशी भूला तत्परदिने षष्टिदण्डात्मिका तत्परदिनैच निःसरित तदादादशीमियत्वादेकाद्युपोष्येति विशारहस्यवचन्च पूर्णा-खण्डास्त्रलाभिप्रायेण। विणारहस्यकर्त्रतृष्टिषिलेपि वीधायनसम्वादि-लेन प्रामाचिकत्यमास्येयं। वैच्यवासृतेजयादिदादशीमाहात्मं यथा। यस्याष्टी किखवासीतु कर्माणा मनसा गिरा। इदयात्रापसर्पन्ति दोषो न विद्यते। नित्रास्वभ्यासयोगेन तथैवै-कादशीव्रते (७२)।

यय दशमी शियमाः । सूरिसन्तोषे । कांखं मांसं
मस्रच चणकं कोरदूषकं । शाकं मधु पराद्मच
व्यजेदुपवसन् स्त्रियं । चनोपवसिद्गिति तिहने भोजनासम्भवात् सामी व्यात् पूर्व्वापरदिनयोग्रेहणं । स्मृतिः,
शाकं मांसं सस्रच पुनर्भोजनमेषुने । द्यूत मह्यस्व-

धन्योऽसी वैशावः प्रिये। जया जयं प्रकुर्ते विजयाच महाजया। जयन्ती नाक्य च्छ बून् पापं पापप्रणाणिकी। उन्हीलनी हरित्पापं जन्मकोटिशतोद्ववं। यच्छते वञ्जलौ भीचं त्रिस्प्रशापचवर्षिनी। जयाच विजयाचैव जयन्ती पापनाशिनी। सहापुर्णप्रदाह्येताः प्रात्राय-कौर्त्तिताः। उन्नीलनी वञ्जलीच विस्पृशा पचवर्षिनी। वाञ्कितार्थ-पदा नित्यं प्रातक्त्यायकी तिता:। तथा, यस्य प्राणप्रिया नित्यं हादम्यी-उष्टी कालीयुगे। काल्पान्तं स्विपितृणान्तु दत्तं तेन हरे:पदं। येन जानन्ति सर्वज्ञ हादम्यष्टीकलीयुगे। कल्यान्तं स्विपतृणान्तु दत्तं तैर्नारकं पदिसिति भगवतीं प्रति रुद्रवाक्यं। तदैवान्यत्र, प्रीताः पितामहास्ते षां । यावदाहतसंप्लवं। उम्मीलनीवञ्जलीच यैः कतापच-वर्षिनी। त्रिस्पृशाच विशेषेण जयन्ती विजया जया। पापन्नी दैत्य-आर्दू स ये: कता व्रतसंयुता। अभीष्टा दादशी होषा प्राणदािपगरीयसी। ये न कुर्व्वन्ति पापिष्ठाः कल्यान्तं नारका हि ते। दशमीविद्वापरवचनानि गुक्र-मायाक्रतान्यासुराणि यथा वैणावास्त्रते स्कन्दपुराणे। येषां कली न तुष्टोऽहंसग्रत्यं वासरं सम। ते कुर्वन्ति न सन्देह: ग्रक्रमाया-विमो-हिताः। तत्रैवान्यतः। एकादशीं यदा विद्धां कुर्ते पद्मलोचने। मन्येऽसी कलिकालेतु दैत्यपचिववर्दनः (७२)।

श्रय दशमी नियमाइति। कांस्यं कांसपात्रभोजनं प्रवासं प्रकर्षण-वासयति सुगन्ध्यनुलेपनानि यद्वा प्रकर्षण वसत्यस्मिन् प्रक्षष्ट श्यनी-यादि सुख्वासंवा। सर्वयेव भगवत्साधनानुष्ठानपरेण भवितव्यमिति- पानश्च दशस्यां वैषावस्ताजित्। कांस्यं सांसं सुरां चौद्रं लोभं वितयसाषणं। व्यायासञ्च व्यवायञ्च दिवास्त्रप्तं तयाञ्चनं। तिलिपष्टं ससूरञ्च दशस्यां वर्जन्यत् पुमान्। दशमासेकासकञ्च जुर्जीत नियतिन्द्रियः। त्राचमा दन्तकाष्ठञ्च खादेत तदनन्तरं। पूर्व्वं हिर्दिनाक्षोक्ताः सेवध्वं चैकांगिजनं। अवनीपृष्ठश्रयनाः स्त्रियाः सङ्गविवर्जिताः। सेवध्वं देवदेविधं पुराणं पुरुषोत्तमं। सक्षद्रोजनसंगुक्ता द्वाद्रयाञ्च सविष्यय। यत्र सक्षद्रोजनपदं, सुनिधिर्दिरशनं प्रोक्तं विप्राणां सर्व्यवासिनां निर्धं। चहिन च तथा तसिद्यां सार्वप्रक्रियामान्तिति च्छादोगपरिश्रिष्टोक्तसोजन-दयस्थेकमाचाचरणं नतु सक्षद्रेव द्रवस्य गलाधःकरणं विष्ठतसेतत् प्रायश्चित्त तच्चे। यत्र वैद्याव्याद्रणं तस्प्राति-श्यदोष्ठार्थं (७३)।

अधैकादगीनियमाः। प्रातकत्वायैकाद्यां वाच्या-

भावः। तिलिपष्टिमित्यविश्वित्यविश्वितिक्षित् पाठः। एक भक्तं एक भोजनं पूर्व्योक्तस्मृतिवचने पुनभीजनिविधात् सायमाद्यन्तयोरङ्गो रित्युक्तोपवासाङ्गत्वाच न तु दिनादिवसयिऽतीते भुज्यतेनियमेन यत्। एकभक्तसिति प्रोक्तं राचीतव्यकदाचनित रङ्गान्दवचनोक्तेकभक्तपरिमित्त सम्वत्सरप्रदीपव्याख्यानमादरणीयं। पावचनिऽि सामान्यतएकभीजनिवधानात् एकभोजनादिपदस्य पारिभाविज्ञत्वाभावात् अत्रप्य निर्धेन्तादस्युपवासे भोजनदय निर्वत्तिक्तेति। एतदेकभोजनस्य भोजनचतुष्टय निर्वत्तिक्ष्योपवासाङ्गत्वाभिप्रायेषोक्तत्वादिति (०३)।

ययेकादशी-नियमादति, कष्णन्तेदति शेष:। जपन्जनःस्नातः सनुप-विष्टः कष्णस्य नामसत्तवाराग् प्रकीर्तयेत् तथान्ततप्रस्त सनादिषु जातेषु भ्यन्तरभीचं कुर्यात्। तत्प्रकारस्ताः उपविद्योजपन् स्नातः चुतप्रस्विनतादिषु। पृजायां नाम क्षणस्य सप्तवारान् प्रकीर्त्तयेत्। पाषिण्डिनोविकक्षस्याद्वालपे-चैव नास्तिकान्। संभाष्यः तान् भ्राचिपदं चिन्तयेद-च्युतं वुधः। दृदञ्चोदाहरेत् सम्यक् क्रत्वा तत्प्रवणं सनः। भरीरमनःकरणोवजातं वाह्यञ्च विष्णुभगवान-भेषं भमं नयत्वस्तु समेह भक्षं योगादनन्ते हृदि सद्भिविष्टे। अन्तःभुद्धिं वहः भुद्धिं भुद्धोधक्षमयो-ज्युतः। स करोतु समैतिस्मिन् भुचिरवास्मि सर्वदा।

तयापूजायां कर्त्तव्यायां ऋणास्य नाम सप्तवारान् प्रकीर्त्तयेदित्यनु-षङ्गेणान्वयः। पाषण्डिनः वेदादिशास्त्रविहर्म्खान् नास्तिकान् धर्मा-कत्याषि नास्तीति वृद्धीन्। ग्रचि ग्रीधकंपदं नामोचारणखरूपच यस्य तं। तत्प्रवणं अच्तनिविष्टं। वाह्यचेति अभीचिमितिशेषः वाह्यं पाषण्डालापादिनिवन्धनं अग्रेषो विखाला ग्रसं नाग्रं। ग्रमी दृष्टं योगात् क अयोगात् हृदिसंनिविष्टे सित। एतदिति सन्त्रवयमिति-श्रीतः। उपीषितिरित्युपलच्यणं उपीषितैः चारक्षीपवासैः उपलच्यत्वं स्फुटयति नियसखैरिति। पाषण्डादीन् संभाष्येल्पलचणं नियमान्तर भङ्गेऽपीदं पाठ्यं। ननु सन्त्रप्रवाशितफलस्यावस्यंभावित्वात् कयं सुसुचीः कर्तव्यतित्यत आह तथाहीति। एतत्साधनकर्मणः वाह्याभ्यन्तरीण भौचदारोपवासादिसाधनमन्त्रपाठरूपकर्मण स्तत्साधनताया आनुषङ्गिक कर्मसाधनतायाः सिंडिर्निश्ययः। लिङ्गन्तु न तत्रसाचात् प्रमाणमिति। अत्र कर्भणः फलेच्छावोधकमन्त्रपाठत्वं न सन्त्रपाठस्य फलसाधनता-साधकं यदा कदाचित् पठिते व्यभिचारात्। वैदिकतादृशमन्त्रपाटल-सिं न फलसाधनताप्रसापकं वैदिकक्रियायाः विधिवोधितस्यैवाली-किकफलस्य जनकविनयसात् तादृशसन्त्रपाठे विधिना तत्फलजनकवा-वोधने लिङ्गेन तत्फलजनकत्वस्य वोधियतुमग्रकात् तत्फलजनक-लेन विधिवोधितलाभाव वोधस्य वाधकलादितिभावः। किन्द्रेतिति

वाद्योपजातिन्यानृौद्रंश्य भगवानजः। श्रमं नयत्वनन्तात्मा विष्णुश्चेतिस संस्थितः। एतत् सन्भाष्य जप्तयं
पाषण्डादौनुवीषितैः। उपोषितैर्नियमस्थितैः। एते
च मन्ताः शक्षेप्पलकामनारिहतेनाि मुमुचुणा जप्तयाः।
श्रविशेषेण विधानात्। यथा योऽस्थान् दृष्टि यञ्चवयं दिष्पः,
दृति मन्तोद्देषाभावेऽिष स्थादिति निर्णीतं। तथाहि
मन्तस्य शर्मसाधनताप्रकाशसामर्थ्यलचणिङ्गं नैवतत्साधनकर्मणस्तत्साधनताप्रकाशसामर्थ्यलचणिङ्गं नैवतत्साधनकर्मणस्तत्साधनताप्रकाशसामर्थ्यलचणिङ्गं नैवतत्साधनकर्मणस्तत्साधनतासिद्धव्यंक्तया लिङ्गन्तु न तव् साचात्प्रमाणं किन्त्वे तत्कामद्रदं कुर्व्यादितिश्रयन्
मापकतयेव, तव त्विष्टसाधनतापरेण विधिप्रस्वयेनेष्टमेव
शर्म तद्वावा मिति प्रतिपादनादिनष्टस्य कुर्त्योभाव्यता।
यथा स्वर्गादिसाधनस्याप्यग्निहोचादेर्मुमुचुं प्रति न तज्जन
कत्वमिति। ततश्च प्रातः सङ्गल्यं कुर्व्यात् तदिधानं
वराहगुराणे। यहीत्वाेड्गब्दरं पाचं वारिपूर्णमुदङ्गखः।
उपवासन्तु यज्जीयायदा वार्येव धारयेत्। एकादश्यां

ययं मन्त्र एतत्फलसाधनतया विधिवोधित एतत्फलसाधनताप्रकाशक-वैदिकमन्त्र वादित्यनुमानद्वारा लिङ्गं तत्प्रमापकसित्यर्थः । यो यत्फल-साधनता-प्रकाशकवैदिकमन्त्रः स तत्फलसाधनत्रा वेदवोधितः । यया शारीरत्यादिरयं मन्त्रः शीचसाधनताप्रकाशकः शीचसाधनत्नेन विधिवोधितयेति सामान्यतो व्याप्तिसत्त्वादितिभावः । श्रत्र तादृश्विधिं प्रदर्शयति एतत्काम एतत्कुर्यादितीति दति दत्यस्य दृष्टमेव दृच्छा विषयीभूतमेव एतद्भाव्यमेतत्कर्मणा भाव्यमृत्पाद्यमितिप्रतिपादनात् श्रानष्टस्थानीस्थितस्य न तज्जनकतित । तथा च कामनाविषयस्थैव तत्तत्कर्मणा जननात् मुमुचोः कामनाविरहण् न तत्कर्मणा तत्फल-मिति । न च श्रमं नयत्वस्तु ममेह श्रमीति मन्त्रस्य शर्मप्रार्थना- निराहारीभूत्या चैवापरेऽहिन। भोन्नेऽहं पुण्डरीकान्न

गरणं में भवाच्युत, द्रत्युचार्ध्य ततीविद्यान् पुष्पाञ्चिलमयापेयेत्। द्रत्युचार्ध्यमधिकः विश्वानोक्तं ततस्तत्पानस्यजलः किञ्चित् पिवेत् आचमनजलपानवद्यान
दूषणः। यथा स्कान्दे। राविं नयेत्ततः पश्चात्
प्रातःस्वायी समाहितः। उपवासत्तु सङ्कल्पा मन्तपूतं
जलं पिवेत्। मन्त्रश्तु कात्यायनेनीक्तः कालमाधवीये।
अष्टाचरेण मन्त्रेण चिर्जपेनाभिमन्दितः। उपवासफलं
प्रेप्तः पिवेत् पानगतं जलं। अष्टाचरेण नारायणमन्त्रेण। ततः प्रार्थयेत्। द्रदं व्रतं मया देव
ग्रहीतं पुरतस्तव। निर्विद्यां सिहिमाप्रीतं त्वत्पसादाज्जनाईन। तती विष्णुपूजनं। तथाच ब्रह्मपुराणं।
एकादश्यामुभे पन्ने निराहारः समाहितः। स्नात्वा

रुपलेन कयं प्रसेंच्छारहितमुमुचीः पाटइतिवाचं इच्छाप्रत्यचं प्रत्येव इच्छायाः हेतुत्वात् इच्छांविनापि यथाकथिइदिच्छाज्ञानेन इच्छा वीधकप्रव्दप्रयोगस्य तद्धीनप्राव्दवीधस्य च सम्भवात्। फलेच्छां विनापि ताद्यफलेच्छावोधकप्रस्त्रस्य वेदवोधितिक्रयाङ्गतयैव सुमुच्चुणा पाटः क्रियते। न चाकाप्रितफलस्याजनकत्वेन तत्तत् कर्माण क्यं सुमुचोः प्रवित्तित्वाच्यं तमेवं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविद्धान्त यद्भेनेत्यादि श्रुत्या तत्तत्पलकामनां विना क्षत्वेदिकक्रियामात्रस्य मोच-साधनपरमेखरतत्त्वज्ञानजननश्रवणात्। श्रव च मन्त्रे श्रनन्ते हृदि सं निविष्टे इत्यन्तेन भगवित मनोयोगस्यापि साध्यतयावगमात्तदिच्छयापि प्रवृत्तिसम्भवात् भगवित मनोयोगस्य च मुमुचोरपीष्टत्वादितिदिक्। प्रातिरित प्रातःसन्थ्यां ततः क्रत्वा संकत्यं वुध श्राचरेत्। श्रोडु स्वरं तास्व-मयं। यद्वेति पात्रासावे भोच्चेऽइमिति भोजनं पारण्क्रपं तच्च यत् किच्चिळ्ललपानेनापि भवित श्र्वणं विण्यवे। तत्पात्वे जलिमित

सम्यगिधानेन धीतवासाजितेन्द्रियः। संपूज्य विधि-विद्यां श्रद्धया सुसमाहितः। पुष्पेर्गश्चेस्तया धूपैदीं-पैनेविद्यकेःपरेः। उपचारेर्बहिवधेर्जपहोमप्रदक्षिणेः स्ताचे-र्नानाविधेर्द्रश्चे गीतवाद्यमनाहरेः। दण्डवत्प्रणिपातेश्च जयगब्दै स्तयोत्तमेः। संपूज्य विधिवद्राची क्रत्वा चैव प्रजागरं। कथाद्या गीतिकाविष्णोर्गायन् विष्णुपरायणः। याति विष्णोः परं स्थानं नरीनास्तप्रच संशयः। उपचारैर्व्व हविधेः षट्विं शट्पचारादिशिः (७४)।

त्रय विष्णुपूजनविधिः। यसदिग्नः। चिन्धयस्या-दितीयस्य निष्कलस्या शरीरिणः। उपासकानां कार्व्यायं द्रह्मणोक्षपकल्पना। क्षपस्थानां देवतानां पुंस्त्रां शादिक-कल्पना। तथात्राधिकारिणमाह विष्णुपुराणं। वर्णा-त्रयमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्। विष्णुराराध्यते पन्या नान्यत्तत्तोषकारणं। मत्स्यपुराणं। त्रागियं भास्करादिक्छे इनमिक्छे इताशनात्। न्नानञ्च शङ्करा-

नारायणमन्त्रेण ॐ नमी नारायणायित मन्त्रेण। सिद्धिं संपूर्णतां। द्रश्रेशामरव्यजनादिभिः। तथा सम्बत्सरप्रदीपे। श्रीहरेर्जागरे पुख्ये ये न नृत्यन्ति मानवाः। तेऽन्यत्र जन्मनि नरा जायन्ते पङ्गवः सदा। ये न गायन्ति देवस्य जागरे वनमालिनः। तेन कर्याविपाक्षेन सूक्तलं यान्ति ते नरा इति (७४)।

चित्रयस्य ज्ञानस्रक्षपस्य, चितियस्य सजातीयविजातीयितिये-रिहतस्य, निष्कसस्य निर्मुणस्य। कृपं भौरं तस्य कल्पना वेद इति भेषः। चंगो विभेदः चादिना चङ्गदेवता भस्तायुधादिपरिग्रहः। यदा विकायस्य नित्यसर्चविषयकज्ञानवतः प्राचूर्ये सयट्प्रत्ययविधानात् निष्कसस्य क्रियारिहतस्य चयवा निष्कसस्य संख्यातीतगुणस्य कस्तृक

दिच्छेन्मुतिमिच्छेज्ञनाईनात्। अपि खात् स कुलेऽस्मानं सर्वभावेन योहरिं। प्रययी ग्रगं विष्णं प्रजींशं सधु-मूदनं। त्रासनाभ्यञ्जने तहदुहर्त्तननिकचणे। सस्मा-र्ज्जनं सर्पिरादिकापनावाहने तथा। पाद्यावीचसनीयञ्च सानीयमध्पर्काकौ । पुनराचमनीयञ्च वस्त्रयज्ञीपवीतके । **यलङारोग सपुष्ये धूपदीयी तयैव च। ताम्ब्लादिक-**नैवेदां पुष्पमाला तथेव च। अनुलेपश्च शया च चामर-व्यजनन्तया। चादर्गदर्शन चैव नमस्कारोऽय नर्तनं। गौतवादी च दानानि स्तुतिहोसप्रदित्तगां। दन्तकाष्ठ-पदानच्च ततोदेवविसर्ज्ञनं। उपचाराद्रमे ज्ञेयाः षट्-विंशत् सुरपूजने। वाद्यं विशेषयति योगिनीतन्ते, पूजाकाले सदा विष्णोर्डिगिडमं न प्रवादयेत्। देवस्य खलानुत्पादनाहानपदं गीगां पूजादिवागादित बर्मा प्राप्तार्थं। षोड्गोपचारादीनाह प्रपञ्चसारे, आसनं स्वागतं पाद्यसर्वमाचमनीयकं। सधुपर्काचमनस्नान-वसनाभरगानि च। सुगन्धिसुमनोधूपदीपनैवैद्यवन्दनं। प्रयोजयेद च नायाम् पचारां ख षोड्ग । अर्घपाद्याचमनक मध्पकि चमनान्यपि। गसादयोनैवेद्यान्तां उपचारादश-क्रमात्। गन्धादयोनैविद्यान्ताः पूजाः पञ्चोपचारिकाः। उपचारैर्ययाशक्ति देवतामन्व हं यर्जत्। ब्रह्मपुराणे,

संख्याने दत्यत्रगासनात्। अगरीरिणो देहदेहिविभागरहितस्य नित्या-चिन्तारगरीरात्मकस्येति यावत्। रूपकल्पना रूपाविष्करणं। अन्यत् आराधनादन्यन्, अभ्यञ्जनसभ्यङ्गः, संमार्ज्ञनं स्ल्यवस्त्रेण। सर्पिरादीति पञ्चासतार्थकं। स्नानीयमध्यकंती सधूपर्वस्नाने। होसस्योपचारत्वं

श्रोद्वारादिसमायुक्तं नमस्कारान्तकीर्तितं। खनाम सर्वसत्वानां सन्बद्धि सिघीयते। अनेनैव विधानेन गखपुषो निवेद्येत्। गखपुष्यसाचं पञ्चीपचारासभवे। मन्त्रिणिये, सन्त्रपाभिन देवेशि देवता नीयते ध्वं। साधकस्य विना कार्धिसिहिं क्रत्या न गच्छति। ब्रह्म-प्राणं, देवानां प्रतिमा यव घृताभ्यक्षचमा भवेत्। पलानि तधी देयानि शहया पञ्चविंगतिः। अष्टोत्तर-शतवलं साने देयञ्च सर्वदा। चन, पञ्चलपालको-माषले सुवर्णस्तु षोडग। पलं सुवर्णाश्चलारद्रित सन्त्रमप्रतिकाधिकाली किक्रमाष्ट्रयाधिकतीलक न्येग पलं भवति। तत्पञ्चविंग्या अष्टरित्ताधिकालीकिक-माषद्याधिक बाशीतितीलकानि भवन्ति। एवं तथा-विधाष्टीतरपल्यतेन लौकिकषष्ट्राधिकयत्वयतोलकानि भवन्ति। उदर्तननिष्वचे आह नरसिंहपुराणं, यवगोध्यजैभूर्गें सहस्यीषोन वारिगा। प्रचाला देव-देवेशं वाक्षणं लोकमाध्यात्। पादपीठन्तु योदया-हिलुपनैनिधर्षयेत्। उष्णास्तुना च प्रचाल्य सर्ज्यापैः प्रमुच्यते। शारदायां। गश्यप्रणाचतयवकुशायफल-सर्वपै:। सद्बैं: सर्वदेवानामध्यमतद्दीरितं। याह-रन्तीत्यपक्रम्य कात्यायनः। सधुपक्षं दिधिसधृष्टतसिष्हितं

ष्टतसमर्पणक्यत्वेन। दन्तकाष्ठप्रदानं नैविद्यदानानन्तरं यथा गीतमीय, नैविद्यजातस्रुष्टत्य स्थानगुद्धं विधाय च। ग्राचमनजनं दद्याद्दन भोधनमेव च। इस्तनेपं ततोदत्वा पुनः पानीयसर्पयेत्। सूत्सवस्र-युगन्दत्वा दंदाच स्वर्णपादुके। पृजास्थानं समानीय रत्नमानां निवे-

कांस्ये कांस्येनित । अविहितमाक्यादितं । होमसङ्खा-माह देवीपुराणं, होमोग्रहाहिपूजायां गतमष्टात्तरं भवेत्। , अष्टाविंशतिरष्टे। वा यथाशक्ति विधीयते। होम द्रव्यमार कात्यायन:, याज्यं द्रव्यमनादेशे जुरोतिष विधी-यते। नरसिंहपुराणं, दन्तकाष्ठस्य वद्यासि समासेन प्रथम्ततां। सर्जे का एकिनः पुष्याः चीरिणस यमस्तिनः। ष्रष्टाङ्गुलैन सानेन तत्प्रसाणसिहोच्यते। कालिका-पुराणं, यद्दीयते च देवे स्थाग सपुष्पादिकां तथा। यर्वपाविस्तीयरिभिषिचा तदुत्मृजित्। णारहायां, तत तत जल द्याद्यचारान्तरान्तरे। नरसिंह-पुराण', स्नाने वस्ने च नैवेदी दद्यादाचमनीयक'। भविष्यदेवीपुराणयोः, शुचिः सुवस्रध्य प्राज्ञोमोनी ध्यानपरायणः। गतकासभयदन्द्रीरागमात्सर्थवर्ज्जितः। शात्मान' पूर्जियत्वा च सुगिधिसितवाससा। सुमुइर्ते यजेदेवान् खकीयासनसंख्यितान्। सुमुर्हेर्ने पूर्वाज्ञादि-काले। स्मृति:, स्त्युकात्ताममुक्षेष सानं द्यगुणं समृतं। क्यै: मतगुणं प्रोतं हैमै: कोटिगुणं समृतं।

दयेत्। दिव्यग्रस्यं ततीदयात्तास्त्रूलं ग्रिष्णंयुतं। स्तीत्रैः स्तुत्वा च विधिवत् कुर्यात् प्रदिव्वणं इिरिप्तित। दानपदं गीणिप्तित, देवोदेण्यक्षत्याग-एवात दानपदार्थः। तत्र स्वस्त्रत्वश्चं ससास्याद्गीणी लज्ञणा। पृजेति देयद्रव्यपूजित्यर्थः, तद्धभ्राप्त्यर्थमिति, देवे दत्त्वा च दानानीत्यादि वचनात्। द्रदश्च परस्त्रत्वहेतुत्याग एव दानपदार्थद्दित सते, परस्त्रत्वी-देश्यक्तत्यागस्य दानपदार्थत्वे सुख्यमेव दानमच वोध्यं। देवाय दयादि-त्यत्र चतुर्थानियात्रप्तर्थः। तस्य च उद्देश्यतास्त्रविषयताया मन्वयः।

एवसर्घेषु नैवेदावलिप्जादिषु क्रमात्। पात्रान्तर-विश्रेषेगा फलचुवीलरीलरं। विभवे सति योमोहान कुर्यादिधिविस्तरं। नैतत् फलमवाद्गीति देवद्रोहः स उचाते। भविष्ये, वखङ्गलविङीनन्तु न पात्रं कार्यत् क्वचित्। स्मृतिः, देवानां दर्भनं पुण्यं दर्भनात् स्पर्भनं वरं। स्पर्भनादर्ज्ञनं श्रेष्ठं घतन्नानमतः परं। अष्टक्षेत्रामन्त्रज्यैः सुप्रभृतैः सुगिधिसः। प्राहुर्गङ्गा-जलै: स्नानं घतसानसमं वुधाः। हयशीर्षे, चित्रस्यं पुगडरीकाचं सविलासं सविभयं। दृष्टा प्रमुचाते पापैर्जन्मकोटिसुसञ्चितैः। तथा, अर्चकस्य त्रो-योगाद् च निष्यातिशायनात्। आभिक्याच विम्बानां देवः सान्निधास्टक्ता। खन्नेऽपि दर्शनं पुग्यवतामेव। तयाच ब्रह्मपुराणे, इन्द्रद्युम्नं प्रति भगवदाक्यं, मद्रभीनमपुर्णानां खप्नेऽपि न हि विद्यते। त्वं पुन-दृंद्भित्तित्वात् प्रयचं दृष्ट्वानिस्। संवत्सरप्रदीपे, केशवार्चा यह यस न तिष्ठति महीयते। तसात्रं नैव भोत्रव्यमभन्तेरण समं स्मृतं। अर्चा शालगाम शिलादिका। नरसिंह पुराणं, तसादेकमनाभूला यावजीवप्रतिज्ञया। पृजनाद्वरसिंहस्य संप्राप्नीत्यभि-

स्वविदेश्यवञ्च स्ववभागितयोद्देश्यवं देवस्य स्ववानुत्पादनमपि स्व-भागितया तद्देशा सभवादिति। विनेति क्ववित्यनेनान्वयस्तेन कार्य-सिदिमज्ञ येव्ययः। पनानीतिष्टतस्येव्यर्थः। तिन्सैर्वपैरिति अव सर्वपाः खेताः। यथा कालिकापुराणे। गन्धपृष्पाच्चतैश्वैव सिंडायैय-स्नैस्त्या। तोयैर्गन्यैर्ययान्यसैर्घं दयानु सिंडये। सिंडायीः खेत-

वाञ्कित'। ब्रह्मपुराणं, ये पूजयन्ति तं देवं शङ्घ-वक्रगदाधरं। वाद्मनः कभीभिः सम्यक् ते यान्ति परमं पदं। विद्याकरधतं, तर्ज्ञनी ह्यसंयुक्ता हमयुक्ता त्वना-मिका। सैव युक्ता तु दर्भेण कार्या विप्रेण सर्चदा। विषाः, स्नातः सुप्रचालितपाणिपादवदनः शुचिर्व्वडणि-खोदभीया विराचानाः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविष्टो-ध्यानी देवताः पूजयेत्। मत् यसूत्रे, शस्ताः समूला-दभीय गुच्छेन चाधिक फलं। हारीतः, मार्ज्जना-र्चनविलक्षाभोजनानि दैवेनिति। अव तीर्थनिति श्रषः। वायुपुराणं, दानं प्रतिग्रहोहोमोभोजनं वलिरेव च। साङ्गुष्ठेन सदा कार्यमसुरेभ्याऽन्यथा भवेत्। एतान्येव च कभागि दानानि च विग्रेषतः। अन्तर्जानुविशे-षिण तहदाचमनं नृप। साङ्ग्छेनेति अङ्गष्टसहितेन करेगोत्यर्धः। अन्तर्जानु जानुनोर्मध्ये यथा वाहर्भवति तया कार्य मि खर्थः। अत्वाचमने गोभिनः। द्विणं वाहुं जान्वन्तरा क्रत्वेति। यमः, दृष्टं निवेदितं यद्यद्तं जतं श्रुतं तरः। यातुधानाः प्रलुम्पन्ति गौच भष्ट दिजन्मनः (७५)।

सर्वपाः। स्नानद्रव्यमाह गौतमीय। चन्द्रचन्दनकाश्मीर जलैः स्नानं-विधीयत इति। ग्रहादिपूजायामित्युपलच्चणं। जलं द्यादिति जल-दानेनोत्स्रजिदित्यर्थः। इन्हं शौतोश्णादि। पात्रान्तरिवशेषे मिण्मया-दिपात्रे उत्तरोत्तरं पूर्व्वस्मादिधकं। सविलासं सानन्दं सविभ्रमं प्रमाद-रिहतं। एतद्वयं क्रियाविशेषणं। विम्वानां प्रतिमानां श्राभिक्ष्यात् सौन्दर्थात्। स्वप्नान्ते स्वप्नदशायां। सैव श्रनामिकैव, ध्यानी देव निविष्ट-चेताः। इष्टं यागः सर्व्वत्रभावे निष्ठाप्रत्ययः (७५)।

स्मृति:, त्वार्त्ताः पणवीतदाः कन्यका च रज-खला। देवता च सनिमील्या इन्ति पुर्णं पुराक्षतं। गोतमः। रात्राबुद्द्याखः कुर्याद्वेवकार्यं सदैव हि। शिवार्त्वनं सदायेवं श्रुचिः कुर्यादुदश्चः। दानधर्म विश्वां प्रति नारदवाकां, अभुक्ता देवकार्याणि कुर्चते येऽविकत्यनाः। सन्तृष्टाय चमायुक्तानाञ्चम खाम्यहं। विभो। अविक्रायनात्रमञ्जाघाकारिणः। स्कृत्द-पुराणे, सर्ज्ववाद्यमयी घएटा केशवस्य सदा प्रिया। वादनाज्ञभते पुण्यं यज्ञकोटि समुद्भवं। संवत्सर-प्रदीपे। यस्य घण्टा गृहे नास्ति शङ्कोवा प्रतो-हरे:। कयं भागवतीनाम गीयते तस्य देहिन:। तथा, सर्वे दोषाः प्रलीयने घष्टानादे क्वते हरी। तथा, नदीतड़ागसस्त्रं वापीक्ष्यहृदो इवं। गङ्गोदकं अवेत् सर्वं पङ्गेनैव समुद्रत'। वराहरुराणे, अवं क्रत्वा तु गङ्गेन यः करोति प्रदिवगं। प्रदिवगोक्तता तेन सप्तडीया वसुधरा। जल्यतरी तु दिचिणावर्त्ते विशेषमाइ, दिवागावर्तशङ्घेन पाने औडु स्वरे स्थितं।

कन्यका अनूदा, हरी हरिसभीपे। गङ्गोदकं गङ्गोदकतुल्यं। प्रती-च्छे । धारये। मण्ड ने सर्वतोभद्रमण्डले. अवनानि चतुईश इति सर्वेषां तत्र स्थितवं लच्यते, तेन सर्वेषां देवादीनां तत्र पूजनं कर्त्तु-महतीति। स्कान्दे, कार्तिकेयं प्रति शिववाक्यं, शालग्रामशिलायान्तु यः करोति ममार्चनं। तेनार्चितं कार्त्तिकेय युगानामिकसप्ततिमिति। वेदद्वारं चर्तुद्वारं स्थावरे स्थिर प्रतिमायां। विकल्पः शालग्रामे न कुर्यात् सैकतायां कुर्यात् अन्यत्र कुर्यादा नवेति स्थामिपादाः। उद्यासी विसर्जनं। देवस्थापनस्थासनलचणमान्तः शायितेति, सांस्थेन तत्त्वविचार-

उदकः यः प्रतीच्छेतु शिरसा हृष्टमानसः। सप्तजन्म-क्ततं पापं तत्चगादेव नम्यति। श्रोड् स्वरे तास्मये। स्कान्दे। दिचिगावर्त्तगङ्खस्य तीयेन यो र्चयेविरं। सप्तजन्मक्ततं पापं तत्चणादेव नम्यति। पूजाधार-माइ गीतसीयतन्तं। शालपाने सणी यन्ते मण्डले प्रतिसासु च। निर्धं पूजा हरे: कार्या नत् केवल-भूतले। इरेरिख्पलचगं। तथाच पद्मपुरागं, शाल-यामिथिलाइयी यत्र तिष्टति केशवः। तत्र देवासुरायचा-भुवनानि चतुईश। तत्र ब्रह्माइयोदेवाद्गति कचित् पाठ:। अतएवास्य दाने भूचक्रदानमधाह तवैव, णालगामशिलाचकां योददाहानमुत्तमं। भूचकां तेन-द्तं स्वात् सगैलवनकाननं। पूजाप्रदीपे, अनुता-कल्पे यन्त्र तु लिखित् पद्मं दलाष्टकं। षट्की एक णिकां तव वेददारीयणोभितं। राघवभद्रधतं, णालगामे स्यावरे वा नावाहनविसर्जन। शालग्रामणिलादी यित्रियं सिव्विहितोहरि:। ग्रहे लिङ्गदयं नाचें। गणेग-

यास्त्रीत्यज्ञानेन, योगेनाष्टाङ्गयोगादिना। उपास्त्रत्वेन सेवनीदत्वेन ज्ञानं ज्ञानिविशेवः। अन्यत्र शालगामादन्यत्र प्रतिमादी। घृणा दया, शोचमान्तरीणं, न शीचं न त्रतानि चेत्रत्व शौचंवाश्चामिति न पौनरुतं हितानां विह्नितानां, पादमेवनिमिति, पादपद्मं भत्त्यानिर्दृष्टं तेन चामरच्यातनादि सेवामावं याद्यं, दास्यं क भाषणं दासाभिमानञ्च, सस्यं विश्वासः। कीन्तेय प्रतिज्ञानीहि न मे भत्तः प्रण्यतीत्यादिवाक्ये तथा वोधनात्। आत्मनिवेदनं देहाद्यर्पणं विष्णी अर्थिता सती क्रियमाणा न तु करणान्तरमितिति स्वामिचरणाः। एवञ्च भित्तिविधा क्रिया-योगात्मिका ज्ञानमयी च तवाद्या अवणकी नादिका दितीया स्मरणाः

स्मृति:, त्यांनी: पणवीत्दाः कन्यका च रज-खला। देवता च सनिमील्या इन्ति पुर्ण्यं पुराक्षतं। गोतमः। रात्राबुदशुखः कुर्याद्वेवकार्यं सदैव हि। शिवार्ज्ञनं सदायेवं श्रुचिः कुर्यादुद्शुखः। दानधर्मे विषां प्रति नारदवाकां, अभुक्ता देवकार्याणि कुर्चते येऽविकत्यनाः। सन्तष्टाय चमायुक्तानाञ्चस याग्यहं। विभो। चविकत्यनाचनात्म याचाकारिणः। पुराणे, सर्ज्वाद्यसयी घएटा केशवस्य सदा प्रिया। वादनालभते पुण्यं यज्ञकोटि समुद्रवं। संवत्सर-प्रदीपे। यस्य घएटा ग्रहे नास्ति शङ्घोवा प्रतो-हरे:। कयं भागवतीनाम गीयते तस्य देहिन:। तया, सर्वे दोषाः प्रलीयने घष्टानाई क्षते हरी। तथा, नदीतड़ागसकातं वापीक्षपहदोइवं। गङ्गोदकां भवेत् सर्वे शङ्केनेत्र समुद्रतं। वराहपुराणे, अवं कत्वा तु गङ्गेन यः करोति प्रदिवगं। प्रदिवगोक्षता तेन सप्तडीया वसुखरा। कल्यतरी तु इचिणावर्त्त विशेषमाहः, दिचायावर्त्तशङ्कोन पाने चौड्यारे स्थितं।

कन्यका अनूदा, हरी हरिसभीय। गङ्गोदकं गङ्गोदकतुल्यं। प्रतीच्छे । धारये। मण्ड ने सर्वातोभद्रमण्डले. अवनानि चतुईश इति
सर्वेषां तत्र स्थितवं लच्यते, तेन सर्वेषां देवादीनां तत्र पूजनं कर्त्तमहितोति। स्कान्दे, कार्तिकेयं प्रति शिववांक्यं, शालग्रामशिलायान्तु
यः करोति ममार्चेनं। तेनार्चितं कार्तिकेय युगानामिकसप्ततिमिति।
वेदद्वारं चर्तुद्वारं स्थावरे स्थिर प्रतिमायां। विकल्पः शालग्राम न कुर्यात्
सैकतायां कुर्यात् अन्यत्र कुर्याद्वा नविति स्वामिपादाः। उद्वासी
विसर्ज्ञनं। देवस्थापनस्य सन्तव्य गमाहः शायितित, सांख्येन तन्वविचार-

उदकं यः प्रतीच्छेतु शिरसा इष्टमानसः। सप्तजन्म-क्तं पापं तत्च गादेव नम्यति। श्रोड् स्वरे तास्मये। स्कान्दे। दिचिणावर्त्तगङ्खस्य तीयेन यो र्चयेदिरं। सप्तजन्मक्ततं पापं तत्चणादेव नग्यति। पूजाधार-माइ गीतमीयतन्तं। पालपाने मणी यन्ते मण्डले प्रतिसासु च। निर्धं पूजा हरे: कार्घा नतु केवल-भूतले। इरेरिट्पपलचगं। तथाच पद्मपुरागं, शाज-यामिशिलाक्षी यत्र तिष्टति केशवः। तत्र देवासुरायचा-भुवनानि चतुई श। तत्र ब्रह्मादयोदेवाइति कचित् अत्एवास्य दाने भूचक्रदानमधा तनेव, शालगामशिलाचकां योददाहानमुत्तमं। भूचकां तेन-दत्तं स्यात् सशैलवनकाननं। पूजाप्रदीपे, अनुता-कल्पे यन्वतु लिखित् पद्मं दलाष्टकं। षट्की गर्का गिकां तव वेददारीयणीभितं। राघवभद्वधतं, शालगामे स्थावरे वा नावाहनविसर्जंने। शालग्रामणिलादी यित्रयं सिव्विहितोहरि:। गृहे लिङ्गदयं नाचें। गगोग-

यास्त्रीयज्ञानेन, योगनाष्टाङ्गयोगादिना। उपास्त्रत्वेन स्वनीयत्वेन ज्ञानं ज्ञानविश्वेषः। अन्यत्र यालयामादन्यत्र प्रतिमादी। एणा दया, योचमान्तरीणं, न ग्रीचं न व्रतानि चेत्यत्र ग्रीचंवाश्चासिति न पीनस्त्रं हितानां विह्नितानां, पादमेवनिसति, पादपद्मं भत्त्यानिर्दृष्टं तेन चामरच्यातनादि सेशामावं याद्यं, दास्यं क ग्रीपणं दासाभिमानञ्च, सस्यं विश्वासः। कीन्तेय प्रतिजानीहि न मे भत्तः प्रण्यतीत्यादिवाक्ये तथा वोधनात्। आत्मनिवेदनं देहाद्यपणं विष्णी ग्रिपता सती क्रियमाणा न तु करणान्तरमितिति स्वामिचरणाः। एवञ्च भित्तिदिधा क्रिया-योगात्मिका ज्ञानमयी च तत्राद्या अवणकी नादिका दितीया स्मरणा-

स्मृति:, त्रषात्ताः पणवीक्षाः कन्यका च रज-खला। देवता च सनिमील्या इन्ति पुग्यं पुराक्षतं। गोतमः। रात्रावुदशुखः कुर्याद्वेवकार्थं सदैव हि। शिवार्त्वनं सदायेवं श्रुचिः कुर्यादुदश्चा वः। दानधर्म विशां प्रति नारदवाकां, अभुता देवकार्याणि कुर्चते येऽविकत्यनाः। सनुष्टाय चमायुक्तानाज्ञस्याध्यहं। विभो। चविकत्यनाचनात्मग्राघाकारिणः। स्कन्द-पुराणे, सर्ज्वाद्यसयी घण्टा केशवस्य सदा प्रिया। वादनाज्ञभते पुण्यं यज्ञकोटि समुद्भवं। संवत्सर-प्रदीपे। यस्य घएा गृहे नास्ति शङ्घोवा प्रतो-हरे:। क्यं भागवतीनाम गीयते तस्य देहिन:। तया, सर्वे दोवाः प्रलीयने घएटानाई क्षते हरी। तया, नदीतड़ागसकातं वापीक्रयहदोइवं। गङ्गोदकां अवेत् सर्वे गङ्केनेत्र समुद्रतं। वराहरुराणे, अवं क्रत्वा तु गङ्गेन यः करोति प्रदिवणं। प्रदिवणीक्षता तेन सप्तडीया वसुधरा। कल्पतरी तु इचिणावर्त्त विशेषमाइ; दिवाणावर्तशङ्कोन पाने औड् स्वरे स्थितं।

कन्यका यनूढ़ा, हरी हरिसमीय। गङ्गोदकं गङ्गोदकतुल्यं। प्रतीच्छे । धारये। मण्ड ने सर्व्यतोभद्रमण्डले. भुवनानि चतुईश इति
सर्व्येषां तत्र स्थितवं लच्यते, तेन सर्व्वेषां देवादीनां तत्र पूजनं कर्त्तुमईतीति। स्कान्दे, कार्तिकेयं प्रति शिववां क्यं, शालगामशिलायान्तु
यः करोति ममार्चनं। तेनार्चितं कार्त्तिकेय युगानामिकसप्ततिमिति।
वेदद्वारं चर्तुद्वारं स्थावरे स्थिर प्रतिमायां। विकल्पः शालगामे न कुर्यात्
सैकतायां कुर्यात् यन्यत्र कुर्याद्वा नवेति स्वामिपादाः। उद्वासी
विसर्ज्ञनं। देवस्थापनस्य सन्तव्वणमाहः शायितिति, सांस्थेन तत्त्वविचार-

उदकं यः प्रतीच्छेतु शिरसा हृष्टमानसः। सप्तजन्म-क्तं पापं तत्च गादेव नप्यति। चोड् स्वरे ताह मये। स्कान्दे। दिचिणावर्त्तशङ्ख तोयेन यो चिवदि । सप्तजन्मक्ततं पापं तत्चणादेव नम्यति। पूजाधार-माइ गीतमीयतन्तं। शालगाने मणी यन्ते मण्डले प्रतिसासु च। निखं पूजा हरे: कार्या नतु केवल-भूतले। इरेरिल्प्पलचगं। तथाच पद्मपुरागं, शाल-यामिशिलाक्षी यत्र तिष्टति केशवः। तत्र देवासुरायचा-भुवनानि चतुईश। तत्र ब्रह्मादयोदेवाद्गति क्वचित् पाठ:। अत्वास्य दाने भूचक्रदानसपाइ तनैव, शालगामशिलाचकां योददाहानमुत्तमं। भूचकां तेन-दसं स्यात् संशैलवनकाननं। पूजाप्रदीपे, कल्पे यन्वतु लिखित् पद्मं दलाष्टकं। षट्की गर्का गर्का तत्र वेद्दारीयणोभितं। राघवभद्वधतं, णालगामे स्थावरे वा नावाहनविसर्जन। शालगामशिलादी यित्रयं सिव्विहितोहरि:। गृहे लिङ्गहयं नाईं। गगेश-

यास्त्रीत्यज्ञानेन, योगनाष्टाङ्गयोगादिना। उपास्त्रत्वेन सेवनीयत्वेन ज्ञानं ज्ञानविश्वः। अन्यत्र यालगामादन्यत्र प्रतिमादी। हणा दया, शोचमान्तरीणं, न गीचं न व्रतानि चेत्यत्र शीचंवाश्चामिति न पीनर्त्तं हितानां विह्नितानां, पादमेवनिमिति, पादपद्मं भत्त्यानिर्दृष्टं तेन चामरच्यातनादि सेवामावं याद्यं, दास्यं क मार्पणं दासाभिमानञ्च, सख्यं विश्वासः। कीन्तेय प्रतिज्ञानीहि न मे भत्तः प्रण्यतीत्यादिवाक्ये तथा वोधनात्। आत्मनिवेदनं देहाद्यपणं विष्णी ग्राप्तिता सती क्रियमाणा न तु करणान्तरमितिति स्वामिचरणाः। एवञ्च भित्तिदिधा क्रिया-योगात्मिका ज्ञानमयी च तवाद्या अवणकी नादिका दितीया स्मरणाः योगात्मिका ज्ञानमयी च तवाद्या अवणकी नादिका दितीया स्मरणाः

शय:। वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रोदित्यभीचारं इसति क्वचिच । विलज्जउद्गायति नृत्यते च मइति-युक्तोभुवन पुनाति। वराष्ट्रपुराणे, संस्मृतः कीर्त्तितो-वापि दृष्टः सृष्टे। युवाति भगवज्ञत-याग्डालोऽपि यहच्छया। एतज्ज्ञात्वा तु विद्विः पूजनीयोजनाईनः । वेदान्तविधिना भद्ने यागमीत्रेन वा सुधी:। सुधीरिति पृथिवीसखोधनं। तथा, यावत् सर्वेषु भृतेषु महावीनोप्जायते। तावदेवसुपासीत वाझान:कायककी भि:। हरिवंशि विलं प्रति भगवदाकां, पुग्यं महेषिगां यच महत्तहेषिगां तथा। तत्सर्वो तव दैखेन्द्र मत्प्रसादाइविष्यति । अवाङ्गिरसी । सर्व-पापप्रसत्तोऽपि ध्यायद्विमिषमच्युतं। पुनस्तपस्वी भवति पंत्रिपावनपावनः। गारुडे, यहुर्लभं यदप्राप्यं मनसो-यत्र गोचरं। तद्यप्रार्थितं ध्यातोददाति मधुसूदनः। विषापुराणं, ध्यायन् क्रते यजन् यज्ञीस्ते तायां दापरे-उर्चयन्। यदाप्रोति तदाप्रोति काली संकीत्तर के शवं। योगियाच्चवल्काः, ध्यात्वा प्रणवपूर्व्वन्तु हैवतन्तु समा-हितः। नमस्कारेण पुष्पादि विन्यसेत्पृथक् पृथक्। याग्नेये, तिल्ञिङ्गेः पूजयेन्यन्त्रेः सर्व्यदेवान् समाहितः। ध्याला प्रणवपूर्वेन्तु तद्मामा सुसमाहितः। नमस्कारेण पुषादि विन्यसेत् पृथक् पृथक्। सन्ततन्त्रप्रकाशे मन्त-

ॐ नमो नारायणायित्यादि मन्तादौ यनमःपदं तन्न त्यागार्थकं किन्तु नत्यर्थकं अतस्तदन्तेनमःपदं दियमेव। होमस्यले त्यागार्थकतया स्नाहापदस्यानुशिष्टत्वानमोऽन्ते तन स्नाहापदं नतु स्नाहान्ते मिधिक्रत्य। नमोऽन्ते न नमोदयात् खाहान्ते दिठमेव च। पूजायामाहती चैव सर्ज्ञ वायं विधिः स्मृतः। दिठः खाहा। स्मृतिः, पचचयान्विता दूर्जा प्रशस्ता चार्षककीणि (०६)।

कालिकापूराणं, यद्दीयते च देवेभ्योगस्यपुष्पादिकं तथा। अर्घपावस्थितेस्तोयेरभिषिच्य तदुत्स्जेत्। विषाु-धर्मीत्तरे, चन्दनागुककपूरस्यासारन्ययेव च। जातीफलं तथा दद्यादनुलेपनकारणात्। अतोन्यद्भेव दातव्यं किञ्चिदेवानुलेपनं। विषाु धर्मीत्तराग्निपुराणयोः। सुग-स्येश्व मुरामांसीकपूरागुकचन्दनैः। तथान्येश्व शुभेर्द्र-व्येर्श्वयेज्ञगतीपतिं। कालिकापुराणे, यद्यपि देव्या-द्रत्युपक्रस्य नैवेद्यादी दिङ्नियमज्ञस्त्रयाप्याकाङ्ग्या अन्यवाप्यन्वेति। यथा, नैवेद्यं द्विणे वामे पुरतोऽपि न पृष्ठतः। दीपं द्विणतोद्यात् पुरतोऽपि न वामतः। वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा नतु द्विणे। निवेदयेत् पुरोभागे गस्यं पुष्पञ्च सूष्णं। दीपञ्च तथा स्थापयेत्

तहेयमित्यभिप्रायेणाच खाचान्ते द्विठमेवचेति यत्र च मन्त्रे चतुर्थ्यन्तनाम नास्ति तत्नचान्तस्थत्यागार्थकनमः स्वाचादिपदसमभिव्याचारवशान्तन्तस्य सम्प्रदानतापरत्वसुत्रेयमिति (७६)।

सृगसारं कस्तू रीं। ततीऽन्यदिति विश्वितरित्यर्थः। तथाद-द्यादित्यत्र तथाश्र स्टेन विश्वितान्तरस्थानुकर्षात्, श्रन्थथा वचनान्तरिवरोधा-पत्तेरिति। सुरागन्धद्रव्यविशेषः। मांसी जटामांसी दिचिणे वामे-द्रत्यत्र व्यवस्थामाञ्च तन्त्रसारे। पक्षञ्च वामतोदद्यादामात्रञ्जेव दिच्ण-द्रति। तथा दीपं दवे छताक्तञ्च तैलयुक्तञ्च वामतः। दिचिणे च सितावर्त्तिं वामतोरक्तवर्त्तिकां। तुलसीचन्दनं तुलसीकाष्ठगन्धः। गारुड़े,

ययाच्छयां नाययेत्। विभीतकार्ककारञ्जस हीच्छायां नबाययेत्। स्तब्वदीपमनुष्यागामन्येवां प्राणिनान्तया। द्रित प्रयोगसारात्। संवत्सरप्रदीपे, यो हि भागवतो-भूत्वा कर्ली तुलसीचन्दनं। न चार्वयति वे विप्णी न स भागवतीनरः । आन्वे ये, चन्दनागुस्कप्रकुद्धमोशीर-पद्मकै:। अनुलिप्ती हरिर्भत्या वरान् भोगान् प्रयक्ति। कालियकं तुम्ख्वच रक्तवन्दनमेवच। न्यां भवन्ति दत्तानि पुर्खानि पुरुषोत्तमे। बिष्णुधस्मित्तरे, अनु-लिप्तं जगद्वायं तालवृन्तिन वीजयेत्। वायुलोकमवा-प्रोति पुरुषस्तेन कर्मणा। चासरेवीं जयेद्यस्तु देव-देवं जनाईनं। तिलप्रस्थपदानस्य फलं प्राप्नोत्यसं गयं। राघवभट्टध्तं, गङ्कपावस्थितं गस्तं मन्ते-देखात् कनिष्ठया। कनिष्ठाङ्गुष्ठसंयुक्ता गम्धमुद्रा प्रकीर्त्तिता। नारसिंह, अपर्ध्यावतनिष्किद्रैः प्राचितै-र्जन्तवर्जितैः। आत्मारामोद्भवेर्वापि पुष्पैः संपूजयेद्वरिं। देवीपुराणं, स्वयं पतितपुष्पाणि त्यजेट्पहतानि च।

योददाति हर्गित्यं तुलसीकाष्ठचन्दनं। युगानि वसते खर्गे द्यान्तानि नरौत्तम, इति, यहा तुलस्या सह चन्दनं। उग्रीरं गन्धवीरणमूलं। पद्मकं पद्मकाष्ठं कालेयकं काणागुरु, तुरुस्कं धिलारसङ्गतिस्थातं। रक्रचन्दनं कुङ्गमं वीरलोहितचन्दन मित्यमरात्। द्रारिदं पद्मकं दया- हीर्माग्यं क्काचन्दनं। उग्रीरं चित्तविश्वंशमन्धेकुर्य्युरुपद्रवमिति विण्डाः धर्मोत्तरवचने पद्मकाष्ठादिनिषेधादत्रपद्मकाष्ठादिविधानं सम्बलितत्वेन वोध्यं, ध्रन्येवचनान्तरनिषिदाः। कनिष्ठयेति, चङ्गष्ठसंयुक्तयेत्वर्यः तथा-विधायाएव गन्धमुद्रात्वात्। चपर्युसितैनिश्किद्रैस चात्मारामोद्ववैः स्वकीयारामोद्ववैः। वाषीत्यत्र वाचार्यं उपहतानि, दूषितानि

शातातपः, शिवं विवर्जयेत् कुन्द मुन्मत्तञ्च हरी तथा। देवीनामर्जमन्दारी सूर्ध्यस्य तगरन्तया। विषाधमी-त्तरे, धर्मार्जितधनक्रीतैर्यः कुर्व्यात् केणवार्चन । उइरिष्यत्यसन्दिग्धं दशपूर्वान् दशापरान्। नारसिंहे, मस्निकामासतीजातीकीतकाशोकचम्पकै:। पुन्नागनाग-वकु खै: पद्मौकत् पल जाति थि:। तुलसी करवीरै य पलाशा-विन्तिकु क्रकोः। एते रन्येश्व कुसुमैः प्रशस्ते रच्यतं नरः। अर्ज्ञ न्दम सुवर्णस्य प्रत्येकं फलमाप्रुयात्। पुन्नागः पुनानद्रति सिथिलायां प्रसिद्धः, नागीनागकीशरः। नारदीयसप्तसाहस्रे. मालतीवकुलायोकप्रेफालीनव-मालिका। अम्बानतगराङ्कोठमस्निकामध्विण्डिका। यूथिकाष्टापदं कुन्दं कदम्बं मधुपिङ्गलं। पाटला-चम्पकं क्षणां लवङ्गसतिस्त्रकां। कीतकां कुरुवकां विलुं कह्नारं करकं दिज। पञ्चविंगतिपुष्पाणि जन्मीतुल्यप्रियाणि से। जुरुवनं रक्तिभिष्टिनं। यत्तु, सुरभीणि तथान्यानि वर्जियत्वा च केतकी-मितिवामनपुराणवाक्यं तन्नरसिंहेतरावतारविषयं। केतकीपचपुष्यञ्च सङ्गराजस्य पंचकं तुलसीक्षव्यातुलसी

यक्कीउंग्राकलादीतिख्यातं, सधुपिण्डिकां सधूकं, त्रितमुक्तकं साधवीलता।
गिरिग्रालिनीपदेनात्र खेतापराजिता। कृष्णापराजिताञ्चेव जयन्तीं
वृह्तीं तथा। यो दद्यादिष्णवे तस्मै दुःखं विष्णुःप्रयच्छतीति, हरिहरासोदध्तनारदवचनेन कृष्णापराजिता निषेधात्। पीतकं पीयुलीतिख्यातं कवरीरञ्चेति हरिभक्तिविलाक्षे। न ग्रहे करवीरस्थैः कुमुमैरचैपेदरिं। पतितेर्मुकुलैर्म्कानैः खासैर्वाजन्तुदूषितैः। ग्राप्नातेरङ्गसंस्थ-

सद्यसुष्टिकरं हरेरिति नरसिंहपुरागात्। वामन-पुराणे, पारिभाद्रं पाटला च वकुलं गिरिशालिनी। तिलकं जम्ब्वनजं पीतकं तगरन्तुपि। एतानि हि प्रगस्तानि कुसुमान्यच्युतार्च ने। गिरिशालिनी अपरा-जिता। जब्बननं खेतनगापुष्यं, विश्वभित्तिरे, रता-शोक स कु सुममत सी कु सुमन्तया। अतसी शणः। तथा, चम्पकसा च देयानि तथा भूचम्पकसा च। आग्नेये, प्यान्यस्वसमुत्यानि रत्तनीले तथीत्पले। सीतीत्-पल च का गा ख दियतानि सदा न्या। तथा, पाटला वरवीरञ्च जवा जयन्तिरेव च। कुङाकस्तगरश्चम्यः कर्णिकारः कुरुगटकः। चम्पश्चम्पककुस्मं। विशेषोमत्स्यतन्ते, गोपाले वर्जयेज्भिण्टिं वक्षचम्पक-वासकमिति। अवचम्पकं कनकचम्पकः। तथाच स्कन्दपुराणे, जवा कुरुण्टकं वन्यं वकं कानकचम्पकं। विवर्ण क्रमिसन्दष्टं न देयं अजताच्युतं। रत्तज्वा, नुम्राएकं पीतिभिगिएकं। भविष्ये, पद्मानि सितरतानि क्मुदान्युत्पलानि च। एषां पर्ध्युषिता-गङ्गा कार्या पञ्चदिनोत्तरे। तुलस्यगस्ताविलानां नास्तिपर्ध्युषितात्मता। अगस्तं वकः। योगिनीतन्ते, विलूपचञ्च माध्यञ्च तमालामलकीदलं। कल्लारं तुलसी

ष्टैर्दूषितैश्वेव नार्चयिदत्यत्र करवीरस्थैरिति न करवीरप्रप्यपरं नाना-वचनेषु तस्य विहितत्वात् किन्तु करवीरपत्रादिस्थकुसुमपरिमिति न विरोधः। हरिभिक्त विलासटीकायान्तु वन्धुकं करवीरञ्च न ग्रेहे रोपयेत् क्वचिदिति ज्योतिर्वचने ग्रहेकरवीरारोपणनिषेधात् ग्रहेरोपितकरवीर-

चैव पद्मञ्च मुनियुष्पकं। एतत् पर्याषितं न स्याद्यद्या-न्यत् कलिकात्सकं कलिकात्मकं स्वः प्रस्कीटनयोग्यं। राघवभट्टध्रतं कलिकासिस्तया नित्यं विना चम्पक-पद्भजै:। शुष्कौ न पूजये दिष्णुं पत्नै: पुष्पै: फलैरपि। विष्णु-धक्यींतरे, उग्रगसीन्य गसीनि कुसुमानिन दावयेत्। अन्यायतनजातानि कण्टकानि तथैव च। रक्तानि यानि धर्माज्ञ चैलकृचोद्भवानि च। यानि सम्मानजातानि यानि चाकालजानि च। तथा, कुटजं शाल्मली-पुष्पं शिरीषञ्च जनाईने। निवेदितं भयं रोगं नि:-खलञ्च प्रयक्ति। वस्जीवकपुष्पाणि रक्तान्यपि च चनुक्तरक्षमुमदानाद्दीर्भाग्यमाप्र्यात्। दापयेत्। आगस्तेर, परारोपितहचे ध्यः पुष्पमानीय योऽचीयत् अविज्ञाप्य च तस्यैव निष्मलं तस्य पूजनं। जेतरपर'। दिज स्तृगोधः पुष्पाणि सर्व्वतः खवदाहरे-दिति याज्ञवल्कपात्। देवतार्थन्तु कुसुममस्तेयं मनुर-ववीदिति वचनाच। गोऽग्चर्यतृणमेधांसि वीम्दन स्पतीनां पुष्पाणि स्ववदादीत फलानि चापरिवृहिताना-मिति गीतमवचनाच विशेषीच्चेयः। दिजेतरस्य दराडी-ऽपि। तृगं वा यदि वा काष्ठं पुष्पं वा यदि वा फलं।

पुष्पेण हिरपूजनं न कार्यिमित्युक्तं। योगिनीतन्ते विश्वासन्त्रमधिकत्य नीलकगढं मयूर्ञ्च योन्याकारञ्च वर्जयत्। श्रेफालिकाञ्च कह्नारं शरत्-काले प्रशस्यते। अन्यत्र नस्प्रशिद्देवि प्रायिश्वतीच पूजनात्। रक्त-हैमन्तिकं वर्ज्यं रक्तञ्चराञ्च वर्जयत्। वन्यूकं करवीरस्य वज्रस्य नीरजस्यच। केश्ररस्य कद्म्बस्य तथा कोकनदस्यच। रक्तान्येतानि देयानि द्रोणस्था-

अप्रयक्ति च्हिम्हानो इसक्टे दनमहित, इति स्मृतेः देवी-परिधृतं मस्तको परिधृतमधी वस्त्रधृतमन्तर्जलप्रचालितञ्च पुष्पं दृष्टमिति हरिभक्तिनामक ग्रन्थे (७७)।

यभवाद्याभिवादककरस्यपृष्पञ्च प्रोचिणात् कर्माण्य-मिति केचित्। यतएव तयोरिभवादनिविधमा वौधा-यनः, सिमदार्थ्य दक्षस्मपृष्पाञ्च हस्तोनाभिवादयेद्यञ्चायेवं यक्तमिति। एवं युक्तं सिमधादियुक्तं। लघु हारीतः, जायन्न जलस्यञ्च सिमत्पृष्पकुषानलान्। दन्तकाष्ठञ्च भैचञ्च वहन्तं नाभिवादयेत्। यभिवादयेदित्यनुक्ताः णङ्कालिखितौ, न पृष्पाचतपाणिनांशुचि न जपञ्च देव-पित्रकार्यं कुर्व्वद्विति, यचतायवाः, यचतास्तु यवाः प्रोक्तास्रष्टाधानास्त्रवन्ति ते। द्वित स्ट्रनारायण्यतः।

खनकस्यचेति। यत्र द्रोणस्य योन्याकारत्वेऽपि विशेषेण ग्रहणाद्-ग्राह्मता, तथा खेतापराजिताया यपि ग्राह्मता विशेषेणाभिधाना-दिति। जयन्तिरेवच इत्यत्न जयन्तीग्रहणं खेतजयन्तीलाभाय। हरि-हरामोदधतवचने क्रणापराजितासाहचर्यात् जयन्तिपदं क्रण जयन्तोगरिमिति। नास्तिपर्य्युषिताक्यतित अत्न हरिहरामोदे, मालाकार-ग्रहस्थानि न स्यः पर्य्युषितान्यपीति। यीदन्तोऽपि, मालाकारग्रहस्थनुम्-मस्यार्य्युषितत्वदोषोनास्तीत्याह। तथा हरिहरामोदधतमत्स्यस्ते। तुल-स्थालग्रुष्पाणि पद्मं गङ्गाजलंकुग्रं। न पर्य्युषितदोषोऽत्न क्रित्रंभिनं न दूष्यतीति। यन्यायतन जातानीति दिजेतरपरं वच्चमाणवचनात्। कण्य-कोनि सङ्गण्यानि। यत्न पुष्पास्य ज्ञलिभिद्यानिषिद्यान्यपि मालयित हरिहरामोदयोदतादय चाहः स्वत् यात्मीयवत् अपवंहितानां ययेताविदितानामस्वामिकानामितियावत् (७०)।

ते यवा भ्रष्टा धाना भवन्तीत्यर्धः धानाश्रव्दस्य भ्रष्टयववाचित्वप्रदर्श-नेन भट्टनाराय गोत्तदचने अचतास्तु दवाद्त्यत्र दवददस्य द्वीहिदिशेष-

षतएवामरसिंहः धानाभृष्टयवे खियः। चापस्तस्वः, समित्पृष्यकुशाच्याब्ब्स्ट्बाचतपाणिकं। जपं हीसञ्च कुर्जाणं नाभिवादीत वै हिजं। विज्ञागमने तु विश्व :, जपकाले न भाषत बतही साहिकी इ च। एतेष चैवा-सतस्त यदागच्छे दिजीत्तमः। चभिवादा ततीविप्रं योगचेमच कीर्त्तयत्। चन दिजोत्तसपदं निषादस्य-पतिवत् कर्मधारयसमासस्यैव युक्तत्वादपतितचैवर्णिक परमिति विद्याकरः, वस्तुतस्तु विप्रपद्यवगात्तन्याचपरं। याचितं निष्मलं पृष्यं क्षयक्रीतञ्ज निष्मलिमिति वदिना। तथा, न पृष्यक्रेइनं क्ष्यिद्विवाधं वाम-इसतः। न द्यात्तानि देवेभ्यः संस्थाय वामहस्ततः। हारीतशातातपी, समित्पृथ्यकुशादीनि वाह्मणः खयमा-हरेत्। शुद्रानीतेः क्रयक्रीतेः कक्ष कुर्वन् पत्यधः। क्रये प्रतिप्रसूते ब्रह्मपुराणं, पुष्पैर्धृपैश्व नैवेदीवीरक्रय-क्रियाहतै:, वीरक्रय: वीरवत् याञ्जाशून्येन विक्रीतुरुप-

परतां दृद्यति। अतएवति निषादस्यपितविदिति, अन्यैव ऋचा
निषादस्यपितं याजयिदितिश्रुती निषादस्य चाण्डालस्यस्यपितरीस्यर
दिति षष्ठीतत्पुरुषे निषादसम्बन्धेलचणापस्या निषादश्वासीस्थपितश्चेति
कर्माधारय एवाद्रियतद्दति सीमांसासिडान्तसिडं दृष्टान्तितं, अवविद्याकरमते उत्तमपदमपिततस्वधर्मानिष्ठपरं एवस्त्रयद्यागच्छेत् दिजोत्तमद्रयनन्तरं तदा तिमिति पूरणीयं तस्ययोगचेमं कोर्त्येत् एच्छेदित्यनेनान्वयः। यदि च तेषु मध्येऽभिवाद्योवित्र आयाति तं विप्रमिनवाद्य
योगवेमं एच्छेदितिवाक्यभेद दतितन्त्रतसुपेच्य वस्तुतस्वित स्वमतस्वच
मतिद्वजीत्तमः द्रत्यस्य विश्रेष्यपदं विप्रमित्यस्यविभित्तविपरिणामेन
विप्रदतिपदं निर्देशस्यस्यलेनिकारणीयविश्रेष्यवाचकपदस्यावस्यकातातं

न्यसमृत्येन क्रयः। विकाधकितिरे, खड्डराज्य विल्वस वकाष्यः प दिजाः। छान्नाचनीजपुरागां प्रवाणि विनिवेदयेत्। तथा, पुष्पाणि यदि ते न स्यः प्रणली-रिप पक्षवै:। दूर्वाङ्गरैरिप ब्रह्मं स्तडाहेनार्चयानुता। याममधुरागो, विल्याचं भसीयचं अङ्गराजस्य पचकां। तमालामलकीवनं गत्तं केशवपूजने। ज्ञानमालायां, पुणं वा यदि वा पत्रं फलं नेष्टमधो मुखं। पुष्पाञ्चलि-विधिं हिला यथीत्वद्रं तथार्थं। सप्तारीतः, सानं श्राता च ये केचित् पुत्र्यं ग्रह्मन्ति वे हिजाः। देवतास्तद्भ यन्त्रिक भागीभवति काष्ठवत्। एतत् वितीयकानाभिप्रायकमितिरदाकरः। व्यतं मत्सक्ते, साला मधाइसमये न चिल्ह्यात् क्सुमं नरः। तत्पष्यस्यार्श्वने देवि रीरवे परिपच्यते। स्कान्दे, न धाबी सफला यव न विष्णोस्तलसीदलं। तन्ध्रे च्छ-सहगं स्थानं यत्र नायान्ति वैशावाः, अत्र मात्-परोमखी यत हादशीलजरः। तुलसी सालती धात्री तच विष्णुः श्रिया सह। टुर्चा दहति दुःखानि धावी

मराणां ग्राह्मा व्याप्योगात् नराजित्र स्थित । व्याप्या व्याप्य स्थान्य स्थान स्थान्य स्थान्य

हरित पातकां। हरीतकी हरिहोगं तुलसी हरते नयं।
तुलसीं प्राय यो नियं न करोति ममार्चनं, तस्याहं
प्रतिग्रज्ञामि न पूजां दणवार्षिकीं। अतएव, ग्रज्ञाति
तुलसीं ग्रष्ट्यामिष पर्व्युचितां हरिः। तथा, वर्च्यं पर्व्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्व्युचितां ज्ञां, न वर्ज्यं जाह्नदीतोयं न वर्ज्यं तुलसीद्वं। तुलसीपनमादाय यः
करोति ममार्चनं। न पुनर्गीनिमान्नोति मुक्तिभागी
भवेदि सः। तथा, समञ्जरिद्वेर्युक्तं तुलसीसक्तवैः
चिता। कुर्वन्ति पूजनं विश्वोत्ते क्रतार्थाः कली

वायकतिति। एवच् जात्यादिनिजेयणविभिष्टे यहमीयिक्स्त्राभिन्ने ताहण-जात्यादिविशेषणशून्यतदभीविच्छवन्याः त्तविधियभानं तत्रतद्धीयिच्छत्र-वावकपदोत्तरं षडोधतनोवेति विदेशरणसूत्रतात्पर्धं। द्विजेशूनसोदिजो-त्रोतिवद्रत्य प्रगुत्रसाय्या व्याहत्तत्व गर्यः व्याहत्तत्वं भेदप्रतियोगिताव-च्छेरक वरेन या वो तमप्र र्थताव च्छेरको तसवे व्यत्पत्तिवैचिदात् च विवान्यदिकत्वशायक्षत्वविशिष्टाधियतासम्बन्धेन संदे पञ्जलर्थे दिनस्य व्यः । साम्य तार्थान्वितीत्तमस्य विक्रियस्य च दिनस्य-विधिष्टता दाका सन्य चेन विजे । वयद्ति निक्तार्थनाभः निक्तासम्बन्धेन त्वद्यित्वयप्रवाकाङ्गाखीकाराक्षयुद्धाधेयतादिसम्बर्धेनान्वयस्रीकार-णाति । तक्क दिनेव विवस उत्तरविभयन दिन्ननिक्वितलविशिष्टा-धेयतासम्बद्धेन वित्रस्यात्मचेऽन्वये तादृश्वाक्याकाङ्गासीकारेण नाति-पसङ्गः। न निर्देश ए अञ्चीति च वेण निर्देश ए वर्षा तत्पुक्षसमासनिषेधः सामेदनिषेवाय उत्तत्रचित्रस्य वेदाध्ययमादिगुणविधेषपरं। गर्वे-ताइमगुण्विभिष्टस्योतस्यदार्थे वे कभ्रयास्य एव क्यं न क्रियते चित्रिय-वैष्ययानिक्तात्रमञ्जनिक्षियं व्याननेनात्। न च दिजपद्मव्यायनेनं मेहमहो वृत्त द्रायादो महो वृत्वपद्यद्रव दिनपदस्य खळ्पास्यानक्पता-दितिचेत्र विशेषणवासकोत्ततपद्ख पूर्वित्वातापत्ते:। अथवा विजेश्य उत्तम इति पञ्चमोसमासङ्गर्वाद्यजपदं निव्यमिष्यदिजपरं विप्रमिखनेन

युगे, स्नान दाने तथा ध्याने प्राण्णने केणवार्ज्ञ ने। तुलसी दहते पापं की त्रेन रोपणे कली, तुलस्यस्तनामासि सदा त्वं केणविप्रये, केणवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव णोभने। गामकं, मातस्तुलिस कल्याणि गोविन्द्रवर्णिप्रये। चिनोमि हरिपूजार्थमपराधं चमस्व मे। त्वदङ्गस्त्रस्त्रः प्रचेः पूज्यामि यथा हरिं, तथा कृष्ण पविचाङ्गि कली मलविनाणिनि। मन्तेणानेन यः कुर्याहृहीत्वा तुलसीदलं। पूजनं वासुदेवस्य लचकोटिफलं लमेत्। राघवभट्टधृतं, सद्यः पर्यापितं वापि निर्माल्यं नैव दृष्यित। तथान्येन हरेस्तृष्टि-

सामान्यग्रन्दस्य विभेषे तात्पर्ययन्तादेवताहशोत्तमत्वस्य विप्रप्व पर्यव-मानात् विप्र इति विशेषवाचकपदाकल्पनादस्य कल्पस्य समीचीनतित एतदुभयकत्ये उत्तमपदं होमाचग्रतादिजमपेच्छोत्कर्षविशिषविशिष्टगुण-वत्परं वाचं अन्यथाभिवाद्येख्नरग्रन्थासङ्गतः। एवञ्च तं विप्र-सभिवाद्य योगन्नेसं पृच्छेदित्वेकमिववाक्यमिति । अनेतिहासः, श्रीभाग-वतीयाष्टमस्काने। स वै पूर्व्यमभूदाजापाण्डाो द्विड सत्तमः। इन्द्रयुम इतिख्याती विष्णुवतपरायणः। स गजिन्द्रः योभगवतायचान्योचितः। स एकदाराधनकाल आलवान् ग्रहीतमीनव्रतमी खरंहरिं। जटाधर-स्तापस अामुतोऽच्युतं तमर्चयामास कुलाचलाव्ययः। यहच्छया तव संदायमा सुनिः समागमच्छिष्यगणैः परित्रितः। तं वीच्य तुणीम-क्षताईणादिकं रहस्यपासीनस्विश्वकोपहि। तस्मा इमं शापमदाद-सांबुरयं दुरात्माक्ततवुद्धिरय। विप्रावसन्ता विश्तां तसियं यथागज-स्तंत्रमतिः स एव । गुकाउवाच । एवं ग्रष्ठागतीऽगस्त्रोभगवानुपसा-नुगः। इन्द्रयुक्षोऽपि राजर्षिर्दिष्टां तदुपधारयन्। आप्रयः कौन्धरी योनिमात्मधातिवनाशिनीं। इर्थार्चनानुभावेन यहजलेप्यनुस्मृतिरित। परेतु केवलपुरुषोत्तमपदस्य भगवति हरी भूरिप्रयोगात्। हरिर्यथैकः

खुलसा तुष्यते यथा। गकड़पुराणे, गवामयुतदानेन यत् फलं लभते खग। तुलसीयचकेकेण तत्फलं कार्तिके स्मृतं। तथा, तुलसी विना या क्रियते न पूजा कानं न तद्यत्तुलसी विना क्रतं। भृतं तद्यत्तुलसीविवर्जितं पीतं न तद्यत्तुलसीविवर्जितं चनावादि, तुलसीदलसिश्चं यत्तीयं शिरसा वहित्। सर्व्यतीयाभिषेकस्य तेन प्राप्तं फलं ध्रुवं। वेषावास्रते व्यासः, जलक्षिद्रा भवद्यावत्तुलसीमूलस्यत्तिका। तावत् प्रीणाति सगवान् विख्वात्मा पितृभिः सह। सनः-प्रसादजननी सुखसीभाग्यवर्षिनी। आधिव्याधिहरे

पुरुषोत्तमोसत इति कालिदासादिवचनाच पुरुषोत्तमपदं हरी रूढ़ं। अवयवश्ह्या पुरुषावधिकोत्तमत्वं वोध्यते तेन पुरुषोत्तमः कृष्ण इति पुरुषोत्तमभ्यव्दार्थस्तथाहिजोत्तमपदस्य विप्रएव भूरिप्रयोगात् चित्रय वैष्ययोरप्रयोगाच विप्रे रूढ़ि:। एवच्च दिजीत्तमग्रव्देन रूढ़्रा विप्र उतः। दिजग्रव्देन च शत्या दिजलाविच्छन उत्तरस्य च विपेऽभे-दान्वयः। तथा तेनैव दिजपदेन लच्चण्या विप्रान्यदिजडतः। तस्य च लुसस्य वर्षे अन्वयः। अन्यव एकपदे युगपत् शक्तिलचणयोरस्तीकार-ऽपि निर्देश गाविभ तिप्र क्षतिय्गपत् शक्यल व्यार्थवी घेऽनादिव्युत्पत्तिक व्यनात् सप्तस्यर्थभेदस्य उत्तसपदार्थेऽन्वयः। उत्तसपदार्थस्य चामेदसम्बन्धेन विषेऽन्वयस्तेन दिजाभिन्नी विषीविपान्यदिजभिन्नीत्तमाभिन्न इति वोध्यः। अतएव निर्देश्यसप्तमीसमासम्भिप्रत्य वोपदेनैः पुरुषोत्तमपदं पुरुषेषूत्तमः पुरुषोत्तमद्रत्युतां। क्वचिद्न्यत पुरुषोत्तमपदप्रयोगः कर्म-घारयाभिप्रायेण यथा तथा दिजोत्तमपदस्य कर्माधारयाभिप्रायेणैव क्षचित् चित्रयवैश्ययोरिप प्रयोग इति प्राष्टुः। वीरक्षयिक्रयाहतैरिति वीरक्रयरूपाक्रियातयाग्टहीतैरित्यर्थः। विल्वपत्रमिति श्रीक्षणेतर विषयकं न रत्तचन्दनं जात रहियाद्रतप्रयकं। विज्ञपने स्तत्कु सुमै-

नियं तुलिस त्वं नपोऽल, ते। इति नमकारमनः।
श्रियः प्रिये श्रियावासे नियं श्रीधरसत्क्रते। भन्धा
दत्तं भया देवि गृष्टाणाध्यं नमोऽल, ते। श्रियं देष्टि
यशोदेष्टि कीर्तिमायु साया सुखं। वलं पुष्टिं तथा धर्मा
तुलिस त्वं प्रयक्त मे। इयनेन पूजा (७८)।

विश्वधिक्योंत्तरे। पुष्पाभाविऽपि देयानि पत्राणि च जनाईने। पत्राभावे जलं देयं तेन पुष्प्यमवायते। न रत्ने न सुवर्णेश्व न च वित्तेन भुरिणा। तथा प्रसाद मायाति यथा पुष्पैर्जनाईनः। ज्ञानमादायां, नाचतर्र्ज्ञ येदिषां न तुलस्या विनायकं। न दूर्ज्या यजे-हुगां नाम्नातकेदिवाकरं। विश्वपुधक्योंत्तरे, धूपदः सर्जमाप्नोति दीपदः सर्जमसुन्ति। वामनपुराणे। कहि-कास्यं कणं दाक सिद्धकं सागुकं सितं। श्रद्धः

नीर्चयदेवको सतिमत्यागम निषेत्रात्। सम क्षरिद तेरिति मक्षरीं सहितपर्वेयुक्तं कतं पूजनमित्यर्थः। सदालमस्तनामासीत्यन्यः नस्तं मरणं
पुनर्मारणं यत इति मोचदनामासीत्यर्थः। सलं पापं तिहनामिनीति।
पिष्टिभिः सहिति। पितरोऽपि प्रीताभवन्ति मत्सन्तिकतरु ससीसूल
सेककतहरितोषेण वयसुबृता भवाम इति चित्तोक्षासादितिभावः।
पूजितिक तैया संवत्तरप्रदीते पत्रे पत्रे पत्रे पत्रे पत्रे व्यस्तम्।
प्रजीतिक तैया संवत्तरप्रदीते पत्रे पत्रे पत्रे पत्रे प्रकुर्वन्ति तेष्यस्तम्।
प्रजादयोऽपि कुर्वन्ति तुलसी दलपूजनं। हादस्यां ये प्रकुर्वन्ति तुलसीदलपूजनं। यहारामे वनेवापि स्णु तेषान्तु यत्मलं। प्रयागद्यानयक्तानां कास्या प्राणिवमीचिणां। यत्मलं किथतं वेदेस् ससीपूज्ञ
नेनतत् (७८)।

नाचतैरिति। एकादशस्त्रस्य श्रीधरसामिभिनीतुलस्यानशार्धिप-मिखन नकेतक्यामहिखरमिति पाछोलिखितः। स्वास्तरिनिधेदस्य-स्वादिपदमाहचर्यात् पत्रपुषादिवत्तर्खुलस्योपचारतया दानपरः एका-

जातिषालं श्रीभे धूपानि खुः प्रियाणि वै। किता मांसी। वाषां साहिच्याच्यगुलुः। सितां कंपूरां। सितिताठे सिता मर्करा। महीन ही मीने विचारि कालिकापुरागे, गर्भं पुष्पं धूषदीनी उपचारांस्तया परान्। ज्ञाताचिवेदा देवेभ्यो नरीनरकमाप्रयात्। न भूमी वितरेडूपं नासने न घट तथा। यथातथा-धारगतं क्रत्वा तं विनिवेदयेत्। तथा, सर्वंसहा वसुमती सङ्ते न त्विदं इयं। यकार्यपादघातञ्च दीपताप' तथैव च। तथा, नैत्र निर्ज्ञापयेहीप' देवार्थ-मुग्काल्पित'। दीवहत्ती भवेदमः काणीनिर्ज्ञापको-भवेत्। विशा धर्मीत्तरे, यावदिविनिषाणि दीवीदेवा-लये ज्वलित्। तावदर्धसहस्राणि स्वर्गलोकी महीयते। तया, यः कुर्यात्तेन कमाणि सादमी पुष्पितेचणः। तेन देवदत्तदीपेन, विषाु संहितायां। पृतं तिखतैलं विना न विश्विद्दीयार्थद्रति। द्यादिख्दीयते। नर-सिंहपुरागी, सोचर्न पनसं जस्यं तथान्यज्ञवलीफलं। प्राचीनामलकं श्रेष्ठं सधुकोडुम्बरं तथा। यत्रपक्रमपि याद्यं कदलीपालमुत्तसं। प्राचीनामलकं करमईकं। बराहपुराणं, अपर्यावितयक्वानि दातव्यानि प्रयक्षतः।

दगस्त से गत्सपुष्पाचातसग्भिर्धपदीपोपचारकीः साङ्गं संपूजा विधिवत् स्तवैः सुत्वा वमेद्वरिमित्यवाचतदार्मावधानं तिसकासङ्गरादि विषयक-पिति श्रीधरस्वामिषरणाः। पुष्पप्रतिनिधि तण्डुस दानिष्धिकं ना-खतैरिति वचनमिति तस्त्रसारक्षतः। तेनाध्यादौ न तण्डुसदानिष्धि रति वोध्यं पञ्चानस्वीति प्रवनस्वी विधानात् चरिभक्तिविसास्थतविष्यं- खगडाच्यादिक्षतं पक्षं नैव पर्ध्य जितं भवेत्। ब्रह्मगडपुराणे, ताम्बुलमुज्ज्वलं दद्याद्यो विप्रेम्यः समाचितः।
शिवाय कोशवायाय नाकलोको स पूज्यते। श्रीभागवते, यद्यदिष्टतमं लोको यद्यापि प्रियमात्मनः। तक्तविवेदयेन्मद्यं तदानन्त्याय कल्पाते। सद्यं वासुदेवाय।
विष्णु संहितायां, नाभच्यं नेवेद्यार्थे भच्चेष्यज्ञामहिषीचीरे वर्जयेत् पञ्चनखसत्स्थवराह्मांसानि चिति। ना
भच्यमिति यद्यांस्य यदभच्यं खद्दपतोलश्चनादि तत्तेन
न देयं नतु रावी दध्याद्यपि। पञ्चनखश्च शशाति
रिक्तः। मार्गं मांसं तथा च्छागं शाशं समुपयुच्यते।
पतानि हि प्रियाणि स्यः प्रयोज्यानि वसुन्थरे, दति

धर्मात्तरवचने प्राणिजात निषेध: द्रव्यान्तरिमिलित निष्विव्यतिरिक्तपर:।
तडचनच तथैव ग्रभगन्धा ये धूपास्ते जगतीपते:। तथा न यचधूपं
वितरेत् माधवाय सकाग्रन'। यचधूप: सर्जरस: कासनीष्टचभेदः, ग्रव यचधूप: केवली निषिद्ध: षोड्ग्राङ्गे तस्य विच्नित्वात्। तथा विना स्गमद' धूपे प्राणिजात' विवर्जयेदिति।

अकार्यपादघातं निष्प्योजन पादघातं। दीपतापं तर्धेषचेति कालिकापुराणे तैजसं दारवं लोहं मार्त्तिकं नारिकेलजं। हण-राज भवम्बापि दीपपातं प्रशस्ति। दीपत्रचाय कर्त्तव्या स्तैजसा-यैव भैरव। हत्तेषु दीपोदातव्योनचभूभी कदाचन। द्याद्यया च पृथिवी तापं नाष्ट्रोतिवै तथा।

मोचनं नदलीफलं तत्वविशेषमाह यत्वपन्तसपीति एतेनान्येषां यत्वपन्नं नयाद्यमितिवोध्यं। उज्ज्वलं गुवानखदिशदियुक्तं। तदाः नन्त्याय कल्पात दति श्वानन्त्याय अनन्तफलायमी ज्ञायिति यावत्। वामन-पुराणे। हविषासंस्कृता येच यवगोधूमशालयः। तिलसुद्गाद्यीमाषा मौहयस प्रिया हरेरिति। खक्पतः नतुकालविशेषद्रव्यविशेषसम्ब-

वराहपुराणे भगवदाक्यात्। तथा, माहिषञ्चाविक' कागमयाज्ञिकमुदाहत'। माहिष' वर्जयन्यास' चीर' दिध घतं तथा (७६)।

देवलः, चाग्डालेनशुना वापि हष्टं हविर्यान्निकां। विड़ालादिभिक्षिष्टं दुष्टम इं विवर्जयेत्। अन्य च हिर-ग्योदनस्पर्भादिति। कालिकापुरागे, यस यहीयते वस्त्रमलङ्कारादि विञ्चन। तेषां दैवतम् चार्यः क्रत्या प्रीचगपूजने। उत्सुज्य सूलसन्तेग प्रतिनासा दयेत्। प्राचणादिलचणन्त, उत्तानेन तु इस्तेन प्रीचणं समुदाइतं। न्यञ्चताऽभ्युचणं प्रीक्तं तिर-श्वावोचण' स्मृत'। विषा्धकीत्तरे, द्रव्याणां तत्तहैव-तमिधाय। ग्रहन्त सर्वदैवला यदन्तां दिजीत्तमै:। तज्ज्ञेयं विष्णुदैवत्यं सर्जं वा विष्णु हैवतं। गोतमः। यनार्जानु करं सल्वा सक्ष्यन्तु तिलोइकं। फलां-गमिसस्थाय प्रद्याच्छ्डयान्वितः। योगियाज्ञवल्काः, अहप्रविग्रहोदेवीभावग्रास्थीमनीसयः। तस्थोद्धारःस्मृती-न्धेन। तेनिति तेन वर्णेनित्यर्थ:। सार्गं सगसम्बन्धि, साहिषंसहिष सम्बन्धिचौरादि। आविक' अविक्षीष स्तंत्सव्वश्चिचौरादि। उत्तरार्वे चीरादिदर्भनात् (७६)।

हस्त नितंजलप्रचेपद्रतिशेषः अध्यचीत्तरचायन्य न्यञ्चताऽधोमुखेन-हस्त नित्यनुषङ्गेनान्यः तिर्या वक्रेणहस्त नावोच्चणमिति वचनमिदं वर्षमान्धतं ब्रह्मसंहितासम्बन्धि। भावयाद्यः भक्त्यायाद्यः भक्त्याद्यः भक्त्यायाद्यः भक्त्याद्यः भक्त्याद्यः भक्त्यायाद्यः भक्त्याद्यः भक्त्यायाद्यः नतुवहिरिन्द्रियेण। उत्पत्तिस्थानानीति अकारादय एव सन्धिवशेनप्रणवभावसाप्ता दत्यर्थः। विश्वारिति नामनाभिनोरभेदोपचारेण वचसां पतिरितिसर्व्धेषां वर्णाना नाम तेनाहृतः प्रसीहित । विषापुराणे, योद्वाराभगवान् विषापित्रधामा व्यसाम्प्रतिः । तटुचारणतस्ति
तु विनाणं यान्ति राचसाः । चिधामा चीण्यकारीकारमकारक्षणणि धामान्यु त्पत्तिस्थानानि यस्य स्
तथा । तथा, गत्वा गत्वा निवर्त्तन्ते चन्द्रसूर्थादशीयहाः । यद्यापि न निवर्त्तन्ते चन्द्रसूर्थादशीगर्माः । यद्यापि न निवर्त्तन्ते चाद्रणाचरचिन्तकाः ।
नारसिंहे, सर्ववदान्तसारार्थः संसारार्णवतारकः । गतिरष्टाचरो णृणामपुनभवकाङ्गणां । यस्य यावांस्तु विश्वाससस्य सिवस्तु तावती । एतावानिति नेतस्य प्रभावः
परिमीयते । तथा, हत्पुण्डरीकसध्यस्यं गङ्गचकगदाधरं । एकाग्रमानसोध्यात्वा विष्णुं कुर्व्याञ्चपं विजः ।
तथा, यष्टाचरस्य मन्वस्य ऋषिनीरायणः स्वयं । क्रन्टस्य
देवी गायन्ती परमाद्या च देवता । नमोनारायणा-

प्रणवस्य पूर्वक्षवादितिभावः, तथाहि श्रुतिः, चलाक्ष्वाक्परिमितानि वदानि विदुर्वाद्याणा ये मनीपिणः गृहायां त्रीणि निहितानि नेह्नयन्ति त्रियां क्वोमनुष्यावदन्तीति श्रस्यार्थः वाचः ब्रह्माधिष्ठितलेन ब्रह्मक्ष्पप्य पर्यते क्रायते परतत्त्वमनेनितपदानि सक्पाणि चलार्थेव ये मनीपिणस्ते जानन्ति श्रन्तर्वृष्टलात्। तेषु पदेषु चौणि मृहायः मृह्णाधारमणिपूरकविश्रहचकोषु निहितानिसमुद्भूतानि नादपश्यन्याख्यभाख्यानि नेङ्गयन्ति न सक्पं प्रकाशयन्ति स्ट्रमक्षक्पतात्, श्रत्राख्यभाख्यानि नेङ्गयन्ति न सक्ष्पं प्रकाशयन्ति स्ट्रमक्षक्पतात्, श्रत्राख्याख्या विषयिवर्णक्पं खूललात् मनुष्या वदन्ति जानन्ति। एकाद्यो च। मयोपद्यं हितं भूमाब्रह्मणानन्तश्रक्तिना। भूतेषु घोषक्पेण विषयूर्णक लक्षते। मयेतिभगवदाक्यं उपवं हितं श्रन्तर्यामितयाः प्रिष्ठतं मूलाधारे उद्भूतं श्रव्यदमितिशेषः श्रन्तर्गतत्वेऽप्यपिक्तित्वामार्थानित्वेऽप्यपिक्तित्वेऽप्यपिक्तिराधः श्रन्तर्गतत्वेऽप्यपिक्तित्वेऽप्यपिक्तिराधः श्रन्तर्गतत्वेऽप्यपिक्तित्वेऽप्यपिक्तिराधः श्रन्तर्गतत्वेऽप्यपिक्तित्वेऽप्यविकारमाह ब्रह्मित श्रविकतस्यापि नियन्ति भूक्षेति श्रव्वतिस्यापि नियन्ति भूक्षेति श्रित्वेऽप्यविकारमाह ब्रह्मित श्रविकतस्यापि नियन्ति भूक्षेति स्वतिभित्वेऽप्यविकारमाह ब्रह्मित श्रविकतस्यापि नियन्ति भूक्षेति स्वतिभित्वेऽप्यविकारमाह ब्रह्मित स्वतिभाषिति स्वतिभाष्टि स्व

विति मन्तः सर्जार्धसाधकः। भक्तानां जपतां तात स्वर्गमोचप्रदायकः। जपमानसंचित्वगणेचकारपाठाद्यक्त-वचने मानसं च जपण्यदार्धसिद्धः। देवतां ध्यायन् जपं कुर्ध्वादिखादिवा ध्यानमनाङ्गमुक्तः। यत्तु, मन्तार्ध-चिन्तनाभ्यासः सज्कोमानसोजपः। दृख्यनेन ग्रद्धार्थयो-श्विन्तन मुक्तः त्रवापि जपण्यद्वलाच्छद्यचिन्तनः प्रधानः श्वर्थिचन्तनन्त्वङ्गं। तथाच योगियाज्ञवल्काः, वाच्यः सर्देश्वरः प्रोक्तोवाचकः प्रणवः स्भृतः। वाचकेऽपि च विज्ञाते वाचाएव प्रसीद्ति। श्वराप्य, धारयेन्मनसा मन्तः जिह्नौष्ठा नेव चालयेत्। श्वभावे त्वचमालायाः कुण्यन्या च पर्व्यगा। हारीतः। मन्तार्थज्ञोजपन् जुह्नत्त्रयेवाध्यापयन् दिजः। स्वर्गलोकमवाद्वीति नरकत्तु विपर्याये। नरकत्तु विपर्यय द्रतिनिन्दा मन्तार्थज्ञान-प्रगंसापरा मञ्चेकवाक्यत्वात् नतु सर्व्या निषधपरां।

न्तृतं घटयति अनन्तग्रितिनित भूतेषु सर्व्व प्राणिषु घोषरूपेण नादकृपेण लच्चते सनीविभिः। अतः स्ट्यते दृष्टान्तमाह विषेषु उर्णातन्तुरिवृति। अयञ्चग्रदः प्राणमय उच्चते प्राणोषादानकलात् ततो
नाभिदेशे मणिपुरकाख्ये तदेवाङ्ग्तं पध्यन्याख्यं सनीमयं मणीविणां
मनोमात्रगोच्चरत्वात्। ततो हृदि विग्रद्धाख्ये चक्रो समुद्भूतं स्ट्यामोङ्काररूपं भवति। इद्मिन्द्रियमयं मध्यमाख्यं तदेव कण्ठगतं वैखश्वाख्यं स्थूनरूपं तिषष्टिवर्णमयं व्यक्तं भवतीत्योद्धारस्य वर्णोपादानत्वं नचोङ्कारस्य अकारादिवर्णघटितत्वात् कथं सर्ववर्णोपादानत्वमिति वाच्यं कण्ठगतस्योङ्कारस्याकारादिवर्णघटितत्वेऽपि हृद्गतस्य नतदृघटितत्वमिति सामञ्जस्यात् तस्याकाराद्यघटितत्वेऽपि तद्घितस्थूलोङ्कारोपादानत्वात्ममानाकारत्वाच तिवदित्यनेनाभिधानं ब्रह्माविभी-

अन्यया, वेदाधीपनिवस्त्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतं। मन्वर्धविपरीता या सा समृतिर्न प्रशस्त्रे, दृति वह-स्पयुक्तिर्विषदा खात्। मनुस्तु क्रमाच्छ्रे छामाह। यत्तेस्या-यस्यिनः श्रेष्ठायस्थिभ्योधारिणोवराः । धारिभ्योद्धानिनः श्रेष्टान्तानिभ्योव्यवसायिनः। यन्यिनोयन्यसापेचपाठिनः, धारिणस्तरनपेचपाठिनः, ज्ञानिनोऽधीतणास्त्रार्धनाः, एवं, वेदस्याध्ययनं सर्जे धक्तीशास्त्रसा चापि यत्। अजानतीऽर्थं तत्सर्वं तुषागां काइनं यथा, इति व्यासवचनं तघैव व्याख्येयं। व्यवसायिनः शास्त्रार्थानु-ष्ठायिनः। जवविधिमात्त पुरश्चरगचन्द्रिकायां। क्रिनष्ठा-नामिका सधा चतुर्धी तर्जनी मता। तिस्रोऽङ्ख्य-स्विपर्वागीसध्यसा चैकपर्विकां। पर्वे हयं सध्यसाया-जपकाले विवर्ज्ञयेत्। एनं सेसं विजानीयाद्षितं वज्ञत्वात् वह्यत्वभिधानञ्च। वेदोत्पत्तिः वैराजास्यवह्यणोसृलाधारादि क्रमेणैवं रीत्यावीध्या। दादशे च, ततीऽभूत् विवदीङ्वारीयीऽव्यक्त-प्रभवः खराट्। यत्तिक्षः भगवतो ब्रह्मणः परमिष्ठिनः। तिहत् विभावः चत्रातः प्रभवो यस्य सः। स्वराट् मनीविणां इदि सत एव प्रकाशमानः । तदेव कार्योण लच्चयति यत्तदिति नपुंसकत्वं लिङ्गभव विशेषणत्वात् लिङ्गं गमकमिति। अत्र श्रीधरस्वामिष्टताभियुक्तस्रोकः। था सा भिवाव रूपसदनादु चर्न्ती विषष्टिं वर्णानन्तः प्रकटकरणैः प्राणसङ्गत् प्रस्ते। तां पश्चन्तीं प्रथममुदितां मध्यमां वुडिसंस्थां वाचं चक्रोकरणविग्रदां वैखरीच प्रवद्ये। अत सन्दर्भः। या सा पराख्या मित्रोऽग्निर्वहणः सोमस्तयोः सदनं आधारचक्रं तस्मात् प्राण-सङ्गेनोचालो खयमेव स्त्मभुद्रवलो विषष्टिवर्णान् प्रस्ते दत्वर्थः। की अन्तकरणाध्या प्रकटकरणेन च। अतस्तां प्रथममुदितां पश्यन्याख्याः स्कः पति नत्वारयित या तां प्रयसां तथा वृद्धसंस्थां उचाः

तृ। तर्जनीमूलपर्यानां जपेह्यमु पर्वं सु। यहुलीनं वियुद्धीत किञ्चित् सङ्घोचयेतलं। यहुलीनां
वियोगे तृ किद्रेषु स्वते जपः। यहुल्ययेषु यज्ञप्तं
यज्ञप्तं मेसलङ्गा। पर्वसिष्धु यज्ञप्तं तत् सर्वं निष्मलं भवेत्। यन्ततन्त्रप्रकाभि, तवाहुल्जिपं कुर्वन् साहुष्ठाहुलिभिजेपत्। यहुष्टेन विना कर्म कृतं तद्फलं भवेत्। सन्तकोषे, हृद्ये हलमादाय तिर्वक् कृत्वा कराहुलीः। याद्धाय वासमा हता दिल्पेन सदा जपेत्। कृत्वान्तरमाह, यनुलोमिवलोमस्थेव्विन्दुयुद्धात्वकाचरेः। चनेसकोः साष्टवर्गः कृतया वर्णमालया।

स्यामीति विचारयुक्तां सम्बमां करणविश्वदां स्थानप्रयत्निर्मालां वैखरीं प्रपद्मदित । विषष्टिवर्णा वीपदेवसतानुसारेणीचन्ते । यवयं द्वयं उवयं च्ह्वयं एवो हुस्र त्वाभावादेवाष्टा विसर्गानुसारजिहाः स्लीयोपाधानीयायत्वार इति सर्भवंश्वतिः । कक्तारादिसकारान्ताः पञ्चवंश्वतिः यवलाः सानुनासिका निरनुनासिकायित षट् रश्यसहाः दित पञ्चिति सिल्तित्वा विषष्टिरिति । एवं स्थूलोङ्कारस्य ब्रह्मणःकप्रदे प्रथमोङ्कतत्वात् ब्रह्मवाचकत्वाच सर्ववर्णात्तमत्विति । दादशाचरः प्रथमोङ्कतत्वात् ब्रह्मवाचकत्वाच सर्ववर्णात्तमत्विति । दादशाचरः प्रभाभगवते वासदेवायिति सन्तः गतिभगवत्प्राप्तिहेतः ज्ञान्हेतुर्वाः यावान् यावत्मलविषयकः तावती ताविद्वषयिणी सिद्धिल्ताः । एकाप्रेति प्रत्याहृतचित्तेन विणुं ध्यात्वा जपेदित्यर्थः । ऋषिरिति प्रथमं सन्तं गटहीत्वा तत् साधकीऽपि ऋषिः, महेष्वरसुखाद ज्ञात्वा यः साचात् तपसा सनुं संसाधयतिग्रहाता स तस्य ऋषिरीरितः, इति गौतमौयात् । नारायणा धर्मपुत्ततयाऽवतीर्णः । परमात्मा सर्वान्तर्याभीः विग्रः । नरसिंहपुराणे नित्यत्वमाह यथा । यष्टाचरेण देवेगं नर सिंहमनामयं । गट्यपुष्पादिभिर्नित्यमर्वयेदच्यतं नरदित । जपेति

प्रधेकं वर्णयुद्धन्वा जप्ताःस्यः चिप्रसिद्धिदाः । तामाहः, अकारादिलकारानां पञ्चाशन्याणिसूचकां। चकारं मेक्-संस्थाने लकारादिविलास्तः। वर्गाष्टकविभेदेन गृत-मष्टोत्तरं भवेत्। वैरिमन्ता अपि नृणा मन्ये मन्त्राश्च किं पुनः। अकारादिलकारान्तता अनुलोसता लका-राद्यकारनता विलोमता चकारस्तु मेहतया न संख्या-घटकः। साष्टवर्गेः अकचटतपयशवर्गयुतैः। एकैका-न्तरितं मन्तं जपेदेवं फलप्रदं। अन्य व च। नाड़ीगतानादिचान्तवर्णान् विभाव्य च। वर्णं विनदु युतं क्रत्वा श्रेष्ठं मन्तं जपेत् पुनः। अकारादिषु संयोज्य तथा कादिषु च क्रमात्। तदा लि निर्भवेदणी मालाईश्तसंख्यया। अनया सर्व्य मन्त्राणां जपः सर्वार्ध-साधकः। विद्यान् वाग्मी श्रिया युक्तोमान्योद्भतकविर्भ-वित्। ग्रिया शिक्तमूचेणिति तन्वान्तरदर्शनात् कुण्ड-लिनी स्वलेन भावनीया। जयसमपेणमाह, गुद्धाति-गुहागोप्ता त्वं ग्रहाणास्मत् कृतं जपं। सिंडिर्भवतु

जपधातुरित्यर्थः। मानसेचिति चकारेण व्यक्तवचनलाभः रपलपजल्यव्यक्तायाखाचीतपूर्व्वोक्तानुकर्पादित्यभिप्रायिणाह व्यक्तवचन इति।
श्रवव्यक्तत्वं निजकर्णगोचरत्वं तथाच जिह्नाष्ठीचालयित् किञ्चित् देवतागतमानसः। किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्थादुपांग्रः स जपः सृतः। तथा
तन्वेव। मानसः सिंडिकामानामुपांग्रः पृष्टिमिच्छतां। वाचिकीमारणे
शस्तः कथितं जपलचणं। वाचिकः प्रस्सुटाचरः। तस्य निन्दामाह
तन्त्वमारे। मनसा वा जपेत् स्तोवं वचमा वा मनुं जपेत्। उभयं
निष्कलं याति भिन्नभाग्छोदकं यथा इति। देवतागतमानस इति
जपाङ्गतयोक्तं ध्यात्वाविश्णमित्येकवाक्यत्वात् तव कृष्पत्ययेनानन्तर्थस्था-

मै देव त्वत्प्रसादास्विय स्थित । मन्ती य्लोकं पिठत्वा तु दचहर्सन विषावे । मृलानुनार्वतोयेन दचहर्स निवेदयेत् । अनुर्मन्तः । विद्याकरधतं, सहमुं वा शतं वापि दशवानुदिनं जपेत् । कुर्धादष्टाधिकं तेषामिति जप्ये विधिः स्मृतः । तन्त्वान्तरे, विचेशादयवालस्थात् जपहोसार्चनान्तरा । उत्तिष्ठति तदान्यासं पड्डं विन्यसेत् पुनः । पञ्चरात्रे, अपवित्रकरोनानः शिरिस प्राहतोऽपिवा । प्रचरन् वा जपेद्यावत्तावद्विप्पल-मुच्यते । विष्णुपुराणे, सर्ववेदेषु यत् पुण्यं सर्वं-

विविच्चितत्वात् तचध्यानं मानमं शाब्दवोधरूपम्बेति। लच्णमाह गीतमीय। धिया यदच्रत्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकां। उचरदर्धमुद्दिश्य मानसः सजपः स्मृतः इति उचरेत् भावयेत् श्रवापि देवताध्यानमङ्गं। मन्त्रार्थिचन्तनित, मन्त्रार्थयोश्चन्तनित्यर्थः। अभ्यासः द्गाष्ट्रस्यादिभेदाय। वाचके च परिज्ञाते इत्यन्तेन वाचेकज्ञानस्यैक जपत्वमुतं तत्साधातया वाचाज्ञानमाइ वाच एवेति प्रसीदित ज्ञान-विषयतया प्रमन्ता भवति। तथा व्याख्येयं, गर्यत्तस्य प्रशंसापरतया व्याख्येयं जपविधिं पर्वादिनियमपूर्वजपविधिं। चतुर्थीति, तर्ज्जनी विशेषणं तासु सधा इति पुरणीयं। तिस्रः कनिष्ठानासिकातर्ज्ञन्यः मधामाया एकपर्व्य इणनिर्देशात् वर्ज्जने हितुमाह एवमिति, एवमक गिष्टमधामापर्वदयं दशपर्वे खिति नात्रपातिलोम्येन जप स्तथाविधाना-भावादितिवोध्यं। किं पुनरिति सिध्यन्तीतिमेषः। ब्रह्मनाडी सुषुमा-मधावर्त्तिनीसृद्धाधाराद्वसारस्यगता। आदीति अकारादीत्यर्थः। तन्ता नारदर्भनादिति कुण्डलिनीति ब्रह्मनाडीयया ब्रह्मरस्य गतित्यादिः। अवानुलोमेन विलोमेनच शतजपान्तरमष्टवारजपेतु अकवर्गादिवर्णा-नामेकैकस्यान्तिमं कर्णं विन्दुयुतं क्रत्वं।मन्त्रं जपेदित्यर्थः। अयञ्च जपः मारसएव तथाच सनत्वुमारतन्त्रे। क्रमीत्क्रमगर्तमीलामात्र कार्णः चमेरकः। सविन्द्कः साष्टवीरन्तर्यजनकर्माणीति अनुर्भन्त

तीर्घेषु यत् पानं तत् पानं नर् याप्नीति स्तुत्वा देवं जनाईनं। स्कान्दे, यहन्यहनि योसर्थागीताध्यायन्तु संपठित्। दाचिंगदपराधेच यहन्यहनि सुच्यते। ते चापराधा वराहपुरागे दर्शिताः (८०)।

श्रीभागवते। नानातन्वविधानेन कालावि तथा
गृगा। ध्येयं सदा परिभवव्रमभीष्टदोत्तं तीर्थास्पदं
शिवविरिश्चिनुतं गरण्यं। स्व्यात्तित्तं प्रणतपालभवास्मि
पोतं बन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दं। त्यक्षा
सुदुस्त्यजमुरिसितराज्यलक्तीं धर्मिष्ठ चार्य्यवचसा यद्
गादरण्यं। सायास्गं द्यितंयसितमन्वधावद्वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दं। एवं युगानुह्मपास्या भगवान्
युगवित्तिभः। मनुजैरिज्यते राजन् श्रेयसामी ख्रिशेहरिः।
सुत्वा प्रसीद भगवित्तिवन्देत द्गडवत्। शिरोमत्

इति अनिति जीत्रत्यंनेन सननविषयेणित व्युत्पत्तेः जीवनञ्चविष्यणं सामान्यग्रव्स्य विशेषपरत्वात् यहा धातूनासनेकार्धत्वात् अनधातोर्धनेनार्धकत्वादिदं। तेषां श्रतानां सहस्राणाञ्च नतु दश्रवाहत्रस्थापि परामर्थः। संख्यानुक्ती श्रतं साष्टं सहस्रं वा जपादिष्विति सहाकपिन पञ्चराव्यवनस्वरसादेवसत्रसंख्यानुक्तावित्युपादानात् यत्र कास्यविधी श्रतं सहस्रयोरिवोपादानं तत्र नाष्टाधिक्यं नित्यतेसिक्तिकपूजादाङ्गजपादौ चाष्टाधिक्यनियस इति वोध्यं। विचेपात् विषयान्तरानुसन्धानात्। अपविव्यक्तरः पादादिकरः कुश्रपविव्यक्तिस्ति व्यायतिस्वादिना। प्रत्यविव्यक्तरः सर्व्यक्षेदेष्विति अधीतेषु इति श्रेषः सर्व्यतियेषु वासादिना (विश्वान्तरमुक्तरम् सर्व्यक्षेदेष्विति अधीतेषु इति श्रेषः सर्व्यतियेषु वासादिना (विश्वान्तरमुक्तरम् सर्व्यक्षेत्रस्वान्तरम् सर्व्यक्षेत्रस्वान्तरम् सर्व्यक्षेत्रस्वान्तरम् सर्व्यक्षेत्रस्वान्तरम् सर्व्यक्षेत्रस्वान्तरम् सर्व्यक्षेत्रस्वान्तरम् सर्व्यक्षेत्रस्वानिष्यः सर्व्यक्षेत्रस्वान्तरम् सर्व्यक्षेत्रस्वानिष्यः सर्व्यक्षेत्रस्वानिष्यः सर्व्यक्षेत्रस्वानिष्यः सर्व्यक्षेत्रस्वानिष्यः सर्वित्रस्वानिष्यः सर्वित्रस्वानिष्यः सर्वित्रयेषुः वासादिना (विश्वान्तरम् सर्व्यक्षेत्रस्वानिष्यः सर्वित्रस्वानिष्यः सर्वतिष्यः सर्वित्रस्वानिष्यः सर्वित्रस्वानिष्यः सर्वित्रस्वानिष्यः सर्वित्रस्वानिष्यः सर्वानिष्यः सर्वित्रस्वानिष्यः सर्वित्रस्वानिष्यः सर्वित्रस्वानिष्यः सर्वित्रस्वानिष्यः सर्वानिष्यः सर्वानिष्

ही प्रणतपाल ही सहापुर्व इति संस्वोधनद्यं धेरयं ध्यानाहें सदेत्यस्य सर्वत्रसम्बन्धः धेरयत्वे हितवः प्रस्थित्याद्यः। असी पार्योः कृत्वा वाहुश्याञ्च परस्परं। प्रवन्नं पाहि

पामीण भीतं स्त्युणहाणीवादिति, भगवदाक्यं।

स्मृतिः, न देवं पृष्ठतः कृत्वा प्रणामं कृचिदाचरेत्।

वरमुत्याय कर्त्तव्यं न तथा भमणञ्चरेत्। एतदित्रणीति

पश्चात् कृत्वा तु बोदेवं स्वसित्वा प्रणमेन्नरः। तस्यै
हिकं फलं नास्ति न परच दुरात्मनः। तथा स्रान्वा

चतुःपार्श्वं श्रीकृषां बोनमेन्नरः। साष्टाङ्गप्रणिपातेन

तस्य मृत्तिः करे स्थिता। स्कान्दे, श्रवं कृत्वा तु

गङ्गेन यः करोति प्रदृष्तिणं। प्रदृष्तिणीकृता तेन

सप्तदीपा वसुस्थरा। वास्नपुराणे, चिःप्रदृष्तिणं यः

कुर्व्यात् साष्टाङ्गकप्रणासकं। द्रशास्त्रसेधस्य फलं प्राप्नुया
नाव संश्यः। नारसिंहे, उरसा शिरसा दृष्ट्या वचसा

परिभवस्तिरस्कारस्तं हन्ति दूरीकरोति यस्तं तीर्थास्यदं गङ्गादितीर्यानामात्र्यत्वेन महापावनं। प्ररखं सर्व्ववामात्र्यणीयं अधिकारिविशेषनिरपेचभजनीयमिति यावत्। भवाश्चिपोतं संसाराणैवतारकं त्यक्केति यदगात् इत्यच यत् य इत्यर्थः सार्यस्य गुरोर्दगरयस्य वचसा। सायास्यगं साययाष्ट्रतस्वर्णभयस्यग्रूपं राच्चमं दियतया
सीतया एतेन भक्तवण्यता सूचिता। यद्दा यदिति चरणारिवन्दिविशेपणं ते तव यचरणारिवन्दं प्ररखं त्रगात् सायास्यगं अन्वधावत्।
हे धिर्मिष्ठ ते तवतचरणारिवन्दं वन्दे इति। सन् कलाविप तथास्यण्याः
त्वनन्तरं। कण्णवर्णं त्विषाक्षणं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदं। यद्गः संकौर्तनप्रायर्थजन्तिहि सुमेधस इति वचनमस्ति तन्त्वविधानेनिति,
कलौ तन्त्रस्य प्रायस्तं द्यातयति। कण्णिति वर्णोनाम यस्य कण्णोवणीं
यस्येति समासाभ्यां नामतीरूपत्य कण्णावतारोद्यर्थितः ननु कण्णवर्ण्त्वे
रूचता स्यादतः साह त्विपित इन्द्रनीलमण्यित् उञ्चलमित्यर्थः। सङ्गानि
हृदयादीनि उपाङ्गादीनि कौस्तुभादीनि सस्त्राणि सुदर्गनादीनि पार्षदाः

मनसा तथा। पद्मां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाइदेितः। विषाधमीतिरे, जानुभ्याञ्चेव पाणिभ्यां शिरसा
च विचचणः। कृत्वा प्रणामं देविशे सर्व्यान् कामानवापुयात्। किष्ठताञ्चलिभि नेमुरिति भागवतीयात्
शिरोऽञ्चलिसंयोगोऽपि नमस्तारः। स्पृतिः, देवताप्रतिमां दृष्ट्या यतिञ्चेव विद्याद्धनः। नसस्तारं न कुर्याचे दुपवासेन शुद्याति। ब्रह्मपुराणे, यत् किञ्चित् क्रियते
कमी सदा सुकृतदुष्कृतः। तत्सर्ञः त्विय संन्यसं
त्वत्प्रयुक्तः करोभ्यहः। दृत्यनेन समर्पयत्। भागवते,
मन्तदीनं क्रियादीनं भिक्तदीनं जनाईन यत्पृज्ञितं मयादेव परिपृणे तदस्तु मे। पृज्ञानन्तरः शङ्कपृजामादः
मन्ततन्त्रप्रकाशे। पृज्येद्वस्थपुष्पादीः शङ्कः वे देववदुधः।

सुनन्दादयः तैः सहितं यज्ञेरचेनादिभिः संकीर्त्तनं नामक्पगुणादि-वचनं तत् प्रधानेः यजन्ति याराधयन्ति तन्त्वविधानेनेत्वनेनास्यान्यः। संकीर्तनमेव धेयमिति श्लोकद्वयं अच रामचन्द्रवन्दनकथनं श्लोक्षण्यः श्लोरामयोरेकक्पत्वं दर्भयति। युगानुक्षपाभ्यां नामक्षपाभ्यां युगानुक्षपत्त्वञ्च कली लोकानां जड्त्वादिदोषवाञ्चल्यात् ध्यानाद्यनधिकारिणा-सुद्रारायाविष्कृतपरममङ्गलायनत्वं। एतच निम्नं प्रति श्लोकरमाजन-वाक्यं। भगवदाक्यमाञ्च स्तुत्वेति, भगवन् प्रसीदेत्युक्तावन्देतित्वन्यः। पादयोः पादयोर्भध्ये परस्परं मिलिताभ्यां वाञ्चभ्यां सहित वाञ्चभां दिच्चणोत्तराभ्यां परस्परं समदिच्चणोत्तरीपादी ग्रञ्जीत्वा यदा पृष्ठतः परस्परनिवन्धाभ्यामिति स्त्रामिपादाः प्रपत्रं पाङ्गीत्वाद्युच्चरन्। ग्रतुः यहः संसारः स एवार्णवस्तस्मात्। स्थानस्य संकीर्णत्वेऽप्याञ्च वर-मुस्यायितिकर्त्तव्यमिति करिष्रारः संयोगक्षपमितिवन्दनमिति श्रेषः। एतिः हणोति प्रणामस्य हथात्विवरणः। दशास्त्रमधस्येति श्लानुपिङ्कं नारसिंहे, यतः प्रश्वित निकील्यं मा लङ्घ महामते।
नरसिंहस्य देवस्य तथान्येषां दिवीकसां। भविष्ये, यश्व
पूज्यते देवान् ब्राह्मणोद्रव्यलोभतः। स्र्या भरतशार्दृल
स याति नरकं ध्रवं। सृष्या वेतनेन। देवलः, दृष्टं
दत्तमधीतञ्च तप्तं वाप्यात्मना तपः। प्रयक्त्यपरेभ्यश्व
धनार्थं धन्नीविज्ञयी। संवत्सरप्रदीपे, विष्णालयसमीपस्थान् विष्णु सेवासमागतान्। चाण्डालान्
पतितान् वापि न स्पृष्ट्वा स्नानमाचरेत्। उत्सवे वासुदेवस्य स्नायाद्योऽश्विणङ्गया। ताद्यं कल्मषं दृष्ट्वा
सवासा जलमाविश्वेत् (८१)।

श्रय हादशीनियमाः । हादखामि विषापूजनं । एकादश्यां प्रकुर्व्वन्ति उपवासं मनीषिणः । उपासनाय हादश्यां विष्णोर्यहद्यिन्तया, दृति भविष्यपुराणात् । यहदिति, यथा हादश्यां विषापूपासनाय एकादश्यामुपवासं

भृयैनितुष्यः। दशाखिमधी पुनरित जन्म क्षणप्रणामी न पुनर्भवाय द्रितियोमच्छ इराचार्य्य धतवचनात् मुक्तिरेवफलिमिति। त्वयोति राज्ञि भृत्येनेविति श्रेषः त्वत्प्रयुक्तं त्वदर्धं त्वत्प्रीत्यर्थमेविति यावत् अन्तर्यामणा त्वया प्रवर्त्तितत्वादितिभावः। देववद्द्धं द्रित अत्र देवाधिष्ठाना-दितिभावः अत्र संवत्सरप्रदीपं पुराणसर्वस्वेच स्कन्दपुराणं। न भूमौ स्थापयेत् शङ्कं कदाचिद्रिय मानवः। विश्णोः पूजावसानेतु शङ्कमिवं समर्चयेत्। ॐ त्वं पुरा सागरोत्पन्ने विश्वानाविधतः करे। निर्मितः सर्व्वदेवैश्व पाञ्चजन्य नमोऽस्तुते। दत्रशङ्केषु पाञ्चजन्यत्वं भावनयेव पूजाकार्य्यति भावः। पाञ्चजन्यस्यैव पूजनिमिति वा (८१)।

अय दादशौ नियमा दति। उच्चन्ते दति शेषः। उपासनाय द्वादश्यामिति नचं द्वादश्यां विशापासनार्थत्वे एकादश्युपवासस्याङ्गत्व-

प्रकुर्वन्ति तथा द्रयस्यि षष्ठीयुक्ता सत्मी उपोधा सप्तस्यां सूर्यीवासनायेखर्यः। ब्रह्माग्डपुराणं, कांस्यं मांसं सुरां चौद्रं लोभं वितयभाषणं। व्याया-मञ्च व्यवायञ्च दिवाखन्नं तथाञ्चनं। शिलापिष्टं मम्-रांश्व दार्शेतानि वैषाव:। दार्श्यां वर्ज्यवित्यं सर्व-पापै: प्रमुख्यते । पुनर्भीजनसध्यानं यानसायासमैयने। उपवासफलं इन्युर्दिवानिद्रा च पञ्चभी। वृह्यातातपः, उपवासं हिन: कुला ततीवाह्य ग्योजनं। कुर्यात्त्रास्य स्गुण उपवासी हि जायते । सगुणः साङ्गः । कात्यायनः, मिथ्यावादे दिवाखप्ने वहुशोजनसेवने। अष्टाचरं व्रती जप्ता शतमष्टोत्तरं श्रुचिः। तथा, हाद्यां पारणं कुर्यादर्जियताऽप्युपोदनौं। उपोदनौं पृतिकाशाकं। कूर्मपुराणे, कांस्यं सांसं सुरां चौद्रं हिंसां तैलम-सत्यतां यूतक्रीड़ां दिवानिद्रां व्यायामं क्रोधमैयुनं। द्वादश्यां दादशैतानि वैषावः परिवर्जयत्। संवत्सर-प्रदीपे, अध्यक्षञ्च पराज्ञञ्च तेलं निकील्यलङ्गनं। तुलसीचयनं यूतं पुनर्भीजनमेव च। वस्त्रपीड़ां तथा चारं दाद्यां वर्जयेद्धः। अभ्यङ्गो येन कैनापि तैलं तिलतेलं मार्षाविप निषिष्ठं। अभ्यक्तमार्थी आयुर्वेदे,

मायाति न प्रधानलिमितिवाचं दादग्यामित्यत्न द्वादग्यामपीत्यर्थात् तथाचैकादग्री दादग्योस्तुत्यलेन दादग्रीयुतायामेकादग्यामुपोष्य तिहने एकादग्रीनिमित्तकविश्वपूजां विधाय परिदेने दादग्यां तिनिमित्तक विश्वपूजा एकादग्रीदिने द्वादग्रीच्ये च तन्त्रेणैकवपूजितिभावः, श्रतएव द्वाव्यायनेने। ग्रातःस्नात्वा दृशिं पूज्य उपवासं समर्पयेदिति, श्रवः

मूर्षि दत्तं यदा तैलं भवेत् सर्वाङसङ्गतं। श्रोतोभिस्त-प्येदाहू अभ्यङ्गः स उदाहतः। तैलमल्पं यद्गङ्गेषु न च सादाहतर्पणं। सा मार्छिः पृषगभ्यङ्गो मस्तकादौ प्रकी-र्त्तितः । स्मृतिः । घतञ्च सार्षपं तैलं यत्तेलं पुष्पवासितं <mark>श्रदुष्टं पक्षतैलञ्च स्नानाभ्यङ्गेषु नित्यशः। अभ्यङ्गद्रति</mark> **द्यादशीतरपरं नि**खशद्वति पर्व्ववारादावि। वारे द्रव्य-दानेनापि प्रतिप्रसवमाह स्मृतिः, रवौ पुष्पं गुरौ दूर्चां भूमिं भूमिजवासरे। भागवे गोमयं द्यात्तेलदोषोप-<mark>णान्तये। दद्यात्तैलद्गिति श्रेषः। निक्साल्यलङ्गनमन्यः</mark> वापि निषिद्यमचाधिकादीषकारं वतहानिकारं वा। चारं वस्य । सन्दमङ्गलवष्ठीव दादःयां यादवासरे । वस्ताणां चारसंयोगोद इत्यासप्तमं कुलं, इति यमवचनात्। एवं पराज्ञसपि निषिद्धं प्रागुक्तवचनेभ्यस्तवप्रतिप्रसवसाह स्मृतिः गुर्चन्नं मातुलान्च प्रवशुरान्नं तथैवच पितुः पुत्तृस्य चैवान' न परान्नसिति स्मृतिः। यद्यपि यसेन, पर-पाकेन पुष्टस्य दिजस्य ग्रहमेधिनः। दृष्टं दत्तं तपोऽधीतं यस्याद्वं तस्य तद्भवित्। यस्याद्भेन तु भुत्तेन भार्थ्यां समि गच्छति। यस्याझं तस्य ते पुचा अब्वाद्रेतः प्रवर्तते। हारीतजमदग्निभ्यां, ब्राह्मणाज्ञेन दारिद्रंग चित्रयाज्ञेन

हरिपूजानन्तरमुपवास-समर्पणोक्तेः पूजनस्याङ्गत्वमुपवासस्य प्राधान्यं स्मुटमिसिहितं। अध्वानं प्रतियानं गमनिमत्येकं अन्यया पञ्चमीत्य-नुपपत्तेः, द्विज इति व्रतकर्तृमोव्रोपलच्चणं सर्व्यवर्णानां स्त्रीणाञ्चवताधि-कारस्योक्तत्वात्। चौद्रं मधु असत्यता असत्यवचनं निर्मात्यलङ्गनं यद्यपि सामान्यतोनिषिद्वं तथापि व्रतहानिकरत्वेनाचे।क्रिमिति। यस्त-

प्रेव्यतां। वैग्याद्वेन तु ग्रुद्रत्वं ग्रुद्राद्वेनिरकं वजित्, इति पराचं सामान्यतीनिषिष्ठं। तथाप्यधिकदीषकरं व्रत-इानिकरं वा । अष्टस्याञ्च चतुईश्यां षष्ट्राञ्च हादशीन्तया। श्रमावास्यां चतुर्थ्याञ्च मैथुनं योऽधिगच्छति। तिर्याः ग्यानी समागच्छेन्यम लोकं न गच्छति। सम विप्णोः। दादशीमधिक्षय कात्यायनः, प्रातः स्नात्वा हरिं पूज्य उपवासं समर्पयेर्। अज्ञानितिमिराध्यस्य व्रतेनानेन केशव। प्रसीद सुसुखोनाय ज्ञानदृष्टिप्रदोसव। कृषा क्षणा क्षपालुस्वसगतीनां गतिर्भव। संसारार्णवमगनानां प्रसीद मधुसूदन। विषा्धसीत्तरे, दाद्याः प्रथमः पादोहरिवासरसंज्ञकः। तमतिक्रस्य कुर्व्वीत पारणं विष्णुतत्परः। पारणकालः खल्पापि द्वादशी। ननु, त्रयोद्ग्यां यदा न स्याहादशीघटिकाह्यं। उपोष्या दशमीविद्या सर्वेरिकादशी तदा, इति नारदीयवाक्यात् घटिकादयमेव पारणकालः। घटिका दग्डः। यथा ब्रह्मसिडान्ते, घटिषष्ट्या दिवानिग्रमिति। अत्र केचित् घटिकाहयमिति पार्ग्कालोपलच्यां चन्यया तद्धिकेऽपि द्वादशीनिर्गमे प्रातर्वन्तावलोकनविद्वाऽप्येकाद्रश्युपोष्या-स्यात्। नच घटिकाचयादिष्वपि दिलमस्तीति तचापि

पीड़ा वस्त्रिनिषीड़नं चारं वस्त्रेषु चारसंयोगः अवतुलसीचयन-वस्त-निष्पीड़नतत्चारसंयोगवर्जने द्वादश्यामिति द्वादशीतिथिपरं नतु पारण-दिनपरं तेन कृचित्त्रयोदश्यां पार्णे न निषेवः अभ्यङ्गादिनिषेधे पारणदिनपरं वचनान्तरैकवाक्यत्वात् मन्दमङ्गलषष्ठीषु द्वादश्यां आद-वासरे । वस्ताणां चारसंयोगो दह्त्यासप्तमं कुलिमिति वचनात संक्रान्यां तहाक्यादरद्वित वाच्यं यतः पूर्व्वसंख्यानाभनेवोत्तरसंख्योत्गदनात्। अन्यया प्रभाना यजेत द्वयत्र एकत्व
संख्याविवचायासिय उपात्तप्रववयविनाभे प्रवन्तरावयवेन सहानुष्ठानं प्रपद्येत, तक्षाद्यया कार्कस्थोद्धि
रचतासित्यनेनोपघातकसात्रं लच्यते तेन खादिस्थोऽत्रं
रचतप्व। तथाच सहुपादाः, कार्कस्थोरचतामद्वसितिवालोपदेशतः। उपघातप्रधानत्वात् खादिस्यः किं न
रचते। तथा घटिकाद्वयसित्यनेनापि पारणयोग्यकालउपलच्यत द्वयादः। तद्व। प्रयच्यप्य पूर्व्व संख्याप्रख्यनाभादत्तरसंख्याप्रख्योत्पादनियमः भाद्यवोधेतु न तथा
नियम द्वति सिद्वान्तः। पश्चना यजेतिस्य विध्यविभेषणत्वेनेकत्वस्य विवचितत्वाद्वित्वयवच्छेदः अत्र तु कलादयं चयम्बापीत्यनास्थ्योक्तेः स्वल्यं तिश्रवणात् जलेनापि
पारणश्रवणाच घटिकाद्वयसिति न नियमः किन्तूपलच्चां। तथाच नारहीये, एकादश्याः कलाच्चे का दाद-

पञ्चदश्याञ्च द्वादश्यां त्यादवासरे। वसं न पीड़येत् स्नानं नापि चारेण योजयेदितिवचनस्य स्नानं स्नायते अनेनेति स्नानसम्बन्धोति वस्तस्य विशेषणं चारसंयोगान्वये वस्त्रमात्रस्यानुषद्भः। वस्तुतस्तु अभ्यङ्गादि साहचर्यात् पारणदिनमात्र एव वस्त्रनिष्पौड़नादिनिषेधः। तथा मन्द-मङ्गलवारादिसाहचर्यान कृचिदुक्तत्वात् द्वादश्यादी निषेधदति यथा-योगं मन्तव्यं। येन केनापि प्रतसार्षपादिनापीत्यर्थः द्वादशीतरपर-मिति द्वादश्यामभ्यङ्गस्य प्रथमिषधादिति सार्षपादी तैलपदप्रयोगो गौणः। गुर्व्वतं गुरुपत्नीच गुरुश्वेत्येकश्चेषात् तयोरत्नं न परात्रमित्यर्थः। एवं मातुलानं व्वश्वरात्रसित्यत्राप्येकश्चेषात् सातुल-मातुलानीनां खश्चराव्यश्वर्ष्यासन्नं न परात्रमित्यर्थः। श्वज्ञान्तिसिरान्यस्थेति ममिति

भयास कलाइयं। हादण हादणी हिन्त चयोदण्यान्तु पारणं। कलाइयं चयं वापि हादणी ह्य यदा भवेत्। पारणे मरणे वापि तिथिक्तात्कालिकी स्पृता। तात्कालिकी नत्यवासादिवित्तिष्यन्तरसहायतापि। तथा, खल्पाया-सिप राजेन्द्र हादण्यामक्णोदये। स्नानाईनिक्रयाः कार्या दानहोमादिसंयुताः। भागवतटीकायां, कलाईं। हादणीं हष्ट्वा निणीयादृईभविहि। स्रमध्याद्वाः कियाः सर्वाः कर्त्तयाः शक्षणासनात्। निणीयात् महानिणायाः। विणेषतोनिणीथे च शुभं कर्मा न सर्मणे। स्वतोववर्ज्ञयेत् प्रान्तो दानादिषु महानिणां, द्रव्यनेन निणीयमहानिणयोरिकत्वस्रतेः पूर्व्यवचनेऽकणोदयद्गति स्रतेस् । स च कालः स्कान्दनारदीययोः। उदयात् प्राक् चतस्रस्तु नाहिका स्काणेद्यः। तथा हलायुध्यता स्मृतिः। प्रदोषे घटिकायुग्मं प्रभाते घटिकाद्यं। दिनवत् सर्व्यकर्षाणि कारयेन्न विचारयेत्। स्वाप्याः

विशेषमध्याहार्यं खलापीति पारणयोग्येलर्यः। दशमीविदार्रणाः दयविदा यथा घटिकायादण्डरूपत्वे प्रमाणं पूर्व्व संख्यानाश्नेविति, उत्तरसंख्यायां पूर्व्व संख्याया प्रतिवन्धकत्वादितिभावः। तथाच त्यतीय-दण्डात्पत्तीदित्वनाश्चन चित्वात्पत्ते दण्डदयाभावद्गति तच पारणं नथाः दिति पर्य्यवसितं प्रपद्येत दति तथाच पष्वन्तरे एकत्वं नास्तीति वक्तव्यमितिभावः। तस्मादण्डदयविवचायां दण्डत्रयात्मकद्वाभ्याः पारणाभावप्रसङ्गात्। उपलच्चते दति तथा च काक्रभ्या दिधरचतां दत्यचयथाकाकपदं दशुप्रधातकपरं तथाचित्रकाचयमित्यच घटिकादय पदं पारणयोग्यदादशीपरिमितिभावः। पूर्व्वसंख्यानाशे नोत्तरसंख्याचित्रसभवात्। किन्तु पूर्व्वसंख्यान्नानाशे उत्तरसंख्यान्नानंहितः एको-

मिमर्थे कात्यायनः, सन्धादिकं भविद्यायं पारणन्तु निमित्ततः। यिद्वसु पारियत्वा तु निव्यक्तान्ते श्रुजिन्त्रिया। देवलः, सङ्घे विषमे प्राप्ते हाद्य्यां पारयेत् क्या। यिद्वसु पारणं कृत्वा पुनर्नकां न दोषकृत्। नक्तं नक्तवतं। एतद्युपलचणं सङ्घे विषमे द्रत्युपन्त्रमात्। यिद्वः पारणविधानात्तिययः। हाद्य्य निर्गमे तु नारदीयं। चयोद्य्यान्तु श्रुडायां पारणं पृथिवी-पणं। यत्यद्वाधिकं वापि नरः प्राप्तोत्यसंणयं। पारणं तुलसीमित्रितनेवेद्येन कुर्व्यात्। तथाच स्कन्दपुराणं, कृत्वा चैवोपवासन्तु भोक्तव्यं हादणीदिने। नेवेद्यं तुलसीमित्रं हत्याकोटिवनाथनं। यस्य वतस्य, न वित्तानां वते दृति विषणु वचनादणीचेऽपि कर्त्तव्यता। यत्र वित्तामारस्ववित्तनामात्र्यवित्वामित्यर्थतया यशीचे यारमो न कार्व्यः। विषणु धर्मात्त्रने। यसमाष्यान्हि सम्भाष्य न कार्व्यः। विषणु धर्मात्त्रने। यसमाष्यान्हि सम्भाष्य

तुलस्याः किलकादलं। आमलक्याः फलं वापि पारणे प्राप्त शुध्यति। संवत्सरप्रदीये, यस्य नामीस्थितं पर्च मुखे शिरसि कर्णयोः। तुलसीसम्भवं नित्यं तीर्यं-स्तस्य मखेश्व किं। युक्तोयदि सहापापेः सुकृतं नार्जितं यदि। तथापि गीयते सोचस्तुलसी भिच्चता यदि। विद्याकरधृतानि, यः कश्चिहेष्णवोलोके मिध्याचारो- प्रयनाश्रमी। पुनाति सक्तलान् लोकान् शिरसा तुलसीं वहत्। विष्णोः शिरःपरिभष्टां भक्त्या यस्तुलसीं वहत्। सिध्यन्ति तस्य कार्थ्याण मनसा चिन्तितान्द्रपि। न धारयन्ति ये मालां तुलसीकाष्ट्रसक्थवां। नरकाद्र-निवर्त्तने द्राधाः कोपानिना हरेः। अमद्राचधरोभूता यद्यत् कर्षा च वैदिकं। करोति जपहोमादि तत् सर्वं निष्पलं भवेत्। स्कान्दे, ध्यानधारणहीनोऽपि मद्राचं धारयेत्तु यः। सर्व्यपाविनिक्षुक्तः स याति परमां धारयेत्तु यः। सर्व्यपाविनिक्षुक्तः स याति परमां

दूई मित्यायाति तथापि एवमव्दिक्ष व्याभ्यां वचनान्तरप्राप्तारणोद्यकालमेव लच्यित तेन साई प्रहर्चयोई काले क्रियाक क्रियाक क्रियतो क्रित्त साव । नतु
निमीयपदं सध्यरात्रदण्डद्ये रूढ़ं तदेव क्र्यं न विविच्चतं दत्यत माह
पूर्व्ववचन इति, तथाच तदेक वाक्यतया निमीयपदेन महानिमा न
विविच्चता अन्यया नाना श्रुतिक ल्पनाप तेरितिभावः । नन्वरुणोद्यपदमेव
लच्चण्या निमीयोई कालपरिमत्यपि वक्तुं मक्यतं दत्यत आह हलायुधधतास्मृतिरपीति, तिच्यमः द्वादग्यां पारणिनयसः । तिच्यमोऽपि
पारणदिने द्वादमीमत्व एव तदसत्तेत्वाह द्वादग्यिनिमेनित्विति पारणमिति कत्वेतिसेषः । पारणीति क्वित्तपाठः पारणी पारणिविष्टः ।
पृथिवीपालं पृथिवीदानपालं भिरद्रस्थपलच्चणं तुलसीकाष्ठसम्भूतामित
अत्र सर्ववर्णसाधारणोनित्याधिकारः वैष्णवास्तते भगवत्ससीपे वाद्यणस्य

गति। तया, क्रत्वा चैवोपवासन्त भोक्तव्यं हादगीदिने। नेवेद्यं तुलसीसियं हत्याकोटिविनागनं (८२)।

स्वयं खदत्तनैवेद्यभवणं। ननु खदत्तस्याविनियोज्य-लात् खदत्तनेवेद्यं क्षयं भुञ्जीतित चेत् वचनात् तया यया खदत्तेऽपि क्रयणात् खापयोगः। तया-चाम्रमिधिके पर्वणा युधिष्ठिरं प्रति व्यासवचनं, दत्तेषा भवता सद्यं तां ते प्रतिदद्शस्यहं। हिरखं दीयतामिश्योबाह्मणेश्योधराऽस्तु ते। यथा वा सध्यमिण्ड-भोजनं पत्नाः, तथाच यसः, स्नाता वे सध्यमं पिण्डं पत्नी प्रास्नाति वाग्यता। गङ्गलिखिती, पत्नी वा सध्यमं पिण्डमस्नीयादात्त्वस्नाता। वायु-पुराणे, पत्नी प्रजावें द्यादि सध्यमं सन्तपूर्वकं। सामगानां सन्तस्तु। साधत्त पितरोगर्भं कुमारं पुष्कर-स्तां। यथेष्ठ पुरुषः स स्वात्त्वा कुरुत सत्तमाः।

चद्रगमी ख्या नियमधारणं यथा, पूजाच तुलसीप वर्मया कार्या सदैविह। तुलसी काष्ट्रमा स्वाला धार्या सदा हरिति। अरुद्राचधरः रद्राचधारणहीन:। निष्फलभवेदिति एतेन रद्राचधारणस्य कर्मामावा- कृत्वसुक्तं (८२)।

श्विनियोज्यलात् स्वस्रलाभावेन विनियोगानईलादिति, व्यामानु-मत्या हिरण्यदानेन धरायाग्रहणस्य क्रयक्षपत्वेन पुनः स्वतोत्पादनात् तत्र स्त्रीयत्वेन व्यवहारो न दोषाय, विश्वमुद्दिश्य दत्तद्रव्ये प्रतिदा-नाभावेन वायं तत्र विनियोज्यत्वमतोऽनुक्ष्पं स्थलमाद् यथाविति मधा-मं पिण्डं पितामहिषण्डं। पत्नीविति वाकारः पत्तान्तरमाह तेन गोऽज-विप्रेभ्योदयादित्यर्थः। श्रात्तंवस्नाता ऋतुस्नाता। ननुपत्नाभोजनेऽपि स्वविनियोगासिद्विरत श्राह पत्नीय प्रजार्थमिति। तथाच पत्नी न मत्स्यपुराणे, पत्नीन्तु सध्यसं विग्रहमाग्रयेदिन्यान्वितां।

याधत वितरोगर्भं सत्तः सन्तानवर्डनं। एषमन्तः

पौराणिकत्वात् साधारणः। प्रकृते तु विष्णुधस्मीत्तरे,

पत्रं पुष्णं फलं तोयमञ्जपानाद्यसीषधं। अनिवेद्य न

सुञ्जीत यदाहाराय कल्पितं। अनिवेद्य हरेर्भुञ्जन् सम
जन्मानि नारकी। स्मृतिः, भत्त्ये चणं चणोविष्णोः स्मृतिः

सेवा खवैष्मिनि। खभोज्यस्यापणं दानं फलिमन्द्रादि
दुर्लभं। खभोज्यस्य मनृत्रवैश्वदेवाद्यविश्रष्टकृपस्य

यया, यघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्।

यज्ञिष्ठाण्यनं होतत् सतामञ्जं विधीयते। भृत्तवत्सु

च विग्रेषु खेषु भृत्येषु चैव हि। भुञ्जीयातां ततः

पश्चादविष्ठिन्तु दम्पती। अत्रणव स्मृतिः, यसा

चानी न हूयेत यसा चागं न दीयते। न तद्वीज्यं

दिजातीनां भृत्वा तूप-वसेद्दः। शङ्घ-लिखिती,

ख्यं रहीता शुङ्के किन्तु पिर्ण्ड्दात्रा पत्या इत्तमिति दातुरेव विनियोग इतिभावः। सन्तानवर्षनिमिति मन्तं पठित्वा पिर्ण्डं
दलेति श्रेयः। नन्त्रत वचनवलात् खदत्तस्य पुन्रुपयोगोऽस्तु देवदत्तः
स्थलेपुन्रुपयोगे प्रमाणाभावात्। देवे दत्त्वा च दानानि देवेदला
च दिल्यां। तत् सर्व्वं त्राह्मणे दयादन्त्रया निष्फलं भवेदित्यादिवचनवोधाच क्षयं स्थापयोगः इत्यत आह प्रक्ततित्ति, दानानि
देयानि। हिवर्भोज्यमबाद्धि, भक्तेप्रचणं भक्त्यादर्भनं विष्णोः च्रण् उत्सवः। भक्तचण इति पाठे भक्तानासुत्सवः विष्णोर्त्सवद्दत्यर्थः भक्तेचणेन विष्णुभक्तदर्भनेन च्रण उत्सव इति वस्तुगितः। अग्रनं प्रग्ननीयं स्त्येषु भरणीयेषु अतिष्यादिषु विप्रेषु आह्मो जिष्वित्यादिः
यस्य द्रश्यस्यायं अप्रभागरूपं न हृयेत यस्य चायं न दीयते हिजानां

न तदसीयाद्यद्र देविष्टमनुष्यार्थं न कुर्यादिति। अव पित्रधीमत्यनेन पितृवलिनिययाद्वाविशष्टं प्रती-यते। व्यक्तं मार्कगडेयपुरागे, देवताति यिभृत्येषु भूतेष्वभ्यागतेषु च। यभुत्तवत्सु येऽ यन्ति तहत् पित्रस्निपचिष्। दृष्टाञ्चपूयनियासभुजः सूचीमुखास्त ते। जायन्ते गिरिवर्धाणः पश्चैते याद्यानराः। नरा-द्रयत् कर्मकर्त्वोभयप्राप्ती कर्त्त्वमेव। अशदानसम्पु-दानकर्गाधारकर्भगां। कर्त्यान्योन्यसन्देई परमेक प्रवर्तते, द्विति संचित्रसारात्। ततय तद्र विणावे निविद्य भोत्रव्यं। यत्त्, पितृशेषन्तु योद्द्याइर्ये परमा-तमने। रेतोधाः पितरस्तसा भवन्ति क्रोशभागिनः, द्ति भागवतोत्तं तत् पितृदत्तप्रतिगृहौतविषयमिति। मत्साम्तां, अनिवेदा न भोत्तवां मत्सामांसादिकञ्च अलं विष्ठा पयोमूचं यहिष्णोर्निवेदितं। अनेन खभोज्यं मत्सामांसादि देयमिख्तां। प्रागृत्तविषापुराण-वचनेनानेवंविधं निषिद्यसित्यविरोधः। अतएवायोध्या-

तर्द्रव्यं न भोक्तव्यक्षित्वव्यः। देवतातियौत्यवातियिपदं पूर्वाज्ञात-परिमिति न पौनक्कां। भूतेषु वत्युक्तेषु तद्दत् अभुक्तवत्सु। नरा-द्रत्यस्य जायन्ते द्रिति क्रियाकर्त्तृत्वं पर्योति क्रियाकर्मात्वमिति कर्तृ-विभक्तिकर्माविभक्त्योः सन्देह द्रित, अवाह नरा द्रत्यवेति, कर्मात्वं कर्माविभक्तिः कर्तृत्वं कर्त्तृविभक्तिः। श्रीभाग्वतोक्तं तद्दीकाक्षत् स्वामि-पादोक्तमिति। पित्यदत्तेति, पितुक्द्देशेन दत्तेत्वर्यः तथाच पित्रग्रेषपदं पित्यदत्तपरिमितिभावः। न विरोधद्रित, अतएव स्वयं भोज्यस्य देयत्वा-देव नन्वेतावता स्वयं भोज्यस्य देयत्वमुक्तं नतु पूजादौ दत्तस्य स्वयं भोजात्विभित्यतस्तदिप साधयित हृदि रूपिमिति, अनुगतः भगवत्पादान्त कार्रेड श्रीरामवाकां। यद्वः पुरुषोराजं सद्वास्तमा देवताद्वति। भागवते। त्वयोपभुक्तसग्गमवासोऽलङ्कारचर्चिताः। उच्छिष्टभोजिनोदासास्तव मायां
जपमि । तया, हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुद्रेरे
हरेः पादोदकञ्च निक्साल्यं मस्तके यसा सोऽच्युतः।
तस्यैव षष्ठस्कासीय पयोव्रते, उद्दासा देवं स्त्रे धामि
तिव्रविदितमग्रतः। श्रद्धादात्मविशुद्धायं सर्श्वकामसम्द्वये। उद्दासा विसृज्य। श्रव चिक्तशुद्धादिफलकथनादन्यवापि भोजनाग्रतः स्त्रदक्तनेवेद्यभचणमवगम्यते। श्रन्यथा व्रताङ्गत्वे फलानुपपितः। श्रष्टमस्कासेऽपि, गम्धपुष्पादिभिश्वार्चेद्दादशाचरितद्यया। शृतं
पयसि नैवेद्यं शालाव्रं विभवे सिता। ससिपः सगुडं
दक्ता जुहूयान्मूलविद्यया। निवेदितं तद्कताय
दद्याहुञ्जीत वा स्त्रयं (८३)।

यत्त, देविद्वजद्रव्यापहर्त्ताऽपा निमानीऽघमर्षण-मावर्त्तयेत्, दृति सुमन्तूत्तां। श्रिप दीपावलीकां मे

चुरतः भगवत्तुत्योवा अन्यतापि व्रताकरणस्थलेऽपि अन्यया व्रति-मात्रपरत्वे फलानुपपत्तेः व्रतफलानुपपत्तेरेव वक्तव्यतापत्तेनेत्वात्मग्रहे-रितिभावः (८३)।

श्रतएव उपयुज्ञामानद्रव्यस्य यहण्निषेधादेव, न निर्माल्यमिति, एवच यावित्रमील्यं न भवित तावदयाद्यमितिभावः। नैवद्यभचणा-दिति, एवच देवे दत्ता तु दानानीत्यादिकमितिरिक्तदानपरिमिति, श्रव मत्तेतताः। पित्रमेषन्तु योदद्यादित्यव्यभेषपदं न दत्तपरं किन्त्ववभेष-परं मुख्यार्थेत्वात् श्रतएव संवत्सरप्रदीपे तद्यनं प्रागुक्का विश्वो-निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरं पित्रस्थवापि तद्देयं तदानन्ताय नी त्यु च्या द्विविद्तिसिति यी भागवती यञ्च तह वोष सु जार-मानद्रव्य रं। चत्र प्व यो गिनीतन्त्रे, सिण सु का-सुवर्णानां देवदत्तानि यानि च। न निर्म्याला दाद-णाव्दं ताम्यपाचं तयेव च। पटी णाटी च पण सासं नैवेद्यं दत्तमाचतः। सोदकं क्षषरञ्जेव यामार्डेन महे ख्वरि। पट्टवस्चं विसास च यज्ञ सूत्रं त्व द्वः स्मृतं। यावदुणां भवेद इं परमा द्वं तयेव च। विसर्जनी ये देवे तु विसर्जनात्त्त दिव्यप्रति गत्ति व्यवहारः। संवत्-सरप्रदीपे ब्रह्मपुराणं। च स्वरीष नवं वस्चं फल म इं रसादिकं। क्षत्वा क्षणोप भोग्यच्च सदा सेव्यं हि वैणावै:। च स्वरीष हरेले मं नीरं पृष्यं विलेपनं। भक्ता

कल्पोइति वचने निवेदितान्नेन्छत्र निवेदितग्रेषान्नेनइतिव्याख्यातं पिढद्रसग्रेषपतिग्रहोतविषयत्वेऽपि यत्पितृहेश्यकदत्तं हरीं दीयते तत्-पिढक्रेग्रभागित्वानुपपत्तेश्व विष्णोनिवेदितान्नेन देवतान्तरयागिष्ढपूजा-विधानान्तरं पिढग्रेषित्वित्वचनेन पिढदत्तदानिविधे देवतान्तरदत्त-दानिविधे तेवतान्तरदत्त-दानिविधे तेवतान्तरदत्त-दानिविधे तेवतान्तरदत्त-दानिविधे तेवतान्तरदत्त-दानिविधे तेवतान्तर्ति अतएव यद्गेष्ठराय श्राह्मग्रागोदीयते। उच्छिष्टभोजिनोदासा इत्यादि षचनैः श्रीक्षण्याय दत्ते श्रीक्षण्याचिद्दव्य कथनाहेवोहेश्यकदत्तमात्रे तहेवोच्छिष्टत्वावगमाहेवतान्तर्रानविदितस्य श्रीकृण्यानिवेदितस्य श्रीकृण्यानिविद्या

न धत्ते शिरसा चाँगडालादधिकोहि सः। तथा, अगिशोमसहस् य वाजपेयशतैसाया। तुलंग फलं भवे-देवि विष्णोनीवेद्यसच्णात्। सत्सासूत्रो, एकानां भतोदेवसा भोजनादी मनोरम। श्रुता परिता नाम मुच्यते दिनिकालिषात्। स्वीश्रद्रोक्तं न शृगायाद-भावे विजीपेत् ख्यां। तत्र सन्तः। उच्छिष्टभोजिन-स्तमा वयमुच्छिष्टकाङ्गिणः। येन लीलावराहिण हिरण्या-ख्योनिपातितः। तथा, पादोदकञ्च निक्धालं नैवेदाञ्च विशेषतः। महाप्रसादद्वाता याद्यं विष्णोः प्रयत्नतः। पादोदकग्रहणे मन्त्र:, क्षणा कृष्ण महावाही भत्ता-नामात्तिनायन। सर्व्यापप्रथमनं पादीदवं प्रयक्त मे।

कल्पात तत च नैवेदां खदतं परदत्तं विति गस्यति तत्रच परहत्त-भीजने न विप्रतिपत्तिः खंदत्तस्य पुनरादानसम्पत्तये हृदिः रूपमित्यादि वचनं मुदत्तमपि दिविधं विषाुमुहिध्यैव पूजादी दत्तं स्वभोजनार्ध कि जियतदत्तचेति तत्रादां मुख्यं तत्र पवित्रं विष्णुनैवेद्यिसत्यादि वहुतर-वचनं दितीयमपि विश्ली समर्पणे विह्नितं प्रतिषिद्धञ्चेति दिविधं तव स्त्रभोजास्यापेणमित्यादि यद्यदिष्टतमं लोके इत्यादि, मत्स्य-मांसा-दिकचेलादिवचनं साधकं मत्स्यमांसादिकचेल्यतादिपदेन भच्यत्वेन श.स्त्रविहितद्रयं प्रहणं नतु लसुनादेः भच्येष्वपि विश्णा यद्द्रय-सम-र्पण दोषयवणं तत् स्वभोज्यमपि न देयं एवच पित्रशिषानदानै द्रीष यवणात कयं देयतीत स्वभी जरार्पण मित्यत स्वभी जरपदस्य वैखदेवाद्यवां ग्रष्टेतरस्व भोजापरत्वादै खदेवाद्यविश्विभन्नस्य विश्वीदेयत्वे देवतार्थत्वेन भोजात्वाचतेः निच्च वैश्वदेवाद्यविश्वष्टमेव भोज्यं नत्वन्ध-दितिवतुं शकाते विष्णुनैविद्यस्याप्यभोजारत्वापत्तेः। यज्ञशिष्टाशिनः यज्ञा विश्रष्ट काले विहितं ये। यन्ति ते इति श्रीधरस्वासिचरणै व्याखा-तच वैखदेवाद्यविश्वष्टभोजनं हि वर्णायमाचारविह्नितं सामान्यं नैवेद्य तहारणभन्तः, चकालद्यल्डरणं सर्व्वव्याधिवनाणनं।
विषाः पादोदकं पुद्धं णिरसा धारयाद्यहं। तचमन्ताणामनुष्टानकारणत्वेन विधानात् पूर्व्वसिद्ध्येव करणत्वात्यन्तान्ते काक्षारकाः। तीर्धकार्ण्डकत्यत्री नरसिंहपुराणं, गङ्गाप्रयागगयनीमषपुष्टकराणि पुद्धानि यानि
कुरुजाङ्गलयासुनानि। कालिन तीर्धसित्वलानि पुनन्ति
पापात् पादोदकं सगवतन्तु पुनाति सद्धः। पद्मपुराणे,
ये विवन्ति नरानिखं प्रालयासिष्ठलोदकं। प्रचालयनामन्द्रिधं बद्धाह्यादिपातकं। विषष्टसंहितायां,
णालयासिण्वातीयस्वीत्वा यसु सस्तके। प्रचेषणं प्रकु-

भच्यं हि सीचसाधनतया तती वलविद्योव: यदि च वर्णात्रमाचारं वतेत्वादिना वैक्यवस्थापि तदाचरणं तथापि वर्णात्रसाचारविहितपञ्च यज्ञाविश्रस्याश्चनमुक्तं तदङ्गतयाविधेयं तच नियमक्षपं इतशेषं भच-येत् आदशिषं भच्छीदित्यादिविधवचनात् यद्वशिष्टाश्रनं ह्योतत् सतामसं विधीयते, इत्यादिस्तृती तथैव वोधनाच यस्यचायं नहूयेतेत्यादि-वचने च यखेखित विष्णुनैविद्येतरलं विश्ववण्देय मन्यया विष्णुनैविद-भवणवाधायत्ते: विषाुपूजनस्य पित्यपूर्विभव विश्वितवात् परदत्तविषाुनैवेदा भोजनानुपपत्तेय सर्व्वत खार्यमातपकानादिभोजननिषेधे तात्पर्यात् देवताति विश्वति सार्कग्छे यपुराणवचनच्च देवतापूजादिनिसित्तता साधकमेव नतु तदवशिष्टाति शिलाट्रव्यभोजनिष्धकं न च चाहशेषसत्त एव तङ्गोजनं प्रतिपत्तिक्यवाद्याङ्गस्य प्रतिपाद्याभावे निवृत्तिदर्भना-दिति श्रीषसच्चे तज्ञीजनमावध्यकं क्यमन्यया नित्योपवासस्वते पित्र-शेषद्राण्ख्य विधान' सङ्गच्छते तत्रश्च हरये तिववेदनाश्कात्वात् अतं विष्ठेत्यादिवचनविरोध इति वाचां, इरयेऽनिवेदितभोजननिवेधवाक्ये क्रमीङ्गाचमनीयजलपानितरवत् कर्माङ्गपितृशेषकणिकाभीजनातिरित लस्य विशेषणीयत्वात् निह यथेष्टशेषभोजन मङ्गं कुत्राप्यश्रतत्वात् कतः नैवे ग्रभोजनियमे बैलाबै र्न भोजरमेव पित्रीय मनं नैवेदामेव पञ्चयज्ञान

व्यौत ब्रह्महा स निगद्यते। स्नृतिः, नैवेद्यप्राणनात् पूर्वं देवपादोदकाहितः। होतव्या जठरे ब्रह्मी खेन पाणितलेन तु। तेन पादोदकीनापोणानं कृत्वा प्राणा हितनिवेदीन कार्या। बहु चएह्यपरिणिष्टे, पविचं विषानेवदां सुरसिहिषिभः स्नृतं। अन्यदेवस्य नैवेद्यं भृत्वा चान्द्रायणं चरेत्। अग्राह्यं णिवनिक्षाल्यं पर्च पुष्पं फलं जलं। शाल्यामिणलास्पर्णात् सर्वं याति पविचतां। काल्विकापुराणं, योविद्याचेनरतः स तन्नेवेद्यभचकः। क्षेत्रलं सीरणैवे तु वैषावोनेव भच्यत्। सामानं त्वन्यनैवेद्यं भच्यदेन्य-

सानएव तैभीता व्यक्तिता व स्तुतो वैणावैः वाहशिकोन रचणीयः श्रेषसच्चएव-तद्रीजननियमात् श्रेषसच्चे किं कार्यमित्याकाङ्वायामेव शेषभोजनविधुर-त्यानादिति तेषां श्रेषाभोजनेऽपि नचतिरिति पित्रशेषन्तूपलचणमुपयुक्ताव-शिष्टमेव विशावे न निवेदां व्यवहारोऽपि तयेति सर्वे समञ्जसं, यदिशोर-निवेदितसिख्यत तत्स्वरूपभूततत्त्रदेवतान्तरपरियत्तः शिवस्य तदभेदेऽपि तर्त्रविद्यभोजन्निषधोवाचनिक इति। हरिभक्तिविलासमतन्तु भगवत प्रसादेनैव आडादि कार्थं विण्लोनिवेदिताबेनीन वचनात् न ददाति हि-योविप्रः पितृणां यादकार्याणि। तद्भुज्ञसन्नंतीर्थच तत् सर्वे विफलमा-वेत्। कल्पकोटिस इस्राणि कल्पकोटिशतानि च। पतन्ति पितरस्तस्य नरके पूयशोणिते, इति पद्मपुराणीयसगुवाक्याच तन्सते न कोपि विरोध इति, भोजनादी भोजनादिसमये तदानीं रूयसुचारणायोगात् श्रभावे विशिष्टनामवत्तुरभावे। विकापिदिति भोजनादि प्रागित्यर्थः भोज नादावित्यादिना पानशयनादिपरियहः भोजनस्यादाविति व्यास्याने परेरितनास अवणस्य मुख्यक त्यास अवात् स्वयमसासर्थ एव प्रति-निधिदानात्। देवस्य नामित्यनुषङ्गेनान्वयः। तस्य विष्णोरुच्छिष्ट भोजिनोभक्ता स्तोषामुच्छिष्टकाङ्किणोवयिमत्यर्थः इदञ्ज भक्त्यतिशय-द्यातनार्थं भगवदुच्छिष्टाकाङ्का च कैसुतिकन्यायेने।क्रेति भाव:।

देवतः । अवियो, निक्षाल्यं नोत्रयोक्तयं कट्टस्य तत्रनस्य च । उपयुज्य च तन्सोहान्नरकी पच्यते धृवं । अतएव
पुरश्वरणचन्द्रिकायां, सुषुस्नावर्त्सा पुष्पमाघ्रायोद्वास्पेत् सुधीः । निक्षाल्यं सस्तके धार्थः सर्व्वाङ्गेष्वनुलेपनं । नैवेद्यञ्चोपयुञ्जीत दत्त्वा तङ्गक्तिणालिने । नन्दिकेखरपुराणे, दत्त्वा नैवेद्यवस्त्वाणि नाददीत कदाचन । त्यक्तव्यं णिवसृद्दिश्य तदादाने न तत्फलमिति
णिवदत्ते विशेषः । स्मृतिः, व्रद्मचारिग्रहस्यं च वनस्ययतिभिः सह । भोक्तव्यं विष्णुनैवेद्यं नाच कार्या विचारणा । एवञ्च, यहन्तकारं नैवेद्यं सुक्ता क्रक्तुं यतिश्वरे
दिति वचनं तिहण्णुनैवेद्यं तर्पं (८४)।

अकालस्त्यु हरणमिति। पापविशेषेणाजामिलादेखिपेपिस्थितोयी सत्यु-स्तइरण्मित्यर्थः तेन नाकाले स्वियते कश्विदित्यनेन न विरोधः। अनुष्ठानकरणत्वात् अनुष्ठानसाधनत्वात् अनुष्ठानं तत्तत्तिया। कुर-जाङ्गलेति तत्तद्देगस्थतीर्यसम्बन्धीत्यर्थः पवित्रं सर्वेषां पावनं चान्द्रा-यणं चरेदिति वैष्णव इतिशेष:, समानन्वन्यनैवेय मिल्नोः, अन्य-देवस्य नैवेदामित्यत्र स्वयं दत्तमिति विशेषणं पूरणीयमिति साम्प-दायिकाः। शालगासशिलास्पर्शादिति शालगामशिलायां यदि शिवं पूजयित तदा सर्वं याह्यसिति, तिथितत्वे व्याख्यातं। शिवोपासकेन शिवनैवे यं अद्यमित्य भिप्रायिणाच योयदेवार्चनरतद्ति। तनाभयेत् खहृदि स्थापयेत् तद्भिक्तिशालिने निर्मात्यसीविविष्वक्सेनप्रस्तये। हल्तकार माह सार्कग्छेयपुराणं। भोजनं हल्तकारस्वा अयं भिचा यथापि वा। अदत्त्वा नैव भोक्तव्यं यथाविभवमात्मनः। शासप्रमाणा भिचा स्याद गं यास व रुष्टयं। अत्राच रुप्णं प्राइ ईन्तकारं मनीषिणः। यासः पलमात्र मिति नव्यवर्दमान दत्याक्तिकतत्त्वं हन्तकारमित्युपलचणं। नैवेद्यं देवनिवेदितं यदा इन्तकारं देवनिवेदितं इन्तशब्दस्य त्यागार्थक-लाहिति (८४)।

यय जनाययोत्सर्गः। तय, प्रद्यात् सर्चभूतैश्वो जनपूर्णं जनाययसिति सत्यपुराणवचनाजनाः
ययोत्सर्गस्य सर्चभूतसम्प्रदानकत्वे ना महाष्ट्चितनोद्देग्ययत्वादुद्देग्यगतस्वासित्वाजननाद्यागत्वं। तयाच यावविवेकः, देवतोद्देग्यकद्रव्यत्यागोयागः। देवतात्वयः
वैद्वसयस्यगिद्देग्यत्वं। उद्देग्यत्वच तस्वेद्दिस्यारोपद्वानः
विषयत्वसिति। चतप्य जनाययोत्सर्गम्मकस्य सत्यपुराणे, प्राप्नोति तद्यागवनि भूयद्वति यागत्वेनासिद्वितं। तत्व तज्जनं स्वस्त्वदृरीकरणेन नद्यादिवत्
साधारणीक्षतं। सामान्यं सर्वभूतिस्यो स्या दत्तिसदश्चनं। रसन्तु सर्वभूतानि सानपानायगाइनैरिति

प्रसङ्गादाह अयजनाश्योत्सर्ग इति। सर्वभूतिभ्यः सर्व्वप्राणिनयः इदिन्य प्रदश्चात् त्यजिदिति पर्व्वभूतोद्देश्यकत्वेन। अपक्षष्टेति प्रव्वादिकृषित्यर्थः। यद्वा विष्रक्षष्टेल्ययः प्रतिग्रहण्डितः पर्ध्यवसितः, ज्देश्यगतित।
तयाच प्रतिग्रहस्य खामित्वहेतृत्वेन तदभावान क्रत्वजनकत्वं जनाश्योत्सर्गस्येतिभावः। वेदनियेति वेदनीधितेत्वर्थः तस्येदिमत्यारोपः तद्श्रे
एतत्क्षत्वभागितारोपः तत्क्षत्वाभाववति तत्क्षत्वग्रकारक इतियावत्
तयाच देवानां खत्वाभाविऽपि स्वत्भागितया तदुद्देश्यकविसंवादीच्यविश्रेष एव यागदितभावः। वच्चणन्तु विधिवोधितक्वजन्यक् त्वाभावविषयविश्रेष एव यागदितभावः। वच्चणन्तु विधिवोधितक्वजन्यक् त्वाभावविषयस्वत्रकारतानिक्वितोदेखताकत्यागोयागदिति त्याग्रवः स्वत्रकामावेविषयः
देवस्ताविषयताविश्रेषः स्वत्यव याचस्य पित्रपेचया यागत्वं पितृषां
स्वत्रभावात् वाद्वणपिचया दानत्वं वाद्वणपुत्वजननादिति ग्र्वपाणिमतानुप्रसाद्कां चेत्यवचाचुदेण्यकत्वागवारणाय वेदसेवित। श्रथः
देवानां पितृणाच्चवित्रत्वात् स्ववं प्राभवनु जनायये त्यागानन्तरस्वानकर्तुक्पादानेन स्वत्यजनतात् कर्यं स्वत्यारोपः नच सर्वभूतानां
स्वत्वाजननात् सर्वभूतेषु स्वत्वभागित्वोदेश्येनारोपदिति वाच्यं तथापि

मन्विति इदियादानं विना वास्यापि न स्वसिति। तत-श्वान्ययागवदुत्तरप्रतिपत्तेरश्वतत्वेन साधारणजनस्य परि-ग्रहमावेण गीतमोत्तेन स्वामित्वश्वतेर्यनमानस्यापि तथा-त्वेन स्वामित्वात्तच स्नानादावदीवद्गति। तथाच गोतमः, स्वामी च्य्वव्यव्यसम्बिभागपरिग्रहाधिगमेषु। वाह्मणस्याधिकं लाकं चिच्यस्य विनितं निर्व्विष्टं वैश्व-ग्रद्रयोरिति। परिग्रहोऽनन्वपूर्वस्य जनतृणकाष्टादेः

यं व्राह्मणमुहिष्य धनं त्यक्षं तद्वाह्मणस्यदैवादसिवधानादिना सीकारा-भावात् तत्र त्यागस्य यागतापत्ति शिति यहनाहिन ब्राह्मणाय द्यादिति विधिवोधितस्वापि तच सस्वात्। तथाच दानमेवस्तवजनकं देवानां पितृणाच चेतन्याभावाचैतन्यस्यापि स्ववहेत्तया न तेषां स्वविमिति देवायुद्देष्यकत्यागस्य यागत्विमिति जलाशयोत्सर्गस्य दानत्वमेव नतु यागलिमितिचेव देवानां पितृणाञ्च तृषादिफलञ्जतीः फलदात्वचेतनला-दियुतेश चैतन्याङ्गीकारिऽपि तेषां प्रतियहाभावात खलमिति सिदान्तात् यंत्र स्तत्राह्मणादिकसुद्ध्य दत्त' ताद्यस्थले परखलाभावेन जबणाभावात् यागल लोकाराचिति वस्तुतो यजिदेवपूजायासिति वैयाकरणानुमासनात् अन्त्रकरणकप्रीतिहेतुद्रव्यत्यागी-यागलचणं । तनैवसुख्यप्रयोगः परमिध्वरस्य प्रीत्यनुपगमे प्रीत्यहेश्यकसम्बकद्रव्यागः एव यागद्ति वताच्यं समन्द्रकलविशेषणात् पित्रादिपीत्यदेशेन द्रच-त्या न तत्व एयोगः। देवयू जादो देवतायीतिमृहिष्य एव द्रव्यत्यागाच-देवानां तत्रखलं पूजाराधनादिपदवाच्यायां गीरवित-प्रीतिहेतुक्रिया-यामपि यागपदस्य निरूढ़ा गीणी लच्चणा तत्रगीरवितत्वं भित्तविषयत्वं। भितायभजामीतिप्रतीतिसिद्धा नीचविषयकसमूहालम्बनव्याहतोमानस-ज्ञानिविश्वेव: यत्र च द्रव्यस्य स्वत्यभागिता मुहिस्स द्रवां त्यजति तत्र दान्मेव। जलाश्योत्सभादी सर्वभूतस्वलमुहिस्य न त्यागः किन्तु सर्ज्यभूतानां स्नानपानादिना प्रीतिसुद्दिश्येति तत्र न सर्ज्यभूतानां स्रत्यं न वा तव ददाति प्रयोगः। गोरवित-प्रीतिहेतुलेऽपि तव त्यागस्य भिता-

स्वीकारद्रति मिताचरा। वृच्यिधकारे व्यक्तमाहापस्तस्यः, दायादां णिलोञ्को चान्यवापरिगृहीतमिति। अपरि-गृहीतमिति। अपरि-गृहीतमिति, अपरिगृहीतमन्याखीक्षतं अखामिकमिति यावत्, निर्द्धिः वैतनलश्चं निर्देशोश्वतिभोगयोरित्यमर-विकागडग्रेषयोः (८४)।

चय रजंखलासूतिकानोर्वतं। पुलक्ताः, एकाद्यां न सुद्धीत नारी दृष्टे रजस्यि। नारी विधवा। सधवाया-नित्रेधात्। तयाच विष्णुः, पयौ जीवित या नारी उपोध्य व्रतमाचरेत्। चायुष्यं हरते पत्युन्रकञ्चेव गच्छति। तथाच, वहुकालिकसङ्ख्योगृहीतञ्च पुरा

प्रयोज्यत्वाभावात्ं न पूजादि व्यवहारः, पूजादिपदवाच्यतया भिक्तप्रयोज्य प्रीतिहेतुत्वागरूपिक्रयायाविविच्चतत्वात् दानस्वे प्रीतेरनुद्देश्वतात् ददाति इत्यत्र न पूजयतीति प्रयोग:। न च जलाश्रयात्सर्गस्य मन्त्र अरणकात्वाभावात् न यागत्विमिति, कथं, प्राप्नोति तद्यागवलीन भूय इति यागलाभिधानसिति वाचं प्रीत्युद्देश्यकालेन स्वलाजनक-लोन च साम्यात् गौणल चणया तत्र प्रयोगात् यागोङ्गलोन यागलाति-देशादिति। साधारणीक्ततं सर्वभूतानासीपादानिकस्वत्वयोग्यंक्ततं मन्त-विङ्गात् मन्ववीधितसामान्यवात् उपादानं सदीयवेन यहणं। तत्य साधारणवाच अन्ययागवदिति उत्तराप्रतिपत्तेः यागोत्तरिमष्टदव्यस्या-चार्यादिसमर्पणस्यात्रवणात् तथाच यचात्मृष्टभ्य यजमानकर्तृकोत्तरा-प्रतिपत्तियवणं तत्रैव तत्सापेचं यहणं खत्वसाधकं यत्र च तत्-व्यवणं नास्ति तत्राविशेषात् सर्वेषासीपादानिकं खत्विसितिभावः। जलस्थात्मृष्टजलाश्यस्य तथालेन सर्वभूतान्तर्गतलेन स्वासिलात् दायाद्यर्थं लब्धिपवादिधनं। ग्रस्थादेः पतितस्वासित्यक्तमञ्जरीयहणं शिलं कपोतवदेकीकाः शस्त्रकणानां विपन्धादिपतितानां ग्रहण मुञ्छ: (८५)।

व्रतमध्ये व्रतेसंकल्पिते। यदाऽग्रजाग्रक्तवतीच क्रियते इत्यनेन

यदि। स्तको स्तको चैव बतं तक्षेव द्यति। एतेन काम्यज्ञतारक्ये। यौचे न कार्थः। स्तके सृतके चैव न खाच्यं दादशीवतं। तथा, स्तको स्तको चैव प्रशस्य मनसा हरिं। एकाद्यां न भुञ्जीत वतमेतव लुष्ति। स्तके च नरः खात्वेति प्रयमचर्गे पाठीवराहपुरागे। भविष्यात्तरपद्मप्रराणयोः, एकाद्यां न भुज्जीत पचयोक्भयोरित। स्तिक स्तिक वाित अन्यक्षित्र-पशीचके। सर्व्या न परियाजा। दक्ता येय शातमनः। एकादशीम्यक्रम्य वराहपुराणं, तसात् प्रमादे दु:खे वा सूतकी सतकेऽपि वा। साला भाम्यव्रतं कुट्याहानाईन विवर्जितं। मत्खपुराणं, गर्भिणी सृतिका नतां जुसारी च रजहला। यदाः शृहा तदान्धेन कार्यत् क्रियते सदा। उपवासाचरणे गर्भादि भी इसिक्धावनायां नक्तं भोजनं कुर्यात्। उप-वासेष्वशक्तस्य तदेव पालिभिक्तः। अनभासेन रोगाणां किमिष्टं व्रतमुच्चतां, इति नारद्ग्रश्नानन्तरं, उप-वासेध्वशत्तानां नतां भोजनमिष्यते, दूति मत्खपुराण एवे खरप्रतिवचनात्। खयमगुडा चन्यदारा पूजादि कार-येत्कायिकमुपवासादि सदा शुडाशुडिकाले खयं क्रियते। स्मृतिपरिभाषायासचीवं। यथीपवासानुकल्पः। सनुः, विभ्वेश्व देवै: साध्येश्व वाह्मकेश्व सहर्षिभः। श्रापत्सु मरणाङ्गीतैर्विधेः प्रतिनिधिः क्षतः। प्रभुः प्रथमकल्पस्य कायिकोपवासस्य प्रतिनिधिनिषेधिसामर्थे किं कर्रव्यक्तित्याकाङ्गाया-माइ नक्तसिति ब्राह्मणभोजनाद्युपलचकं। अत्भ्यासेन पुनरकर्षन

योऽनुकल्पेन वर्तते। न साध्यरायिकं तस्य दकीते-विंद्यते फलं। अवारत्पतिनिध्यनुकांच्यानां पर्ध्यायता। कालविवेवाधतवराष्ट्रप्राणं, उपवासासमधे सु किञ्चिह्नच्यं प्रकल्पयेत्। तथा एकादभी सधिकत्य स्तृतिः, एक-भक्तेन नक्तेन अचन् उडात्रः चिपेत्। नारहीये, श्रनुकल्पोन्यां प्रोत्तः चीणानां वरवर्गिनि। स्लं फलं पयक्तीयस्पभीग्यं भवेक् सं। नत्वेवं भीजनं केश्चिदेकाइड्या प्रकोर्त्तितं। एवमनुकल्पातिरिक्तं। ब्रह्मवैवर्तः, उपवासासमर्थधे देकं विप्रन्तु भोजयेत्। तावद्यानि वा द्याद्यद्वताद्यित अवेत्। सहसु-सिमतां देवीं जपेहा प्रागसंयसान् । क्रय्योहादशसंख्या-तान् यथामिति वर्ते नरः। देवीं गायवीं। वाय-पुरागी। उपवासनिषिधे तु किञ्चित्र व्यं प्रकल्पयेत्। न दृष्यस्पवासेन उपवासफलं लभेत्। नतां इवि-ष्याञ्चसनोदनं वा फलं तिलाः चीरसवास्य चाज्यं। वत् पञ्चगव्यं यदि वाय वायः प्रशस्त्रमचीत्तरस्तरञ्च। उपवासनिषेधत् असामध्याद्यीति, तवापि इवि-ष्यादिरनुकल्यः। अन सर्जन तुलसीं भन्नयेत्। तुलसीं विना या त्रियते न पूजा स्नानं न तद्यत्त्वसी विवर्जितं। भुत्तं न तद्यत्त्वसीविवर्जितं पीतं न तद्यत्त्वसीविव-र्जितं, इति गामुडात्। अनुकाल्पे ऽपि दाद्यां विषा-

रोगाणां रोगगतवहुवचनं गणार्थं तेन गर्भपोड़ादिपरिग्रहः। यहा रोगाणामनभ्यासेगाप्रतिचिपेणाशक्तस्य इत्यन्वयः। किसितिकटाचेण-प्रश्नः कास्यत्रतं संकल्पितव्रतं दानार्चनिववर्जित मिति दानार्चने स्वयं परसनं पारणञ्च कर्तव्यं। एकभक्तेन नक्तेन तथैवा-याचितेन च। उपवासेन हानेन नेवाडाहणिकीभवेदिति वचनात् (८६)।

भयोहव्यवस्था। चनैक्रभत्तादीनामुप्वासकार्ये विधानात् सोसधकीयां फलचमसे प्राित्ति एव्यपि मन्तादिपात्रार सन्तस्थेहिन प्रयोगः कार्यः। जतएवं एक्रभतादावि प्रवीपरिहनयोरेक्षभत्तादिकोधकीः कार्यः। यहा हादगीवतं खन्धेतद्वगवतोवामुदेवस्थार्वनं जरहोमादिकं प्रधानं कन्ने उपवासादिकत्वद्वः कर्तृ संस्कारकं लिङ्गात्। चतीऽङ्गभृतीपवासप्रकाणकं मन्ती-

न कुर्यात् किन्तु प्रतिनिधिना कुर्यादेव, विधे: विहितस्य, वर्ते व्रतविषये। नक्षतिति हविष्याचादेः कालपरं नतु नक्षवतपरं तथात्वे उत्तरोत्तरं प्रायस्त्रानिधानानुषपत्तेरिति (८६)।

उपवासकार्या उपवासायक्तस्य उपवासजन्यपालजननाय पलचससे सीमप्रतिनिधीम्तद्धिमिश्चितवटत्वक् चूर्णे। कहेन उपवासधर्माकत्वनेन प्रयोगोऽनुष्ठानं, श्वतएव कहेन प्रयोगादेव। कार्य्यदित एतत्कत्ते उपवासप्रकायक्रमन्तः पाठ्यः। तद्पाठकत्व्यमाह यहेति, जपहीमादिकं, जपहोमादिकं । लिङ्गात् प्रागुक्तवचनात् उपवासप्रकायक्रमन्त्व एका-द्र्यां निराहारहत्यादिको निवर्त्तते श्रममवितार्थत्वादिति श्रेषः, श्रमानां प्रकृतिविक्ततिभावासस्यवाभीहद्दति भावः, श्रस्य मन्त्रस्य जीमूतवाहन दत्याह दतिश्चिः, तन्नेति न प्रकृतावृष्ट दत्यस्यायमर्थः प्रकृतित्वं स्वोत्पत्तिविध्यु त्यापिताकाङ्कोत्याप्यविधिवोधित स्वासाधारणाङ्कसमुदायक् कर्मवं तद्वयं विक्रतित्वं तद्वयवोत्पत्तिविध्युत्यापकाकाङ्कोत्यापकोयस्त दुन्पत्तिविध्युक्तं क्रात्वो निविध्यक्ते विधिव्यक्तित्वं कर्मा तत्प्रकृतिः, तदुन्पत्तिविध्युक्तं कर्मा तिविध्यक्ते कर्मा तत्वव्यक्ततद्वत्यक्तितिध्य न्त्यापिताकाङ्कोत्यापकोविधवोधिताक्षयवक्ततद्वत्यक्तिविध्यक्तितिविध्यक्ते विधिवोधितावयवक्ततद्वत्यक्तिविध्यक्तितिविध्यक्ते विधिवोधितावयवक्ततद्वत्यक्तिविध्यक्तिविधिक्तिविधिक्तितिविधिक्तितिविधिक्तितिविधिक्तिविधिक्तिविधिक्तिविधिकातिविधिक्तिविधिक्तिविधिकातिविधिक्तिविधिक्तिविधिक्तिविधिकातिविधि

नितादिपचे निवर्तते बीहिमन्त द्रव यवे यतीऽस्थी-प्रयोग एवेति जिम्तवाहन याह स्म । तद्य, जहं प्रक्रत्य न प्रक्रतावपूर्व्यवादिति कात्यायनसूत्रात् प्रक्रता-यूहायीगात् विक्रतावेवोह द्रति । यपूर्व्वीत्पेचगम्ह द्रतितल्लचगात् । यत एकमत्तादीनां प्रक्रतावृक्तत्वा-व्रोहदति । यदयुक्तमङ्गत्वान्यन्ववाधद्रति तद्धि न यृतं एकोहिष्टे पार्व्यगविक्रतावेवावाहनासङ्ग एवोहदर्भनात् ।

वीधितवं विग्रेषणं। क्रिक्णं सुतिद्वयवीधितयीरेकजातीयावयवं विक्रते भूत-कर्मणोः परस्परप्रक्रतिविक्रतिभाववारणाय तद्वयवावयवकत्वं परित्यच्य निर्ताल च एइये, ऋाकाङ्गाघटितत्वं वीध्यं अवयवत्वञ्च असाधारणाङ्गत्वं, श्रमूर्व्व लात् श्रुतिप्रतिपादिताङ्गले नाङ्गान्तराकाङ्गाविरहात्। श्रपूर्वीत् प्रेचणं अपूर्वस्य प्राज्ञनापूर्विविधिवोधितस्याङ्गस्योत्प्रेचणंप्रकरणादिनाऽ-न्यत्र कल्पनं जहदति पर्य्यवसितं। यद्वा अपूर्वस्य स्वाङ्गतया अश्वतस्य स्यालं न युत्र्याक त्यनमूहदति, अत्र युत्ते ग्रितिनिर्देशात् प्रक्रती श्रुतमन्यादे र्विक्तती: प्रयोगे , समवेतार्थवात्वाय है श्रुतग्रव्हपरित्यागेनाश्रुतग्रव्हघरित-मन्बसापि लाभइति । जह वितर्के इतिधातुपाठात्, प्रक्रताविवोक्तत्वादिति, प्रक्रतीसूतीपवासप्रतिनिधित्वेनोक्तत्वात् प्रक्षताविवान्तर्भावादित्वर्थः अयम-भिपाय:, ेडपवासी यया खाङ्गतया श्रुतत्वात् प्रकृति स्तथा नतादि-वितमपि खाङ्गतया अत्रुतले न प्रकृतिनेतु तयोः प्रकृतिविकृतिभावद्रति नतादित्रतस्य उपवासानुकल्पत्वेऽपि : उपवासितिकर्रव्यतानपेचतया न तदमीगालिलमिति। अञ्चनकलपदार्थस्त यनु यनन्तरं कल्पः साद्यये वा अनु, साष्ट्रस्यचे कफलजनकलेन परन्तु फलगतवैलच्च छोसुख्याभावे प्रति-निधिरितिसारणात्। प्रभु:प्रयमकल्पस्येत्यायुत्तवचनाच । विकल्पस्यलेच क्लयोस्तु स्वकचलिमिति विशेष: । उत्तं यदेति इत्यादिना, जीसूतवाइनोत्तं अङ्ग्लाद्यवासक्याङ्गस्य प्रतिनिधिलेनाङ्गलात् सन्त्रवाधदति एकभकादे-रिखादि, मन्त्र शायः मन्त्र शायात्व शाधः, आवा हनाचाङ्ग एवी हदर्भनादिति, पार्वणोतावाहनयङ मन्त्र य वहुत्रचनान्तिपित्रादिपदत्यागिनेकवचनान्त-

श्रतएव, एक भक्तेन यो सर्थंड प्रवासत्रत स्वरेहित, उपोष्य नक्तेन विभो द्रयाहि स्कन्द पुराणाहिवचना देक भक्ता द्रिषु छत्रवास पद प्रयोगेण तह की ति देशान्य न्य पाठ द्रित परि-श्रेष खर्गेड हिसादिणाप्युक्तं। तथाच जैमिनिः, उक्तं क्रिया भिधानसन्य च तच्छती विधिप्रदेशः स्थाहित। क्रिया श्रीनहोत्राहि तस्या श्रीभधानं नास श्रीन-हो बादि पद मुक्तं, उत्प्रेचा धिकरणे तस्यान्य व श्रवणे विधि-

पित्रादि-पद्वटनया प्रयोगदर्भनादित्यर्थः, एवच्च प्रधानएवी हीनल हेदति नियमे व्यभिचारादेकभक्तावाङ्गोपवासावाङ्गर न्होहे वाधकाभावदतिभावः, नगुपार्च णैकोहिष्ट्योः प्रज्ञतिविकतिभावादक्षेऽपि त्याखकल्पनादुपवासैकभ त्रयो: प्रकृतिविक्ततिभावानङ्गीकारात् कथसुपवासधमाहिनैकभक्ताचाचरण्-मित्यतचाह चतएविति, चङ्गेऽप्यूहकल्पने वाधकाभावादेवित्यर्थः, एकभक्ते-नेत्यभेदे त्वतीया तेन एकभक्तात्मकोपवासपदार्घव्रतं चरिदत्यर्थः । उपवास-परार्थत्वच गीच्यावसियं, नक्षेन नक्तव्रतेन उपोष्येति क्रियाविभेषणे द्राया तु इमी। तिदेशादित्यपवासादिपद घटितसन्खपाठादि धर्मातिदेशात्, श्चर्यवेकभक्तादीनासुपवासात्मकत्वकी र्तनवेफल्याच ज्वाकाङ्गायां न्तरानुपदेशात् उपवासनन्त्रस्योपश्चितत्वेन तेनैवाकाङ्गापूरणाच, सर्ज्ञाङ्गातिदेशस्तेन पूर्ज्ञापरदिवसीयएकभोजनाखङ्गातिदेशाभावे चति:। अवीक्ष त्रस्थान्य तद्त्यस्य विवरणं उत्पेचाधिकरण इति, उत्-प्रेवणीयाङ्गक्रमणीत्यर्थः उत्तमित्यनेनास्यान्वयः। स्त्रस्थिततत्श्रता-विस्र सार्थमाइ तस्येति, तस्याग्निहोतादेयीव ज्ञीवकर्तस्यतेति यावत्पद-मिभवासपरं तेन जीवनकालं व्याप्य कर्ता यस्य सचासी सायंप्रात-हीमधित तस्मिनारसीत्तरतत्पुरुषीयजीवनाधिकरणदिनत्वव्यापक-तत्-पुरुषोयसायंप्रात:कालाविच्छन्नहोसद्ति यावत्, श्रतस्थेत्योनास्यान्वयः तेन निर्विग्रेषितकर्तृत्व य क्वति रूपस्य चिणकतया जीवनकालाच्यापकत्वेऽपि न चतिः तत्पुरुषोयहोमत्वेन तत्पुरुषोयजीवनकालीनदिनत्वव्याप-कुलस्भवादिति। एताद्य-होमेऽग्निहोचपद्यतियाहिकां युतिमाह

प्रदेशः खात् विधेयधक्षातिदेशः खाहिति स्वार्थः।
यथा यावजीवन तृंवासायं प्रात्त हों से यावजीवमिन होवं
जुहोति यदनये च प्रजारतये च सायंप्रात्त जुहोतीखादिसिः सर्धकराभिहितत्वेन यक्तस्याकिहोत्रणस्य
जपसिह्यात्वा सासनेवामिकहोतं जुहोतीखनेनोयसदाख्यागानन्तरिह्यसाणसाससाध्ये क्तिएडपायिनासयबाख्यागीऽप्यिकहोत्रयहप्रयोगसात्रात्वक्षातिदेशः सुक्षे
चन्द्रयहवत्। बीहिसन्तस्य तु यवे वाधी नहत्वात्।
किञ्च प्रकृतायेव बीहिसिर्यजीत यवैर्यजीतित विकल्योक

यावजीवित्यादि, परिकरोऽङ्गंतिन सह वर्त्तमानं सपरिकरमभिहिती यस्त-क्तिन इत्यर्थः। अभिनहोत्रपद खेलस्य अयनास्थयागिऽपि पयोगसातादिल-नैनान्वयः। यदानयेचेत्यादिकं प्रयोगविधिस्तत यदिति सार्यपातर्ज्हो-सीति क्रियाविग्रेषणं तदेव यजनप्रिवहीत्राक्षक्यागद्रव्यर्थः उत्तरप्रस्थ-यत्पदेन तत्पव्दीनापेच्यते साधुचन्द्रमसि पुष्करैः कृतं सीलितं दद-भिवासताधिक इत्यादिवत्। उपसिद्धचिति उपसच्छन्दीऽत सितल-बीहिचरकरणकपरः चरित्वे त्यस्य यजित्वे त्यर्थः अभेदे त्वीया। तत्र सतिलत्रीहिचर्कारणकोपसदाख्यागानन्तरिकति यावत्। सासमेक-मिति चिन्तिहोतपदेनात कीण्डपायिकर्त्तेव्यायनाच्ययाग उचते इति-वोधां, तक्षातिदेशादिति अवेतिकर्तव्यताक्तरानुपदेशात् अकिहोत-पद्गयोगाच प्रजितिवज्ञतिभावस्य लच्छमाण्लाहितिभावः। मुखे चन्द्र वंदवदिति मुखे चन्द्रपदप्रयोगि यथा चन्द्रपद्स्य लच्चणया चन्द्रसहग्रपर-तया मुखे चन्द्रगताह्वादकत्वाद्यिश्चातिदेशवदिति पर्यवसितार्थः। ब्रीहि मन्त्र यवे नोह इत्यन्वयः चत्र हेतुः प्रक्रतिविक्षतिभावाभावात् प्रक्रति-विज्ञतित्वासावादित्वर्थः पर्थावसितः अत च हेतुः विकल्पेन अवणा-दिखनां। ननु ब्रीहियुतिसहचरितयुत्युतालेन कथं न यवे तसन्त-इत्यत चाह चममवेतार्थलादिति, सन्ताणां यवप्रयोगि वीहिसन्ताणाम-इंद्रार्थकता यवयागजन्यपरमापूर्ष्वसाधनता तथाच हु फड़िति मळ्ळ ग्रवगात् प्रक्रितिविक्तितिभावाभावाद्रोहः। जतोऽसम-ध्वार्थत्वाद्वाद्वाद्धः, न च हं फक्षाद्विवन्यन्वसाद्वशर्यकाताऽलु क्षयमसम्बतार्थत्वाद्वाद्य द्वित वाच्यं। यस सर्व्या दृष्टार्थत्वासम्भवस्तस्थेव तथाकल्पनात् (८०)।

तथाच जैमिनिः। चर्याभिधानसामर्धान्यन्तेषु भेष-भावः स्थानसादुत्पत्तिसंयोगी भेन निरुसंयोगात् गीग प्रसायनिऽपीति। चस्यार्थः यतो भीभिधानसामर्धान्यन्त्रागां

तिर्धित्रवेऽिष तत्पयोगोऽदृष्टार्धकतया यथाक्रियते तथा ब्रोहिस्क्र-स्थार्थावित्रव्याऽदृष्टार्धकतया प्रयोगोऽप्युपपद्यते इतिभावः दृष्टार्धवासम्भवे विणिष्टार्थगान्दवीधजनकात्वासभ्यवः, तथात्वकत्यनात् ग्रदृष्टार्थकत्व-कत्यनात्। त्याच इंफड़िति सन्त्वी न दृष्टान्तः विषयत्वादिति-भावः (६०)।

प्रशिक्षानसामधीन प्रज्ञतद्रव्यदेवताक्ष्पविभिष्टार्थविषयक्षयोधजननयोग्यवात् जननयोग्यवञ्च जननानुकूलयोग्यतादिणालिखं, श्रेषभावः यङ्गभावः काम्माङ्गता मन्द्राणां पाळ्यानसन्दाणां तसादर्याभिधानसामर्थ्यनाङ्गभावादुत्पत्तिसंयोग इति, उत्पत्तिक्दगतापत्तिः ज्ञानं यतइति व्युत्पत्या ग्राव्दवोधानुकूलधर्माविशेषात्मिकाः
गत्तिस्यार्थेन संयोगः सम्बन्धः ग्राव्दक्षः सन्दाणां तात्पर्यः
विषय इतिश्रेषः। लच्चणायाः ग्रव्यसम्बन्धक्ष्पतया लच्चणाज्ञाननन्धः
गाव्दवोधस्य लच्चणाघटकग्रातिज्ञानजन्धतावश्यकत्या न तद्द्रादित्यः
नोभावार्थमाङ श्रोत्पत्तिज्ञेनिति ग्रत्याश्ययेणेत्वर्थः भन्त्राश्ययविभव मुख्यनिम्याविद्यतिनाः मुख्येनिति, यद्दा श्रीत्पत्तिनेन ग्रत्या प्रतिपादितेन मुख्येन ग्रत्याश्ययणार्थेन श्रज्ञहत्सार्थन्वण्या वोधव्यावर्त्तनाय
गत्त्रापतिपादितेनिति, साच्चात्प्रतिपादित्वलाभाय ग्रत्याश्ययेणित,
सम्बयद्वति तात्पर्य्यविषय इतिश्रेषः, तेनैव मुख्यार्थेनैव नित्यपदमव्यभिचारिपरमित्याङ श्रव्यभिचारितया इति विभ्रेषणे द्वतीया संयोग उपस्थापमत्वरूपस्वस्थः श्रव्यभिचारितया इति विभ्रेषणे द्वतीया संयोग उपस्थापमत्वरूपस्वस्थः श्रव्यभिचारितया इति विभ्रेषणे द्वतीया संयोग उपस्थापमत्वरूपस्वस्थः श्रव्यभिचारितया इति विभ्रेषणे द्वतीया संयोग उप-

प्रदेशः खात् विधेयधक्षातिदेशः खाहिति स्वार्थः।
यथा यावजीवन तृंवासायं प्रात्त हों से यावजीवमिन होवं
जुहोति यदनये च प्रजारतये च सायंप्रात्त जुहोतीखादिसिः सर्धकराभिहितत्वेन यक्तस्याकिहोत्रणस्य
जपसिह्यात्वा सासनेवामिकहोतं जुहोतीखनेनोयसदाख्यागानन्तरिह्यसाणसाससाध्ये क्तिएडपायिनासयबाख्यागीऽप्यिकहोत्रयहप्रयोगसात्रात्वक्षातिदेशः सुक्षे
चन्द्रयहवत्। बीहिसन्तस्य तु यवे वाधी नहत्वात्।
किञ्च प्रकृतायेव बीहिसिर्यजीत यवैर्यजीतित विकल्योक

यावजीवित्यादि, परिकरोऽङ्गंतिन सह वर्त्तमानं सपरिकरमभिहिती यस्त-क्तिन इत्यर्थः। अभिनहोत्रपद खेलस्य अयनास्थयागिऽपि पयोगसातादिल-नैनान्वयः। यदानयेचेत्यादिकं प्रयोगविधिस्तत यदिति सार्यपातर्ज्हो-सीति क्रियाविग्रेषणं तदेव यजनप्रिवहीत्राक्षक्यागद्रव्यर्थः उत्तरप्रस्थ-यत्पदेन तत्पव्दीनापेच्यते साधुचन्द्रमसि पुष्करैः कृतं सीलितं दद-भिवासताधिक इत्यादिवत्। उपसिद्धचिति उपसच्छन्दीऽत सितल-बीहिचरकरणकपरः चरित्वे त्यस्य यजित्वे त्यर्थः अभेदे त्वीया। तत्र सतिलत्रीहिचर्कारणकोपसदाख्यागानन्तरिकति यावत्। सासमेक-मिति चिन्तिहोतपदेनात कीण्डपायिकर्त्तेव्यायनाच्ययाग उचते इति-वोधां, तक्षातिदेशादिति अवेतिकर्तव्यताक्तरानुपदेशात् अकिहोत-पद्गयोगाच प्रजितिवज्ञतिभावस्य लच्छमाण्लाहितिभावः। मुखे चन्द्र वंदवदिति मुखे चन्द्रपदप्रयोगि यथा चन्द्रपद्स्य लच्चणया चन्द्रसहग्रपर-तया मुखे चन्द्रगताह्वादकत्वाद्यिश्चातिदेशवदिति पर्यवसितार्थः। ब्रीहि मन्त्र यवे नोह इत्यन्वयः चत्र हेतुः प्रक्रतिविक्षतिभावाभावात् प्रक्रति-विज्ञतित्वासावादित्वर्थः पर्थावसितः अत च हेतुः विकल्पेन अवणा-दिखनां। ननु ब्रीहियुतिसहचरितयुत्युतालेन कथं न यवे तसन्त-इत्यत चाह चममवेतार्थलादिति, सन्ताणां यवप्रयोगि वीहिसन्ताणाम-इंद्रार्थकता यवयागजन्यपरमापूर्ष्वसाधनता तथाच हु फड़िति मळ्ळ ग्रवगात् प्रक्रितिविक्तितिभावाभावाद्रोहः। जतोऽसम-ध्वार्थत्वाद्वाद्वाद्धः, न च हं फक्षाद्विवन्यन्वसाद्वशर्यकाताऽलु क्षयमसम्बतार्थत्वाद्वाद्य द्वित वाच्यं। यस सर्व्या दृष्टार्थत्वासम्भवस्तस्थेव तथाकल्पनात् (८०)।

तथाच जैमिनिः। चर्याभिधानसामर्धान्यन्तेषु भेष-भावः स्थानसादुत्पत्तिसंयोगी भेन निरुसंयोगात् गीग प्रसायनिऽपीति। चस्यार्थः यतो भीभिधानसामर्धान्यन्त्रागां

तिर्धित्रवेऽिष तत्पयोगोऽदृष्टार्धकतया यथाक्रियते तथा ब्रोहिस्क्र-स्थार्थावित्रव्याऽदृष्टार्धकतया प्रयोगोऽप्युपपद्यते इतिभावः दृष्टार्धवासम्भवे विणिष्टार्थगान्दवीधजनकात्वासभ्यवः, तथात्वकत्यनात् ग्रदृष्टार्थकत्व-कत्यनात्। त्याच इंफड़िति सन्त्वी न दृष्टान्तः विषयत्वादिति-भावः (६०)।

प्रशिक्षानसामधीन प्रज्ञतद्रव्यदेवताक्ष्पविभिष्टार्थविषयक्षयोधजननयोग्यवात् जननयोग्यवञ्च जननानुकूलयोग्यतादिणालिखं, श्रेषभावः यङ्गभावः काम्माङ्गता मन्द्राणां पाळ्यानसन्दाणां तसादर्याभिधानसामर्थ्यनाङ्गभावादुत्पत्तिसंयोग इति, उत्पत्तिक्दगतापत्तिः ज्ञानं यतइति व्युत्पत्या ग्राव्दवोधानुकूलधर्माविशेषात्मिकाः
गत्तिस्यार्थेन संयोगः सम्बन्धः ग्राव्दक्षः सन्दाणां तात्पर्यः
विषय इतिश्रेषः। लच्चणायाः ग्रव्यसम्बन्धक्ष्पतया लच्चणाज्ञाननन्धः
गाव्दवोधस्य लच्चणाघटकग्रातिज्ञानजन्धतावश्यकत्या न तद्द्रादित्यः
नोभावार्थमाङ श्रोत्पत्तिज्ञेनिति ग्रत्याश्ययेणेत्वर्थः भन्त्राश्ययविभव मुख्यनिम्याविद्यतिनाः मुख्येनिति, यद्दा श्रीत्पत्तिनेन ग्रत्या प्रतिपादितेन मुख्येन ग्रत्याश्ययणार्थेन श्रज्ञहत्सार्थन्वण्या वोधव्यावर्त्तनाय
गत्त्रापतिपादितेनिति, साच्चात्प्रतिपादित्वलाभाय ग्रत्याश्ययेणित,
सम्बयद्वति तात्पर्य्यविषय इतिश्रेषः, तेनैव मुख्यार्थेनैव नित्यपदमव्यभिचारिपरमित्याङ श्रव्यभिचारितया इति विभ्रेषणे द्वतीया संयोग उपस्थापमत्वरूपस्वस्थः श्रव्यभिचारितया इति विभ्रेषणे द्वतीया संयोग उपस्थापमत्वरूपस्वस्थः श्रव्यभिचारितया इति विभ्रेषणे द्वतीया संयोग उपस्थापमत्वरूपस्वस्थः श्रव्यभिचारितया इति विभ्रेषणे द्वतीया संयोग उप-

शिषभावोऽङ्गभावल्यादुत्पत्तिसंयोगश्चीत्पत्तिने मुख्या-र्येन संयोगः सम्बक्षः स्थात् कुतः नियसंयोगात् ते नैवाव्यभिचारितया संयोगात्। गौणप्रत्यायनेऽपि यतो-मुख्यं प्रत्याव्येव गौणं प्रत्याययति मुख्यप्रत्यायने तु न गौणप्रत्यायनमपेचते अतोमुख्येनास्थाव्यभिचारितया सं-योगः। तथाच, गौणे सदिष सामर्थां न प्रमाणान्तरं

याँवैति, श मं। श्रेसादृष्या ययस्य गोणपदार्थालात् सुख्यार्थज्ञानं विना गोणार्थज्ञानासभवादितिभाव:। एवच मन्त्रा सुखार्यतात्पर्यक-प्रयोगविषयत्वेन वेदगग्या यतः प्रायमिकत्वेन सुख्यार्थोपस्थापकतादि-खादिशुकार मुख्यायेगरतयेवासति प्रमाणान्तरे इति पर्यवसितं। चनाभियुक्तवचनं प्रमाणमाह तथाचेति, गौणेऽर्यं गोणार्थविषयक्याव्दवोधे सामर्थां मृद्ध्य ताहम्माव्दवोधनिक्पिता-नुकूलाकाङ्कादिमत्त्वं प्रमाणान्तरं विना सुख्यार्थवाधकगीणार्थवोधक-प्रमाणं विना नाविभवति, गौणार्थवोधोपधान-प्रयोजकं भवति सुख्ये तु सुख्यार्थवोधे तु शब्दादेव शब्दासुख्यार्थोपस्थापितादेव एवकारण प्रमाणान्तरापेचा व्यविक्दियतं। तत्शव्दनिष्ठमुख्यार्थवोधोपधायकल-आविरस्ति स्मुटोनवति। ननु सुख्यार्थ तात्पर्ययहासस्ते 'कय' ग्रव्दादेव सुख्यार्थवोधद्रत्यत याच तात्पर्थञ्चेति, यौत्सगिकमितिग्रेषः। तथाच सुख्यार्थे वाधकाभावे तात्पर्थयहस्य प्रायः सम्भवादितिभावः। गौणार्थपरता गौणार्थतात्पर्यं तदभावात् प्रभाणान्तराभावात् न सिडा ति न विषयीभवति। तथाच सुख्यार्थवाध एव ग्रीणार्थतात्पर्य-कल्पनादिति तात्पर्थयहरूपकारणस्य मुख्यार्थेऽसत्त्वे सामग्रीविरहात् न मुख्यार्थवीयस्त वैव प्रभाणान्तरसहकारिणगीणार्थतात्पर्ययहाद्गीणार्थवोधः मुख्यार्थवाधे तु न गौणार्थतात्पर्य्यवाधकाच्यपेचेतिभावः। त्यादि दृष्टान्तवैषस्यं स्फुटयति यस्य सन्तस्य दृष्टं घटकपदानां अर्थ-विशेषवोधानुकूलग्रितमन् न लभ्येत न प्रमाणगस्य मन्त्रसादृष्टार्थकत्पनाऽदृष्टार्थकप्रयोगविषयत्वकत्पना । मन्तवटकपदतोदृष्टा दृष्टार्घविषयिका पदार्थस्मृतिर्ह्भयते

विना। याविभवति मुख्ये तु ग्रद्धादेवाविरस्ति तत्।
तात्पर्श्यस्य स्वतोमुख्ये गीणार्थयरता पुनः। प्रमाणान्तरवित्तेया तदभावाद्य सिध्यति। तथा, यस्य दृष्टः
न लभ्येत तस्यादृष्टप्रकल्पनं। लभ्यतेऽर्धस्मृतिदृष्टा मन्तीन्वारणतस्त्वित्र। यर्थस्मृतिः प्रयोगार्था प्रयोगान्न फलोदयः। द्रतिदृष्टार्थसम्पत्ता नादृष्टमित्तक्त्यतद्गति। यतो
यस्य क्विदृद्रस्यदेवतादिप्रकाग्रकाह्मप्रदृष्टार्थतासस्भव-

इह दृष्टार्धममन्द्रायोगस्यते। अर्यसृतिर्मन्द्रवटकपद्वानजन्या प्रयो-गार्था प्रयुच्यते यस्त्रैविभिष्टार्थवीधाय सप्रयोगः मेरवार्यः फलं यस्या सा प्रयोगार्था प्रयोगादाक्यार्थानुसवात् फलोदयः यडा सन्वाचारणतः प्रत्येकपद-सन्धानेन समुद्भूत-कर्माफलोइयः। पॅरततू हात्म तानवा गाच्य ज्ञानाद ये बातिः सन्वार्थ बातिः । साच प्रयोगार्था मन्त्रपाठफलिका वाक्यप्रयोगे वाक्यार्थज्ञान्स्य हेतुत्वात् प्रयोगाच ताद-गार्यज्ञानपूर्वकमन्सपाठाच फलोदयद्गति दृष्टार्थसम्पती दृष्टार्थसम्प-त्तीय फलोदयेन नादृष्टमिहिति दृष्टार्धक्रमन्त्रस्य स्वार्धज्ञानदारैव पल-जनकलमभवे तत्रादृष्टकल्पनस्य व्यर्थलादितिभावः। हुंपाड़ित्यादि मन्त्रस्यार्थाप्रसिद्धाः तत्प्रयोगविधेरन्ययानुपपत्त्राः तत्प्रयोगस्यादष्टजन-कल बीकारेण तहारा फलजनकल मिति वोध्यं, बाधएव इति तस्या-दृष्टार्घनत्वे प्रमाणाभावादितिभावः। यत्र क्रणालादी तदुपादानलीप इति तदुपादीयते सम्पाद्यतेऽनेनिति व्युत्पत्था तत्प्रयोजनोपधायक-क्रियालोपइत्यर्थः। क्रषालो लोहकलायाख्यः कलायः निस्वक्कलाय-विशेष इति केचित् तदनुष्ठानबेलायां तत्क्रियाकरणदशायां एव-कारेण शास्त्रावधारण द्यायां प्रयोजनाभावनिश्वयो व्यविक्छ्यते पुरुष-दोषिण चालस्यादिक्षपपुरुषदोषिण प्राक्ष प्रास्त्रावधारणवेलायां तिनस्यात् पयोजनिवयात् पदार्थः कार्यक्यः नियमापूर्व्यमात्रार्थिमिति नियम-विवित्राप्तापूर्वमावावीमित्यवै:। मावपदेन पुरोडायसम्पादकवेतुष्यादि-रूपदृष्टप्रयोजनस्य प्राक्सिडलेन तदर्धकलव्यवच्छेदः। अत्र दीहीन-

स्तस्य मन्तस्य तहसकांचे वैकाल्पिकीं ये विधिएवं।
चत्रपत्र विद्याकरः शासावधार गवेलायां यद हि प्रयोजनाभावनिस्यस्तचेव तहु पदानादिलोगः शास्त्रार्थः
यथा स्वाक्षित्रविद्यातादि लोगः। यत्र त्वनु हानवेलायाः
भेव पुरूषदोवेण प्रयोजनाभावो जायते तदा प्राक्ततिद्वस्यात् शास्त्रप्रात्तः पदार्थीनियमापूर्व्वभावार्थमनुहियपत्र। चत्रपत्र प्रस्तावित चालस्यादिना बीद्यादिः
स्थाने तग्रहुलादिषु ग्रहीतेषु चयवातादि समाचरिन
याद्यिकाः पठनि च। धाते न्यूने तथा क्रिक्ने

व इन्तीत्य।दिविधि नीपूर्व्य विधि: पुरी हा श्रसम्बद्धादे तुष्यसाधनतायाँ भारवाते लोकिकप्रमाणत एव सिदलात् किन्तु नियसविधिनेखदल-नादिनापि वैतुष्यतभावात् नियसार्थसवद्याते विध्यस्यानात् स चावचातः भन्तपूर्व्वक: वार्थः। तत्र वैतुष्यक्षपफलं केवलावघातेनैव सिद्धपति अन्त्र तु यागजन्यपरमापूर्व्य साधनतया विधिवोधितयागाङ सिति तण्ड-लेऽपि सन्त्रपूर्वकोऽवदातः कार्यः। अन्यवा यागात् परमापूर्वः-निष्यत्तेरवञ्च ब्रीहीनवहन्तीत्वच ब्रीहिपदं तुषीपलचिततर्खुलपरं नतु तुषस्य विशेषणता येन तग्डुलावघाते बीह्यवघाता न स्या-दिति चिन्छा । यदा यत्र क्रिया दृष्टार्थद्वारा यज्ञाक्ष तद्भक्त श्र रूर्च-त्रिविवे धितयागाङ्गं तत्र क्रियापूर्वे तन्त्रन्त्र राठाभावेऽपि यागकाली तमन्त्रस पाळाता क्रियापूर्ळीत्वरूपाङ्गाभावेऽपि प्रधाननिष्मत्तेः, मान्सिके घाते मान्सिके छिन्ने कुशादी कुशादिच्छेद इति यावत्। सान्तिके सामाये हिविष च न्यूने सित इत्यन्वयः। अवघातादा-विलादिपदेन च्छित्रसात्राययो: परियह:। र न्त्रा याज्ञार्थसाधका द्रत्यस्य भावार्थमा ह मन्त्रार्थज्ञानस्थेति, नास्त्रपयोगदति, तदानीं सन्तस्था-समवेतार्थतादिति शेष:। नच सन्बस्थासमवेतत्वेऽपि पाठेऽदृष्टार्थता स्यादितिवाचं तद्मन्त्रस्य उद्योधकविधयाशास्त्रावधारणकाचीनानुभव-सूल अवाक्यार्थ खुत्युवधायकातया तद्दारैव यागीपकारकत्वस्तीकारात् साज्ञायं मान्तिक तथा। यज्ञे मन्ताः प्रयोक्तव्यामन्तायज्ञार्थसाधकाः। मान्तिक मन्त्रसाध्येऽववातादौ तत्काले मन्त्रपाठाभावेऽिय यज्ञकाले मन्त्राः प्रयोक्तव्याः
यक्तिंस्तु पच्चे मन्त्रार्थज्ञानसा नास्त्रापयोगद्गति। दृत्य
मेव प्रयोगान्ष्रानिमत्याह। एवञ्चोपवासविधौ प्रकृतावेवाशक्तविषयत्वेनातुत्व्यवलानां विकल्पायोगादेकभक्तादौनां प्रतिनिधित्वमेव। तदा तु प्रतिनिधौ यथायतमन्त्रपाठः। समवेतार्थता तु गौग्या सञ्चग्याः
विति (८८)।

तयाच प्रवमाध्याये कालायनसूर्वं, शद्धेविप्र-तिपत्तिरिति। प्रतिनिह्नितद्वे श्रुतशद्धः प्रयोज्यः श्रुतद्वे व्युद्धा प्रतिनिध्युपादानात् शद्धान्तरप्रयोगे द्व्या-

इस्रमेवचेति, एवं रीत्या एवत्यर्थः। संप्रति इदानीं प्रयोगानुष्ठानं तण्डुला-यववातादिनिष्पत्रपुरोडाग्रादिना यागानुष्ठानमित्याच इति विद्यानर इत्यनेनास्यान्वयः। उपसंचरति एवच्चेति, प्रक्षतौ मुख्ये योऽग्रक्तस्तृ दिष-यत्वेनैव तत्तत्पुरुषकर्त्तव्यत्वेनैव भयमतुत्त्यवलत्वे प्रतिनिधित्वेच चेतु-स्तदा तु मुख्येऽग्रक्तिकाले तु। गौण्या साद्य्यलचण्या तत्र सद्य-चस्तुप्रतिनिधौ साद्य्यलचणा विसद्यप्रतिनिधौ इतरलचणा सुसद्य-स्थलेऽपि कचित् इतरलचणा लाघवात् यवादिप्रतिनिधिगोधूमादि प्रयोगे यवपदस्य यवावयवलचणा यवावयवत्वमपेच्य यवावयवारस्थल-रूपसाद्वस्ये गौरवात् गोधूमगतस्यापि यवावयवगतत्वसभवादिति तथा चेति प्रतिनिधौ यथाश्रुत मन्त्रपाठ एवत्यर्थः (६८)।

स्त्रिमिति चाहदतिशेषः, शब्दे प्रतिनिधिद्रव्यत्यागादौ मुख्यप्रयोगाः क्ष्मप्रदेऽविप्रतिपत्तिर्मुख्यार्थवाधेन नाप्रयोज्यतेति भावार्थमाह प्रतिनिहित द्रति, खुतः मुख्यप्रयोगाङ्गतया खुतः खुतद्रव्यवुद्धा खुतद्रव्य-सादृष्यवुद्धा तत्सादृश्यवुद्धि खुतशब्दस्य गौण्या लच्चण्या सम्पाद्यत क्तरवृडिप्रसङ्गात्। यथा, अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेव जलेऽिप वेति। मत्स्यपुराणदर्भनात् इस्तादिक्षोमपर्च अग्ने करिष्ये दृखनूष्ठ एव प्रयोगद्गति अतएव यज्ञ-पार्श्वः। तेलं प्रतिनिधिं कुर्थ्याद्यज्ञार्थे याज्ञिकोयिद्। प्रकृत्येव तदा होता ब्रूयाद्घृतवतीमिति। अव दृव्यपदमु-पलचणं सर्व्वप्रतिनिधावेव नोहो न वा वाधः। किन्त्व विकृतएव मन्तुः पाठ्यद्गति। एतेन यम्बीक्तीं तां एक-भक्तेन योविप्र उपवासब्रतञ्चरेदिति, उपोष्य नक्तेन विभो दृखादिषु उपवासपदप्रयोगान्मासमगृहोतं जुहो-तीतिवज्ञाक्षोऽतिदेशात्प्राप्तस्थोहेन प्रयोग द्रति, तथा समवेतार्थत्वाय एकाहारादि पदं प्रयोज्यमिति-हिमाद्रिणोक्तमिप निरस्तं। एवं नरं पञ्चलमागत-

इति वोध्यं। यहा युतद्रञ्जाद्वा युतद्रञ्जाभेदारोपेण आरोप आहार्थ भ्यमः द्रव्यान्तरवृद्धिप्रसङ्गात् द्रव्यान्तरत्वेनैव वृद्धिप्रसङ्गात् तेन प्रति-निधिद्रये द्रयान्तरत्ववुद्यावश्यकत्वेऽपि न चितः। न च द्रव्यान्तर-लेन प्रयोगे को दोष इति वाच विधिवाक्ये द्रव्यान्तरलेनाप्राप्तलात । यस्तुतस्तु युतद्रव्यवृद्धेग्रखत युत्तलं यवणविषयलं द्रयोयकणविषयता-व्यापारानुविश्वनी। तथाच मत्त्र्या लच्चण्या वा शुतमव्दजन्यवीधविषयत्व मिति पर्थविततं द्रव्यान्तरवृद्धिप्रसङ्गात् युरुप्रव्दघटितमन्त्रकरणक एव द्रव्यत्यागः कार्यः इति नियमभङ्गप्रसङ्गात्। अतएव यवाग्नये खाईति मन्त्रः युतस्तत वक्कये स्वाहिति न प्रयुजाते, तथा युतार्थस्तु न युक्तिसिष्ठः शुत्राव्दप्रयोगेऽपि द्रव्यान्तरवृत्तिसभावात् शब्दान्तरप्रयोगीऽप्याहार्थ-युतद्र यतु बिस भवाचे ति, प्रक्रत्येवानू हेनैव प्रतवती मिति शब्द घटितमन्त्रं द्रव्यपदिमिति स्वव्याख्यायां प्रतिनिहितद्व्य द्रत्यव द्रव्यपदिमित्यर्थः। उपलच्यम्पवासादिप्रतिनिहितैकभक्तादीनां याहकं यग्-क्रोकप्रस्वकार स्ते नोक्तमितीत्वनेनास्यान्ववः। समविधानेन न इं मिति वराइपुराणीय तु नारीं पञ्चलमागतामिति न जिङ्गोइः, स्त्रीपुंदाइस्य समिवधानेन प्रक्रतिविकृतिला-भावात्। न च वैभित्तिकार्यपुंस्विविश्वष्टवोधात् स्त्रियां बाध द्रति वाच्यं, प्राथमिकत्वाद्दलीयसः प्रातिपदिक-स्यार्थवच्तेन स्त्रीपचेऽिष विनियोगात्। किन्तु वैभित्ति-क्षार्थवच्तेन स्त्रीपचेऽिष विनियोगात्। किन्तु वैभित्ति-कालिङ्गस्य स्त्रियां प्रयोगसाधितामावं पुंसि त्वर्थसाधु-तािष। अत्यवैक्तपािक दैचे प्रभावाम्नातस्यादितिः पाशान्प्रमुमोित्तिति मन्त्रस्य निःसन्दिन्धार्थपाश्रपाित्य-दिकालिङ्गेन विनियोगो न तु पञ्चाङ्गाविना वहुवचनेन वहुपाश्चिकायां विकृतावृत्कर्षः, नािष प्रकृताविव पाश-पदे अवयवलचाणा किन्तु प्रयोगसाधुतैव वहुवचनस्रेस्तुतं। एवञ्च, एतदः पितरोवासद्गति जल्पन् पृथक् पृथक्,

दहेदित्याचेकविधिना नरदाइलेनैव प्राप्ता, प्राथमिकलात् प्रथमोपस्थितलात् वलीयस उत्तरकालीनप्रत्ययार्थोपस्थितिनरपेचान्यवीधसमर्थस्य प्रतिपदिकार्थस्य प्रक्षतर्थवत्त्वेन समवेतत्वेन लिङ्गस्य नरमिति
पुंस्वस्य स्त्रियामिति वाधेऽपीति ग्रेषः, पुंस्ववीधकविभक्तेरिति च ग्रेषः,
प्रयोगसाधतामावं प्रयोगस्य साधताऽर्थविग्रेषसम्पादकत्वेन वराकरणनिष्पन्नत्वं तन्मावं तद्रूपंफलमितिग्रेषः। साधताज्ञानस्य गाव्दवीधहितुत्वे साधतापदमव साकाङ्कतापरं। तथाच विभक्तार्थलिङ्गस्या
विविच्चतत्वभितिभावः। अर्थसाधता पुंस्वरूपलिङ्गपरता, देवे दीचणीय
प्रभौ पग्रयागे त्रान्नातस्य विहितस्य निःसन्दिग्धार्थः ग्रवाधितमुख्यार्थक
पागात्मकपातिपदिकस्तस्य लिङ्गेन विग्रिष्टार्थवीधनसामर्थेन विनियोगः पाठः पश्चाङ्काविना प्रगातपदिकोत्तरप्रयुक्तेन वहुवचनेन हितुमा
विज्ञती विक्वतियागे उत्कर्षःपाळाता प्रक्रतीभूतपण्रयागप्रकरणीयस्यापि
वहुवचनार्थवाधान्नतत्र पाठ द्रत्यभिप्रायः। एतदभिप्रायनिष्धकं नित्तिति
अत्र हेतुलाभाय पश्चाङ्काविनेत्युकं सभवत्प्रयोगसाधतामावकेण दृत्यर्थः

इति ब्रह्मपुराणेन प्रकृतावेव पार्त्रणे विचाहिषु प्रत्येक
एतइ द्रित वहुवचनान्तमन्त्रप्रयोगात् तवानर्थक्यात्तहिकृतावेकोहिष्टऽपि वहुवचनान्तप्रयोगो नतु एकवन्धन्तानृहित एकोहिष्टे, द्रितिविष्हुवचनादेकवचनान्तजहाः।
एतहचनात् जर्ज्ञं वहन्तीरस्तं घृतं प्रयः कौलालं परियुतं श्वास्य तर्पयत से पितृन् द्र्यादिसन्तान् वहवचनान्तान् प्रकृती समवेताथानेकोहिष्टे एकवचनवद्षत्ति
पितरिम्यादिविकृतान् कुर्त्यात् एकिस्मन् पितरि वहनचनस्यासमवेतार्थत्वात्। यत्रष्व देवी प्रभावदितिः
पाशं प्रमुमोित्विति यदितिः पाशान् प्रमुमोित्विति पाशमन्ती एकवचनवहवचनान्ती युती, यदितिः खण्डनरहिता देवसातिति भाष्यव्यास्थानादिदितिरिन्थेव पाठः।

त्रवाच प्रातिपदिकार्थस्य अविवच्या कचिद्पि प्रयोगादर्भनात् तदर्थस्यावाधितत्वे विभक्तार्थाविवच्यापि कचित् प्रयोगदर्भनात् विभक्तार्थं
वाधिऽपि तद्विवच्या प्रयोग उपपद्मत इति भावः। प्रकृताविव प्रकृतियागएव एवकारिण वहुपाश्चिकायां विक्रती न लच्चिति लभ्यते। अवयवलच्चिति तथा चावयवस्य वहुत्वेन वहुवचनान्यसम्भव इति भावः।
नापीत्यत्र हितुर्मानाभाव एव वोध्यः। ननु वहुवचनान्ययानुपपत्तिरेव
मानमित्यत् आहं विन्तु प्रयोगमाधृतेव इति, एवकारिणार्थकत्वव्यवच्चेदः।
एवञ्च विभक्तेः कचित् पद्माधृतामाचार्थकत्वे च, एकवत् एकवचनान्तः
पदवत् वहुवचनस्य वहुवचनार्थवहुत्वस्यासम्भवतत्वादिति। असमवेतार्थकत्वादिति पाठे वहुवचनार्थवहुत्वस्यासमवेतत्वादिति। असमवेतार्थकत्वादिति पाठे वहुवचनार्थवहुत्वस्यासमवेतत्वादिति। असमवेतार्थकत्वादिति पाठे वहुवचनार्थवहुत्वस्यासमवेतत्वादिति। असमवेतार्थकत्वादिति पाठे वहुवचनार्वत्वत्वासिः स्वाद्माः। विक्रताक्षि हिपाश्चिकायामिः
सम्बन्धाम एकवचनान्वतत्वत्वत्वासः एतत्ते पितर्थास इति सन्यन्ताम
इति सावत्। सनूह एवति स्रविद्याश्विकायां वहुवचमान्तसन्त्वपाठो न सुक्त एक्

यवैक्ववचनान्तस्य प्रकृती समवेतार्थलाहिवाणिकायां विकृती हिवचनोइ: का ये: । वहुवचनान्तस्य तु प्रकृता-वसमवेतार्थलात् विकृताविध तथैव युक्तलाद्वीइ: कि तु वहुवचनान्तस्यैव प्रयोगद्र युक्तं । यत्तु, हैतिनर्णये एतद-द्वित वाक्यं पृथक् पृथगिति वीसावजेन पार्ळ्णमाव-विषयकं एतेन तन्मन्तस्थवहुवचनस्य पार्ळ्णएव प्रयोग-साधतामावं नत्वेकोहिष्टेऽिय तत्र वीसासहितवाक्या-प्रकृतिरित, तद्भ, तद्भाक्याप्रकृती कथं तन्मन्त्वलामः । प्रकृतिविद्धितिति न्यायाद्धामदृति चेत्तदा हिपाणि-कायां वहुवचनानूहद्भवावाय्यनूहएव । वितृबदस्य तु प्रकृती समवेतार्थत्वात् प्रतेकोहिष्टे प्रेतबदोहद्गति । प्रोद्गातृषां भन्द्यः फलचमसद्भादौ मन्तेतरिमन् प्रोद्गातृषां भन्द्यः फलचमसद्भादौ मन्तेतरिमन् प्रोद्गातृब्वं प्रोद्गावादिलच्यौव विभक्त्यर्थान्वय-प्रोद्गातृब्वं प्रोद्गावादिलच्यौव विभक्त्यर्थान्वय-

वसन्तानूहित एकोहिष्ट इति वचनादेकवचनाक्तप्रयोगस्यावस्यक्तात् तहचनस्य सङ्गोचे प्रमाणाभावात् पार्वणे वहुवचनान्तमन्त्रपाठस्य वाचिनकत्वादगत्या वहुनचनस्य तत्र निर्ध्यकता एकोहिष्टे तथा वल्यक्ताभावात्। नचेकवसन्त्रानूहेतितं वचनं न्यायमूलकमिति प्रक्रतीपद्रसाधुतामात्रक्रवहुवचनान्तघटितमन्त्रवाद्यस्य विक्रताविष सम्भवेत कथ्यस्ट इतिवाच्यं सर्ववैव विकृती प्रकृत्यर्थविवचयेव विभक्तः पदमाधुता मात्रार्थकत्या अतूहमन्त्रपाउसभवेऽश्रुतपदक्तस्यनाया अन्याय्यतापन्तेः। लक्षाहचनादेवैकोहिष्टे एकवचनोहस्य दृष्टलादन्यत्रापि विक्रती प्रकृतिश्रुतमन्त्रस्य विभक्तप्रहेन प्रयोगस्य वक्तव्यत्वात् विपाणिकस्यले वचना भावात् न वहुवचनस्यले विवचनोहः। युक्तिस्तु सार्थकपदस्यले एवति चिन्त्यं। ननु विभक्त्याः पदसाधुतामात्रेणापि प्रयोगः प्रोहातृणां भन्तः पत्तचमस इत्यादिवाक्ये प्रोहात्यदे तहणे ऋत्विङमाते लचणा दृत्थादि यहुवचनान्ता गणस्य संस्वका इति भाष्यादिति सिहानाः कथ्य

व्युत्पत्तेः मन्ते तु न व्युत्पत्तिमाचेणार्थपरता किन्तु प्राति-पदिकलिङ्गेनैव विनियोगः। सन्भूयकारिता तु पाशा-निति मोचनकर्मतापरत्वेनापि, अत्एवोक्तं न विभक्ते-

मित्यत पाइ प्रोहातृणामिति प्रोहात्वच णैविति विभक्तार्थव हुत्व-स्यान्वयानुपपत्तेरितिभावः। ननु विभक्तप्रध्वहुत्वानन्वये का स्रति-रिति तत्राह विभक्तार्थान्वयव्यत्पत्तेरिति तथान्वयस्य व्युत्पत्तिसद्यलात् श्रन्यया व्युत्पत्तिभङ्ग इति भावः। ननु मन्त्रे तथा व्युत्पत्तिभङ्ग इत्यत श्राइ म से विति अर्थेयरता विभक्तेर्थेयरता प्रातिपदिके यि सङ्गंतस्यार्थ प्रकाशनसामर्थाविनियोगात्तयाच प्रातिपदिकार्थे उन्वयवीध एव विभक्ती-रर्थवत्त्वमितिभावः। यदा प्रातिपदिकलिङ्गं प्रातिपदिकनिष्ठं यत्सार्थ प्रकाशनसामधें तदेकविनियोगात् तन्त्रावतात्पर्छेण मन्तु अ विनियी-गात् न विभक्ताा अर्थवत्त्वमपि विविच्ति मितिशेष:। ननु प्रकृत्यर्था-न्वितस्वार्थवोधकत्वं प्रत्ययानामिति नियमभङ्गदत्यत आह सम्प्रयकारि-विति मिलितार्थंपरता तथाच कमीलक्ष विभक्तार्थान्वयेनैव नियम-श्चणादितिभाव:। एकं वचनं एक्तवादिकं प्रयोजनमर्थः। न च मिलातृणामित्यत षष्ठीविभत्तोः कर्त्तृत्वार्यतया वहुत्वाविवच्यापि धडुवचनस्थीपादानात् कथं प्रोद्गातृपदे लच्चिति वाच्यं मन्त्रेतरत संख्यावोधकत्वनियमात्। अन्यया कचिदेक वचना-प्रत्युत प्रथमोपस्थितत्वादेकवचनस्यैव प्राद्गातृ-देरनियमापत्तेः। प्रयोगापत्ते:। मन्त्रेतु यत व्यथा मन्तोऽभिहित स्तव तथैव पाळा इतिनियमादितिभावः। अतएव कर्मात्वान्वयैनैव विभक्तेयरितार्थादेव नोत्कर्षः न विभक्त्यर्धवहुत्वान्वयः। पुकृती तथा-न्वयाभावादितिभावः। कर्माणः कर्मात्वस्य यद्दा दितीयाविभक्तेः कर्मी-वार्यः। अभेदेनास्य पुक्तव्यर्थेनानुय इति वैयाकरणसतिनोत्तां। पुक्ती एकपाशिके पशी भावादन्वययोग्यत्वात् पाश्ववैधक्तात् पाश्रसादृश्या-भावात् पाम्र गद्वि सहमेदम्यद्विटितलादिति यावत्, विसहमञ्चात लिङ्ग संख्याविक्शवस्वार्थपरत्वं एतदेव विव्रणोति तथाहीति सिविहितार्थपर-खात् प्राक्रुडिख परवात् एतदाक्ये पूर्ववाक्ये रूपान्तरासिवधानात् विक्रताविष नीत्वर्षः। तथाच भट्टवात्तिकः, प्रक्रती तथायस्य पाशस्य विभक्त्यर्थस्य कर्माणः। उभयोः प्रकृती भावाद्गीत्वर्षीऽस्थावकल्पतद्गति। अस्मात्त्वमभिजातोऽसि दति सान्नेमेन्त्रस्य तु स्त्रियां वाधः पाश्वधर्म्मात्, तथास्यस्मादिति ददमः सर्वनामत्वेन सद्गिहितार्थपरत्वा-देतद्वाक्ये क्षान्तरासद्गिधानात् स्वपदोशत्तिङ्संस्था-विशिष्टे क विभक्तिरिदंपदार्थः पुमानेकद्गति यावत्, ततस्र

रूपान्तरस्य पुंस्वाद्यनविच्छन्ननरत्वादिमात्रस्थासनिधानात् अनुपस्थिते स्पदोपात्तेति अभिजातान्वययोग्येत्यर्थः। सर्जनामां प्रागुपस्थित लिङ्ग-संख्याविशिष्टानुयवोधपरताया श्रीत्सर्गिकलादिति भावः। असात् पुरुषात् यतस्वमभिजातोऽसि आधानसमये उत्पन्नोऽसि अतस्वं हिंग्ने इसं दहिति स्तीसकागादुत्पन्नलाभावेनास्य मन्त्रस्य स्त्रियां वाधद्ति भावः। प्रातिपदिकलिङ्गादेवेति स्वघटकेदंपदालकप्रातिपदि-कार्य लि इसं व्याविशिष्ट न स्वीवसामर्थादित्यर्थः। न सनिधेरपेचेति पुं-तात्पर्थवनरपदोपस्थापितत्वापेचेत्यर्थः। सनिधेरपस्थापितत्वात् तत्पर-लारेनिमित्यस्य स्तीपरलात् निलिति मानुषः ग्रंडिमच्छति इत्यनन्त-रोत्तपदोपस्यापितपुं स्वविधिष्टपरत्वं। अय विभन्त्या विभन्त्युपस्यापित पुंस्वानुयार्थं सङ्गोचः पुंतात्पर्थाकत्वं। श्रय विभक्तेरिकवचनादेरिक-त्यादिपरतयानुगासनात् तदनुरोधेन एकवचनायू इः क्रियते लिङ्ग-वोधार्थं नो हः प्रातिपदिकविशेषसहकारे गैव विभन्ने लिङ्गोपस्थापकत्वात् पातिपदिकस्य च स्वार्थान्ययोग्यतैव प्रयोगान्निङ्गविशेषवीधाय तदू हा-स्वीकारादिति तात्पर्धमविसतं तत्र स्त्रीदेवताप्रतिष्ठायां अस्यैपाणाः प्रतिष्ठन्विति मन्त्रस्य कयं लिङ्गोहिन पाठइतिचेश इदंपदस्य सिविहित-वाचित्वात् अमुकदेवताया इच्याणाइत्यादि पागुपन्दस्तमन्त्रे स्तीदेवता-वेनैव सिविहितलात् तत्परलं श्रमी इत्यस्य न सभवतीति श्रसी इत्युहिन पाठ: स्वीमिप्डिन येचावलेति मन्त्रा तसीइत्यव तसीइति-

प्राति विक्षि हारेव पुंसि सन्तृ विनियोगद्गति। नरं पञ्चलसागत सियारेस्वसर्थनामत्वात् सिव्धिरपेचा किन्तु लिङ्गसंख्यानपेचयेव प्रातिपदिकार्थता। नचैवं तदेनं संश्यापद्मसिति याच्चवल्क्ष्मीयसन्तृ स्त्वीपरीचायां वाधः स्थात् एनिस्थस्य सर्ज्ञनासत्वेन अस्मान्त्वसितिवत् सिव्चित्विभक्त्यपनीतपुंस्विविशिष्टव्यक्तिपरत्वेन पाश्चिधस्म्रा-दिति वाच्यं। एनिस्थस्म मानुषः श्रुडिसिच्छतीति स्वाक्थएव सानुषत्वेन स्त्रिया अपि सिव्धिस्तत्परत्वात्

नोत्तः तन्त्रन्तस्य यत्पदेन यः पठित स जानाति इत्यादी जन-वादिसामान्यक्षेपेणेव प्राप्तिष्टलीकत्वादिसामान्यक्षेप , स्त्रीप साधा-रखेनोपस्थापनात् तसीदति तत्पदस्यापि तथावीधने सामध्यात् तस्यैद्दतिनोहः। नच मन्त्रे येद्रत्यत्र यांश्रेत्यत्रच याद्रत्यूहः कार्य्यद्रति तसीद्रत्यत तसी द्रत्यूहद्तिवाचं नरं पञ्चत्वमागत मित्यत दत्तोत्तर-वात्। प्रतिनिधिस्थले युतगव्दप्रयोगे इतियदुत्तं तकान्त्रकरणकदाने मन्त्रेच वोध्यं। तेन केवल-लीकिक-वाक्ये न सुतशब्दप्रयोगद्रति धेनुदानाचनुकल्पवराटिदानादी वराट्यादिग्रव्देनैवदानबाक्य'। नरत्व' विलिक्षेण इत्यत्र छागत्वं विलिक्षेपेणित्यूँ हैन पाठः। पुकृत्यर्थासमवैतत्वे तरूहिन पाउस्यावस्थनत्वात् वैकल्पिकस्थले एव न प्रकृत्यूहिन पाठः। श्रसात्वमभिजातोऽसि इत्यवास्यास्विमित्यूहेनापि न पाउः। श्रभिजात-खानन्यात् नचाम्याधाने पत्ना अपि सहकारितया कथमभिजाता-न्यानुपपत्तिरितिवाचां अमीस्त्रियाः साचादजनकत्वात् तथापृयीगे सन्णापत्तेर्लेच्णाग्राहकमानाभावाच श्रभावे चान्यद्रव्याणामुद्रकेनापि पूजित:, इतिनृसिंहपुराणीयवचनात् पुष्पाभावे च देयानि पतान्धेव जनाईने। पत्राभावे जलं देयं तेन पुरुषमवामुयादिति आक्रिका तत्वधतत्रचनाच देवपूजायां पुष्पादि प्रतिनिधादकदाने इदं पुष्पार्थ-मुदक्रममुकदेवतायै नमः इतीयं क्रमेण वाकारचनां कुर्व्यन्ति । वस्ततस्त तर्वदंपुष्यं अमुक देवतायैनम इत्येवं क्रमेणैव जलदानं पुष्ये इदंपहा-

न तुं पश्चाद्वावि पुंख्वविभिष्टोऽयः, श्वतीमानुषत्वेन स्विया-श्रिप सिन्धिस्तस्यामपि पृवत्तस्य पृतिपदिकस्य न विभन्नया सङ्गोचः पाशन्यायतील्यात् (८६)।

यथेकभतां। स्कान्दे, दिनाईसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत्। एकभत्तसिति प्रोत्तं रात्री तद्व कदा-चन। नियमेन, ब्रह्मचर्थः तथा शौचः सयमामिष-वर्जनं, द्रयादिसामान्यव्रतधर्क्षण। चतुर्थचरके तु न्यूनं ग्रासत्रयेण त्विति देवलः। द्राक्तिं शत्तु गृहस्थसेऽति पद्मपुराणीत्तस्य ग्रासस्य चयन्यूनतेति। चत्र च पर-दिनाद्वातीतकाले तत्तिध्यलाभेऽपि परदिनएव तत्समये एकभत्ते कुर्थात्। तिथी यत्रीपवासः स्वादेकभत्ते-ऽपि सा तिथिरिति सुमन्तवचनेनोपवासाईतिथिखग्ढ-विश्रषसम्बन्धिदिनएव पृतिनिधितयैकभत्तविधानात्।

र्थं स्व जलसंभिदंसस्व सेना हाथारी पाल क्या व्वोधसी कारणेव ता हम-वाक्यसक्षवात्। सर्व्योधचारवस्तूनासभावे भावनेविह। निर्मः लेनो दक्षेनाय पूज्यतित्याह नारदंदति, राघवभद्दश्तवचनात् तच भावना दत्य-चापि सर्व्योधचारवस्तूनामन्वयः, तथाच पूजाता जलेन भावनाच पुष्पा-दीनासित्यन्वयदर्भनादा हार्थ्यारोपेण दानस्चनसितिभावः। नच प्रति-निधिस्थले सन्त्रे गौष्वा लचण्या वा समवेतार्थतित कथम् तं तचापि भाहार्थ्यारोपात्मकप्राव्यवोधस्त्रीकारसभ्यवादितिवाच्यं लीकिकवाक्ये लथा स्वीकारसभवेऽपि वैदिक्सन्त्रे तथास्त्रीकार भ्रमजनकत्वलचणा-प्रामाण्यापत्तेरितिदिक् (६८)।

श्रवैकभक्तमिति, दिनाईसमयेऽतीते इति, श्रव श्रष्टधाविभक्तदिन-पंचांश्रीमुख्य स्तद्धस्तनकालः पर्युद्दस्त इति वोध्यं श्रासचयन्यूनतेति, तथाच श्रासचयेण न्यूनं द्वाचिंश्रद्धासं उनचिंश्रद्शासमित्यर्थः। परदिन पवेतीति, एतच परदिवसीये तिथिखण्डे विहितैकादश्युध- खतन्त्र कमकाएव दिनाईसमयाती तकाले ति थिनियमः।
एवं नकादिष्यि। अथ नक्तत्रतं। स्कन्दपुराणे, पृदोषव्यापिनी याद्या सदा नक्तत्रते तिथिः। उदयान्त तदा
पृज्या हर्रेनेक्तत्रते तिथिः। भविष्यदेवीपुराणयोः, इविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाद्वारलाघवं। अग्वकार्य्यमधःश्रम्यां नक्तमोजी षड्वाचरेत्। एवं नक्तत्रतस्य गुक्त्वेन
पृग्यक्तवायपुराणवचने नक्तमिति इविष्याद्वादिभोजनस्य
कालपरं नतु नक्तत्रतपर तथात्वे उत्तरोत्तरगुक्तत्रतोपदेशपृस्तावे तदनन्तरं केवल इविष्याद्वोपदेशानुपपत्तेः (८०)।

यय हिवा हो। स्पृतिः, हैमिन्तिकं सिता खिद्वं धान्यं मुद्रास्तिलायवाः। कलायकङ्गुनीवारावास्तूकं हिलमोचिका। षष्टिका कालशाकञ्च मूलकं केम्-केतरत्। लवणे सैन्धवसामुद्रेगयो च दिधसर्पिषी।

वासप्रतिनिध्यक्षिप्रायेण। एक्च यत्र पूर्विदिने उपवासिविधस्तत्र पूर्विदिन एव तत्प्रतिनिधेयक्षभक्षादिनियम इति। स्वतन्त्रेति, यत्राष्ट्रभयदिने तत्तिथरलाभे लाभे वा परिदने एकभक्षव्रतं, उद्येतूपवासस्य नक्तस्यास्त्रभये तिथिः। मध्याङ्गव्यापिनी याद्या एकभक्ते सदा तिथिनित्रवोधायनवन्तादेविमिति, उपवासप्रतिनिधिनक्षव्रतेतु प्रदोष व्यापिनी याद्या उभयदिने प्रदोषे तिथिलाभे परिदने व्रतं तिथरस्त्रसम्बन्धादुभयदिने प्रदोषे तिथिलाभे परिदने व्रतं तिथरस्त्रसम्बन्धादुभयदिने प्रस्तमम्बन्धे परिदने, परिदने यस्त सम्बन्धाभावेवा तिसम्ब्यव्यापिन्यं नक्तव्रतंवोध्यं। इरिनक्तव्रते इरिसम्बन्धिनक्तव्रते एकादशीव्रतानुकल्य इति यावत् सत्यं सत्यवन्तं अग्नौकार्यः अग्नौदेवताहोमः अधः प्रयानिति खट्टादिश्यननिषेधकः (८०)।

सितासितिसितं ग्रह्णच असिवचेति धान्यस्य हिविधाले तर्ण्डु-सारेस्तदनुपपत्तिरिति धान्यपदं तदवयवपरं तच धान्यावयवे सिता-सितान्वे सिवतण्डुन देईविधालानुपपत्तिः धान्यावयवास्मकपदार्धिक- पयोऽनुड्गतसारञ्च पनसासहरीतकी। तिन्तिड़ी जीरकञ्चेव नागरङ्गञ्च पिप्पली। कदली लवली धानी
फलान्यगुड्सेचवं। यतेलयकं सुनयोहिविष्याद्वं प्रचन्नते।
याखिद्वामियभिधानादन्यव भिवत्वधान्ये न दोषः।
यतएव हारीतः, यय सूनां व्याख्याख्यासोजङ्गम्खावरादीन् प्राणिनः सूदयन्तीति सूनाः ताथ पञ्चविधा
भवनीत्यु प्रक्रस्य चतुर्थोपर्यान्तमभिधाय याह यादीपनता प्रविद्यान्ति । पञ्चितः पञ्चता
निरययोनीरहरहः प्रजाः कुर्वन्ति पञ्चसी तदेवं पञ्चता
निरययोनीरहरहः प्रजाः कुर्वन्ति पञ्चसीः पाकयज्ञैगृहस्य
वानप्रस्थान् पावयन्तीति। पष्ठीर्थः कल्पतम्कता क्रतः
सूदयन्ति प्राणीर्व्वयोजयन्ति। यहीपनं काष्ठादेः, तावनं
तोयादेः, खेदनं धान्यादेः, भर्जनं यवादेः, पचनं तएडलादेः। पञ्चसूनाः पाकयज्ञैः सूनादोषात् पावयन्तीत्थर्थः। पतेन धान्यखेदनं ग्रहृ ख्यानप्रध्याम्यां कर्त्तव्य-

देशे धान्येऽन्वये व्युत्पत्तिभङ्गः। अन्यया पग्रपण्यित्वादी लच्चणं विनापि योग्यतापत्तिः पग्रपदार्थंकदेशे लोसादी पग्रभेदसत्त्वादिति चेत्र कित् पदार्थतावच्छेदकेऽपि पदार्थान्यस्त्रीकारात् यया परमसुन्दर द्वादी पदार्थतावच्छेदकसीन्दर्वे परमपदार्थान्यदिति। पग्ररपण्य-रित्यादी तात्पर्व्यानुपपत्तितपव लच्चणास्त्रीकारात्। यद्या धान्यपदं सिता-स्विच धान्यावयवि लाच्चणिकं सितास्विच पदं तात्पर्व्याद्यक्तं यथा चिच-पग्रित्यादी चित्रपदं तात्पर्व्यादकं जंत्तरपदं चित्रगोसम्बन्धिन खाच्चणिकमिति। एवं सुद्रादावप्युत्रेयं दिध चानुष्टृतसारपयोजातं वोध्यं अन्यवेति, इविष्यभोजनानियमस्त्रेले पचनादिभिरित्यादिनां द्वत्वार्थकरसादियरिग्रहः निरययीनी प्राणिवधद्यारा पापसाधनानि, पाक्रयच्चे विश्वदेवादिभिर्हेतुनिः पञ्चस्त्राः पञ्चस्त्राजनितपापानि स्वनाः भात् स्वतास्त्रारा पावयन्ति शोचयन्ति। एतेन ग्रहस्थवानप्रस्थाणां

मिति प्रतीयते। किन्तु तत्र धानास्याङ्ग्रज्ञननयो-ग्यतानागादेव पापं भवति तच्छान्तिरपि पञ्चय ज्ञे क्या। श्रतएव मनुनापि पञ्चम्नाविवरणे चुली खुतां। धान्यादी खेदनविधानात् क्षताकृतएव पाकशुद्धिविवेचनं, डि:-खिन्नत्वादिदोषय नाक्तते। तिहहतं कात्यायनेन, कृत-मोदनशक्तादि तएड्लादि क्षताक्षतं। बीचादि चाकतं प्रोक्तिमिति हुयां विधा मतं। यतो लाजमोदकादि यथा तथा पक्तमपि शाहादी दीयते। अगस्तासंहितायां, इधि चौरं घृतं गव्यमैचवं गुडवर्जितं। नारिकेल-फलञ्जेव कदलीं लवलीलया। आसमामलक्षेव पन-सञ्च हरीतकौं। जतान्तरप्रशस्तञ्च हविष्यं मन्वते व्धाः। हैमन्तिकां सिताखिज्ञसिखाङ्किचनानुसारादेव भोज-व्यवहारः। इविष्येषु यवामुख्यास्तदनु बीहयः स्थताः। माब-कोद्रव गौरादीन सर्वालाभेऽपि वर्जयेदिति कात्यायनवचनन्तु होसप्रकरणात्तचैव। नारायणीपा-ध्यायेनायेत इचन चया इविध्या तस्यानी जुइयादिति गोभिलोक्तं हव्यं स्पष्टयतीति स्यास्यातं। एतेन, कार्त्तिकं सकलं मासं पातः सायी जितेन्द्रियः। इविष्यभुग्जान्

स्नादोषनामार्थं यज्ञविधानेन, चुक्कीत्युक्तमिति, ग्रहस्थवानप्रस्थयोरादीपनादेः कर्तव्यत्वेन चुक्तम ज्ञावस्थकत्वादिति, धान्याद्वावित्यादिना सुद्वादि-परिग्रहः। खेदनविधानादिति, खेदनस्य कर्तृविभेषानिर्देभाचेति पूरणीयं प्राक्तग्रदिविवेचनं कर्तृविभेगादिकतत्विनवस्थनग्रदाग्रदिविवेचनं। ना स्ति इति, स्ति स्थापि धान्यस्थाकतत्वनिर्देशात् धान्यपाकस्य येन सिनापि सतस्य दोवाभावज्ञापनादितिभावः। तस्त्वुलादौत्यादिना स्नातः सर्ज्यभाषेः प्रमुच्यते, इति विषायचनं हविष्येषु यवा मुख्या द्र्याद्विचनवोधितिमिति क्र स्यत्कृतं निर्द्धा । एवञ्च, वीह्योमुहिमावाः स्युभाषमुत्तायवात्रपि, इति प्रारदातिलकोत्तं यत्तदिभिच्य यत्र होने माषादि विहित तत्परिमाणपरिमिति । स्नान्य वैदिककर्मादृत्वे न सामान्यत्रतधर्मत्वे सिद्धे नत्त्रतते पुनक्षादानमाद्राति-प्रयार्थे (त्र प्रकृति सामान्यधर्मव्युदानेनाि नत्त्रतत्ति प्रयार्थे (त्र प्रकृति सामान्यधर्मव्युदानेनाि नत्त्रतत्ति स्वाय्ये (त्र प्रकृति सत्तमाः । मुहूर्त्तीनदिनं के चित् प्रवदन्ति मनीषिणः । नत्तप्रदर्भनाद्रत्तमहं मन्ये नराधिय । स्मृतिः, नत्तं निप्रायां कुर्ज्ञात गृहस्यो विधिसंयुतः । यतिय विधवा चैव कुर्व्यात्तत् सदिवा-कर्षः । सद्वाकरन्तु यत्प्रोत्तमन्तिके घटिकादये ।

विद्वादिपरिग्रहः। जलयोगे धाय्यपाकस्य स्वेदनरूपत्वात् धान्यभर्जनेन जातस्य लाजमोदकादेनीस्वनत्विमत्यभिप्रायेणाह ग्रतएविति, यया तथा क्रतमपि ग्रदादिक्रतमपि। न च लाजादेधीन्यपाकजत्वे ग्रदादिक्रतस्य ग्रद्धत्वेऽपि मोदकादेः कथं ग्रदक्रतस्यापि ग्रद्धत्विमित वाचं स्विन्नमन्भदाह्यतिमत्यनेन सजलतण्डुलपाकेन जातस्य एवान्ववोधनादगुड़ादियोगेन पक्षस्य मोदकस्यानत्वाभावात् ग्रदादिक्रतत्व निवन्धनदोषस्य अन्नएव व्यवणाद्दिद्वादेरिप क्षताक्षतत्वेन तत्रच पाक्षन् ग्रद्धादिविनेचनं वोध्यं। मनुते वृथा द्रति एतद्यचनं पुरस्यरणस्थानीय-प्रिति पुरस्यरणकर्तृकर्नृकभक्षणीयहविष्रगान्नवोधकं तन सर्वत्र हिम् स्थानेन नारिकेलादिकं न स्टह्यत द्रत्यभिप्रायेणाध्य हैमन्तिकं सिता-स्विनं द्रस्यादि वचनानुसारादेविति। नज्ञनिहरिप क्षात्यावनेन हिन्स्यत्वन्यनात् कार्य हैमन्तिक्रमिति वचनेन स्थवहार द्रस्थतः स्थाह होम प्रकारणान् तन्वेति नररायणोपाध्यायेनापौति स्थास्थातिस्थानानुसः

निणानकत्त् विज्ञेयं यामार्डे प्रथमे सदा। (भविष्ये, उपवासात् र भेच्यं भैचात्परमयाचितं। अयाचि-तात् र नक्तामिति, प्रधान मुपवास स्तद्समर्थे नक्तं तद-समर्थे अयाचितं तदसमर्थे भेच्यं एवसन्यतमक्तेणानी तुल्यविध्यसस्भवात्।) सौरनक्ताकालस्तु तिथितच्चे जन-सध्यः। सार्का छेयः। एक भक्तेन नक्तेन तथैवायाचि-तेन च। उपवासिन दानेन नेवा हादणिको भवित्। अव-विष्णु पूजा पारण्योरङ्गान्तरा पेच्या प्राधान्य सवगस्यते आनु-काल्पिके प्रथेतयो रावश्यकत्वात् (८१)।

त्रय प्रतादिप्रतिनिधिः। स्कन्दप्राणं, प्रत्रञ्च विन-योपितं भगिनौं भातरन्तया। एषासभावएवान्य बाह्मणं विनियोजयेत्। गमञ्जूप्राणं। भार्थ्या भर्त्तृवतं कुर्धा-ज्ञार्थ्यायाञ्च पतिस्तया। असामर्थ्ये द्योस्ताभ्यां व्रत-

एतदचनाकर्तृगोक्षिलोक्तं हिवष्यं कम्म हिवष्यात्रस्थेति सुपां सुवितिस्मर्णात् हिवष्यात्रेनेत्यर्थः। एतेन कात्यायनवचनस्य होमपरत्वेन निरस्त-मित्यनेनानृयः। विश्वावचनं विश्वावचनोक्तहविष्यं वोधितं विवतं। नक्तत्रतकालमाह स्मृतिरिति, यितविधवयोःकालमाह यितिथेति, श्रन्तिके निश्मसभोपे सौरनक्तकालः सूर्यमुद्दिस्य यनक्तत्रतं तत्काल इत्यर्थः। मक्तेन नक्तत्रतेन स्रयाचितेन स्रयाचितमच्चणानेन याद्धां विना लब्धद्रष्य-भोजनेन दित यावत्। दानमाह त्रह्मवैवतं उपवासासमर्यथेदेकं विप्रन्तु भोजयेत्। तावडनानि वा दद्यात् यद्धक्तादिगुणं भवेदिति। स्रवेति एकादण्यपवासानन्त्रस्दिने स्रवगस्यते द्रित पूर्व्योक्तवचनादिन्त्यर्थः। स्रव्यक्तत्वादिति कर्तव्यक्तिति श्रेषः। नैवादादिश्वको भवेन्दित्याः। स्रव्यक्ति सत्वेन द्रियनेन द्रादशो सत्वेन वत्परित्याग द्रित स्वतं (८१)।

विनियोजयेदिति व्रतं इत्यादि, हयोः प्रत्येका भर्तृभार्थयोस्ताभ्यां भर्तृभार्थाभ्यां हित्स्था दिल्ला दृष्टाईबेतरक्षा। अत्र पुन्नादी भङ्गो न जायते। वराच्युरागे, वितृमातृपतिकात स्वस्युर्वादिभूभुजां। यह ष्टार्यम्पोषित्वा खयञ्च पाल-भाग्भवेत्। अनैव विषये कात्यायनः, दिचणा नाच कर्तव्या भ्रुष्या विहिता च सा। ननु प्रतिनिधी ममेह गर्कीत्यादिमन्बस्थमलं कुचान्वेत्विति चेत् प्रधानएव। तयाच णारीरकभाषेत्र श्रुतिः, यां वे काञ्चन यज्ञ-ऋत्विज आशिषमाशासते यजमानायैव तामाशासत-द्वतिहोवाचेति । ब्राह्मणसर्वस्वे यजमानायेत्यच यजमान-स्येतिपाठे विशेष:। सरलायांस्चं, यां वै काञ्चनऋत्व-गाणिषमाणास्ते सा यजमानस्यैवेति। अव ऋत्विग्यज-मानवदे प्रतिनिधिप्रधानवरे आकाङ्गितलात्। अतएव प्रतिनिधिपुचादिना आयान्तु नः वितरद्रत्यादिरन्हएव पठ्यते। वाक्यस्य काल्पनिकत्वात्तव न तथित। काल-माधवीय, काम्ये प्रतिनिधिनीस्ति निखनैमित्तिके हिसः। काम्येषूपक्रमादू हें के चिदिन्द नि सत्तमाः। निख' नैमित्तिकञ्च प्रतिनिधिनाप्युपक्रस्य कारयेत् कास्ये तु खसामर्था परीच्य खयमेवोपक्रम्य कुर्यात् असामर्थी

ग्रुष्ट्रित पुत्रादीन। मित्यादि, यजमानाय यजमानार्थं। इष्टञ्च ममें हित्य बाद्मात्पदं नोचारियद्धपरं किन्तु लक्षण्या स्रोचारियद्धप्रयोजकावितादियरं। एवमायान्तु न इत्यवाि वाक्यस्य कल्पनायाः स्वार्म्सिकत्वादिति भावः। उपक्रम्य संकल्पा अस्याि प्रतिनिधिनेत्वनेनाव्यः। मात्रपद्धेन काम्यव्यवच्छेदः। प्रतिनिधिनाभादिति कालमाधवीयवचनादित्यर्थः। सजातीयमिति मधुवर्ज्जनस्य प्रतिनिधिने गुड्-च ज्ञनमपीति भावः। भावत्तु कदाचिदिति अभावस्य प्रतिनिधि रित्यन्यव्येष्टा। क्षचिद्वचर्यलादभावोिप अभावस्य प्रतिनिधिः। यथैकादस्थादी हिव-

उपक्रमादृ ह्वं प्रतिनिधिनापि कारयेत्। एतच कांम्य-श्रीतवरं काम्यसार्तन्तु अन्यदाराष्य्पक्रम्य कार्या। त्तयाच पराशरभाष्ये शातातवः, श्रीतं कसी ख्यां क्वियादन्योऽि स्मार्त्तभाचरत्, अशकी यौतमयन्यः कुळीदाचारमन्ततः। चन्तत उपक्रमात् परतः। एतच काम्येऽपि प्रतिनिधिविधायकं नियनैसित्तिकमा वपरते श्रीतक्षार्तभेदीगादान व्यर्थं स्थात् तयोरविशेषादेव प्रतिनिधिलाभात्। अतएव भारत्याठांदी तथासमा-चारः। साखर्धसारे, नाभावस्य प्रतिनिधिरभावान्तरिम-ष्यते। सजातौयलेऽयभावान्तरमभावस्य प्रतिनिधिर्नेष्यते। भावस्तु कदाचिद्ययोपवासादौ ब्राह्मणभोजनादीति। नापि प्रतिनियातंत्र्य निषिद्धं वस्तु क्षत्रचित्। श्री वियाणामभोज्यं यह्व्यं हि तद्भेषतः। ग्राह्यं प्रतिनिधित्वेन होसकार्यो न कुचचित्। द्रव्यं वैक-ल्पिक्र' किञ्चिद्यव सङ्ख्यितं भवेत्। तदभावे सह-ग्गाच्चं न तु वैकल्पिकान्तरं। उपाते तु प्रतिनिधी मुख्यार्थील स्वते यहि। तत्र मुख्यमनादृत्य गीगोनीव

चित्रीजनातिरिक्तभोजनाभावो भोजनसामान्याभावकृषोपवासप्रतिनिधिः।
नच तत्र इविष्यात्रभोजनभेव प्रतिनिधिरिति वाच्यं। तथा सितं
इविष्यतोजनं क्रावा द्रव्यान्तरभोजनेऽिष प्रतिनिध्यनुष्ठानजन्यादृष्टोत्
पत्यापतेः। एवच्च नक्तं इविष्याद्यसित्यादिवचने इविष्यास्तादिपदं
तद्रतिरिक्तभोजनाभावपरं वज्ञता इविष्याद्यादिपदं तद्रतिरिक्तभोजन्नमावविद्यिष्टतद्रोजनपरं। अत्यथा भोजनसामान्याभावस्थले इविष्याद्रातिरिक्तभावनपरं। अत्यथा भोजनसामान्याभावस्थले इविष्याद्रातिरिक्तभावनपरं। स्वास्तुख्यप्रतिनिधिजन्यादृष्टद्वयान्यातिरिक्तभावन्यादृष्टद्वयान्याते। एवं अत्रोदनिमत्यव स्रोदनभोजनाभावविद्याष्टिकिश्विद्वाजनन्याते।

समापयेत्। संस्काराणामयोग्योऽिष मुख्यएव हि

ग्रह्मते। नतु संस्कारयोग्योऽन्यो ग्रह्मते प्रतिक्षपकः।

मुख्ये कार्य्यासमर्थे तु लश्चे ऽप्येतस्य नादरः। प्रतिक्षपक्षमादाय शक्तमेवोषयुज्यते। कायेक् पैस्तया पर्णेः चीरैः पुष्पे स्तया फलेः। गर्मेरसेः सहग्गाहंग्र पृर्व्वान्यासे परं परं। ग्राम्याणान्तु भवेद्ग्रास्यसारण्यानामग्य्यजः। यवालाभे तु गोधूमा स्तया वेग्रयवादयः।

हविष्ये गोष्ठतः ग्राह्मं तद्भावेऽिष माहिषः। याजः वा

तद्भावे तु साचात्तेलः प्रयुज्यते। तेलाभावे ग्रह्मीतव्यः

तैलजं तिलसम्भवः। तेलजं तिलस्रष्टः तिलसम्भवः

तिलिषष्टादि। तदभावे तु सस्ते हः कौसुन्धः सर्षपी
इवः। वृष्यसेहस्तया ग्राह्मः पूर्व्वाभावे परः परः।

तदभावे गवादीनां क्रमात् चीरः विधीयते। तदभावे

दिध ग्राह्मस्ताभे तिल द्रष्यते। यव मुख्यः दिध चीरः

सेव ल त्यं अन्यया उपवासं अतेषु सुख्यप्रतिनिध्युभयसिद्धापत्तेरिति,
न कु विद्भावस्थाभावः प्रतिनिधिरिति। नचोपवासासमर्थं एव प्रतिनिधेः फल जनकस्थ, प्रशुः प्रथमकल्पस्थेत्यादिवचनेन वोधनात् कथसुपवासे क्रते उभयफलसिद्धिरिति वाच्यं। उपवासासमर्थस्य रागादियुक्तस्य सत्यपि कथिद्धिदैववश्चात् उपवासस्थल एव प्रति-निधिफलस्यापि
सभवात्। नच तत्रोपवासप्रतिनिधिभ्यां एकमेव फलं जन्यत द्दित वाच्यं
प्रतिनिधिफलन्यूनताश्ववणात् सुख्यफलप्रतिनिधिफलं प्रत्येवप्रतिनिधजिन क्र वादिति दिक्। निधिद्वप्रिति, यत्र कभ्रीणि यिद्धिष्ठं वस्तु सामान्यतोवा तत्र विद्वितद्रव्यस्थालाभे तत्र सुसदृश्यस्पि तदस्तु तत्र कभ्रीणिसामान्यतो वा न नियोजयेत्। यथासुदृगाभावे सासादिकसित्यर्थः।
द्रव्यं वैकल्पिकसिति, वीद्वियवादिविकल्पस्थले वीद्यादिकरण्कत्वेन यागे

त्रवाि तद्वासतः। यजादेः चीरद्धादि तद्धाविऽिं गोष्ठतं। सुद्धासत्रीऽयवा याद्यः वार्ध्यं कार्णसन्तती। यत्रपव धृताभावे पृष्वं दिध ततः पयः। तथा, सर्व्यं गोणवालिषु वार्ध्य चीदितमाचरेत्। प्रायिष्यं व्याद्दतिभि इत्या वार्ध्य समाचारेत्। सत्यसूतो, धृतं न लभ्यते यत्र प्राध्याचीरेण चीभवेत्। चीरस्य च दिध च्रोयं मधुमञ्च गुड़ोभवेत्। यायुर्व्वोदे, सधु यत्र न लभ्येत तत्र जीणेगुड़ोभवेत्। पेठीनिसः, काग्डम्लपर्णप्रथमल-प्ररोहरसगन्धादीनां साद्य्येन प्रतिनिधिः कुर्व्यात् सर्व्या-भावे यवः प्रतिनिधिभवतीति। काग्रहं नालं, प्ररो-होऽद्धरः। सर्व्यालाभे यवद्वति कल्यतसः। यवयवद्वति नारायणोपाध्यायः। यान्तिदीपिकायां नारदीयपञ्च-रात्रं, यभावे चैव धातृनां हरितालं विधीयते। वीजानामध्यभावे तु यव एकः प्रशस्यते। श्रीषधी-

सङ्खिते तदभावे गाल्यादिकं सहग्रं ग्राह्मं नतु यवादिकसिति भावः ।
संस्काराणामयोग्योऽिय दल्लववातादिक्यसंस्कारानहींऽिय मुख्या वीहिन्
तण्डुवादिरेव ग्रह्मितं नतु तत्प्रतिक्यक्यालिधान्यादिकसवघातयोग्यमपीति समुदितार्थः । सुख्ये ब्रीह्मादी कार्यान्वमि पुरी डामान्यनहीं एतस्य
मुख्यस्य प्रतिक्पकं तत्सहम् भाल्यादिकं मक्तं पुरी डामान्दियोग्यं ।
कार्येरित्यादि ततीयान्तानां सहित्यानेनान्वयः । परःपर इति सुख्याभावे तत्कायतुत्वकायं वन्तु ग्राह्मं तदभावे सुख्यसमानकृषं तदभावे सुख्यसमानपर्णसित्यादिकं वोध्यं तेन्नं तिल्ततेनं तत्नेव सुख्यप्रयोगात् कीसुन्धं कुस्थतेनं गवादीनासित्यादिना क्रमात् सहिषाजयोः परित्रहः । अभावे दध्यभावे, सुख्यासन्नः सुख्येन साचात् कार्यः
कारणसावक्रमस्य ध्यानः कार्यकारणसन्ततो कार्याणां कारणानां

मामभावे तु सहदेवा प्रशस्ति। रतानामयभावे तु मृत्ताफलसनुत्तमं। लीहानामयभावे तु हेमपावं प्रकल्पयेत्। लीहानां तेजसपात्राणां। न्यायप्राप्त-प्रतिनिधिमिद्याय जैभिनिः, न देवतान्त्रियदिक्रय-मिति। जसार्थः देवताया जाहवनीयादे मन्त्रस्य प्रयाजासहराधिकक्षणशाहरुमाचार्यकत्वेनारादुपकारत्वाद्र प्रतिनिधिः। बीह्यादीनात्तु सिद्यपत्थोपकारकानां पुरो-हाणसाधनं हरुलेव प्रयोजनिमिति तच प्रतिनिधिक्वित-

याद्यां तेषां साचात् परम्परारूपेण वा तुःखे, गीणिति, मुख्यकाला करणे चेदं वीध्यं। अवयवस्तत्तद्व्यावयवः। श्रीषधीनां फल-पाकान्तानां, सहदेवावलादग्ङोत्पलयोः प्रारिवीपधी। सर्पाच्या सहदेवीतु पाच्छवीति। अत शारिवाम्राह्या श्रोषधिलेन साम्यात् । नदेवतिति, चन्देवतां तयाच देवतादिकं न प्रतिनिधिमर्हतीत्वर्थः । तत देवताः पूजालेन विधिप्राप्ता इन्द्रादयः। एवं यत्राग्नी हीमी विहितः येन अन्बेण कार्व्यकरणमुत्रां यच विहितं कमी च तत तेषाम सम्पत्ती सादृश्वादिन्यायेन न देवतान्तरादे र्यन्त्यं यवच वचनमस्ति तत्र तेषामपि प्रतिनिधियन् एं तथाच वैदिका निरमाव लौकिका नि-जलादी वैखदेव होसादि, यथोक्तमन्त्राज्ञाने गायत्रादि। चान्द्रायणाद्य-यकौ चेनुदानादि क्रियते। देवतायदार्थमा इवताया द्वादि, श्रीन पदार्थमाइ आइवनीयादेरिति, शब्दपदार्थमाइ मन्त्रस्थेति, क्रियापदार्थ-साह प्रयाजाखड्छेति, सावपदेन दृष्टफलव्यावर्त्तनं। श्राराद्यकारक्-वं न साचात् फलोपयोगिलं न तथाच देवतायास्त त्तहेवतावेनैव फलजन-कालावगमात् नान्यत क्तत्पाससिविचितिभावः। संनिपत्य परम्परया, साधन' जनन', दष्टमेवति, तथाच प्रधानकश्चीसाधनस्य पुरीडाशस्य सिवार्थं बीखादिकमुतं तदलाम द्रव्यान्तरेण पुरीडाशादेर्नियत्तौ तद-य इणमितिभावः। व स्तुतस्तु यारादुपकारकत्वात् कासान्तरे उपकारक-खादाराहूरसमीपयोरित्यनेन आरादित्यस दूरार्थकत्वाददृश्दारकेणिति

दृख्तां। परिणिष्टं, सुख्यकाले तु सुख्यञ्चित् साधनं नैव लभ्यते। तत्कालद्रव्ययोः कथ्य गीणता सुख्यतापि वा। तव भरहाजः, सुख्यकालसुपाणित्य गीणसप्यस्तु साधनं। न सुख्यद्रव्यलाभेन गीणकालप्रतीच्चणं। गीणेषु तेषु कालेषु कथा चोदितसारभेत्। प्रायश्चित्तप्रकरणप्रोक्तां निष्कृतिसाचरेत् (६२)।

उत्तरमतं सिडान्तकपिति केचित्। तहिभप्रायक्षे मीमांसाषष्ठाध्यायसूचं। पौर्व्वापर्ये पूर्वदौर्व्वल्यं

तबहित स्तत्काले फलजनने ऽदृष्टखीकारानुपपत्तेः एवञ्च वचनं विना युत्त्या श्रदृष्टद्वारा फलसः धनस्य प्रतिनिधियहणे तदारात्फलस्यादृष्टत्वात् संग्रय एवति न तदाचरणिसितिभावः । सन्तिपत्य साचात् तथाच फल-स्यदृष्टत्वात् प्रतिनिध्याचरणिसितिभावः गौणता अप्रधान्येन अनपेच-नीयता, सुख्यद्रव्यालाभेन सुख्यद्रव्यलाभार्षः । अत्र हेतुमाह गौणिष्विति तथाच गौणकाले कसीकरणे प्रायश्चित्तव्यात् सुख्यकालत्यागस्य पाप-हेतुत्वमवगस्यत इति तत्त्यागोऽनुचितः किन्तु दैवात् सुख्यकालेऽकरणे एवगौणे कर्त्तव्यतित समाधानं (८२)।

केषां सतमाह उत्तरसतिसत्यादि, उत्तरसतं सुख्यद्रव्यान्रोधेन गौणकाल कर्तव्यतामतं सिद्धान्त इति, पूर्व्यसतन्तु पूर्व्यच्च इति ग्रेषः । समुचयासकावादिति, पूर्वं ग्रदचिणयागे कते यागार्थं किश्विद्यायेन विच्छेदकालीनसर्व्यखात्तदनन्तरं सर्व्यदचिणयागासकावः प्रयम्पतः सर्व्यदचिणयागकरणे धनाभावेनादचिणयागासकावदिति न समुचयसभादति। ग्रमुपजातिवरोधित्वात् प्रयमनिमित्ताधीनयागकरणे विरोधानुपस्थितेक्तरस्थात्तराभिधानस्य पूर्व्वनिरपेचस्य पूर्व्वविध्युद्यापिताकाङ्वानुत्यापितत्वात्त्याकाङ्कोत्यापितत्वे पूर्वस्थापकी विरोधानुपस्थितेक्तरस्थात्तराभिधानस्य पूर्व्वनिरपेचस्य पूर्व्वविध्युद्यापिताकाङ्वानुत्यापितत्वात्त्याकाङ्कोत्यापितत्वे पूर्वस्थापकी द्विभावः। वाधकतयोदितत्वात् ग्रन्थया तदुर्व्यानासभव दति भावः। वाध्यत्वायोगादिति, तथाचीत्तरनिम्निक्तिवेषित्वात् प्रागः

प्रक्षतिवदिति, ज्योतिष्टोमेऽन्योन्यं सम्बुध्य यन्न्यालातोविष्टिर्निर्गच्छतास्टित्वां विच्छेदिनिमित्तं प्रायिश्वतं
स्रूयते। यद्युद्गाता विच्छिन्द्याददिविणेन यक्ति यदि
प्रतिष्ट्रभी सर्वेखदिविणेनिति। तवोद्गाद्यप्रतिष्ट्रवीः
क्रमेण विच्छेदे विकद्यायश्चित्तयोः समुद्यासम्भवात्
किं पूर्वं कार्यं उत वा परिमित्त संग्रये हि सनुपजातिवरोधित्वात् पूर्व्वमिति पूर्व्वपवे राह्मानः पौर्व्वापर्यो सित निमित्तयोः पूर्व्वस्य विमित्तस्य दौर्वव्यं
उत्तरस्य पूर्वं निरपेचस्य तहाधकतयोदितत्वात् पूर्व्वादयकाले उत्तरस्याप्राप्तत्वेन पूर्वेण वाध्यत्वायोगात्। उत्तं
हि, पूर्वं परमजातत्वादवाधित्वेव जायते। परस्था-

नुक्तत्वात् तदर्थस्य प्रागनुपस्थितत्वेनित यावत्। जायते स्वार्थवोधोप्रधायकतया सम्पद्यते। यनन्ययोत्पादादिति, यन्यया तदवाधेनोत्पादाभावात् विषयभेदविरहेन विरोधादयमभिप्रायः प्रयमतः यद्युद्गाता
विच्छिन्याददचिष्न यजीतित युत्या उद्गादिवच्छेदकालसामान्ये
यदचिष्यञ्चस्य कर्त्तव्यतायोधो जायते यनन्तरं यदि प्रतिहर्त्ता तदा
सर्वस्वदचिष्न युत्वावोधकाले क्रमेणोभयविच्छेदस्खले समुचयासम्भवयहेण पूर्वयुतिजन्यवोधे यप्रामाख्ययहो जायते यनन्तरं पुनःपूर्वयुत्यनुसन्धानेन उद्गाद्यमात्रविच्छेदे यदचिण्यागिकर्त्तव्यतावोधस्ततःपरयुत्या प्रतिहर्त्तृविच्छेदस्खलसामान्ये सर्वस्वदिच्णयागस्य कर्त्तव्यतावोधात् क्रमेणोभयविच्छेदे सर्वस्वदिच्णस्यैन कर्त्तव्यता तथा प्रयमोक्तद्व्यप्रतिनिधियुतिवाधेन परोक्तगौणकालकर्त्तव्यता तथा प्रयमोक्तद्व्यप्रतिनिधियुत्वावोधनात् मुख्यद्रव्यार्थं गौणकालप्रतीच्णमितिभावः।
चरमभाविभियरमाक्तयुतिप्राप्तिनिरपेचन्यायनिरपेच्चयुतिलव्येः। जीप्रक्रवं
ख्यपीत्पन्तवं पूर्वनिरपेचपरोत्पनस्य रजतज्ञानस्य स्रिक्तवायां रजतारोपस्य स्रिक्तवाज्ञानेन स्रिक्तवियसित्यवधारपेन तहनप्रवाधने रजतज्ञानाः

नन्धयोत्पादादुत्तवाधेन सस्भवद्गति। प्रक्रातिवदिति तथा चित्रकृती क्रिप्तोपकाराः कुणाः प्रथममितदेणेन विक्र-तावुषकाराका द्विण्यां प्राप्ताः कल्पप्रोपकारतथा चरमभावि-धिरिप गरेनिरपे वैर्वाध्यको तद्गदिति। अतएव शारी-रक्षभाष्यटीकायां वाचस्पतिमित्राः ज्येष्ठत्वञ्चानपे चितस्य वाध्यत्वे चेतु ने वाधकत्वे रजतन्त्रानस्य ज्यायसः श्राति-न्नानेन कनीयसा वाधदर्भनात् तदनपवाधने तद्पवा-धात्मनस्त्रस्रोत्पत्तेरनुत्पत्तेः। तथाच, पूर्व्यात्परवनी-यस्त्वं तव नाम प्रतीयतां। अन्योन्यनिरपेन्नाणां यव जन्मधियां भवेदिति। यदि च पूर्व्ववचनस्य पूर्वपन्नत्वे वैयर्थ्यं स्थादत्रस्थवचनार्थी विवच्चणीयौ तदा विषय-

नपवाधने रजतज्ञानिन श्रुक्तिज्ञानापवाधने इति श्रीषः तद्यवाध्यात्मनः रजतज्ञान प्रतिवध्यस्य तस्य श्रिक्तज्ञानस्य, मतीपसं हारक्षारिकामा ह, तथा च, पूर्व्वात् परवलीयस्वं पूर्व्वात्पन्नादुत्तरीत्पन्नस्य वलीयस्वं। स्वसतं वन्नमाह यदिचेत्यादि, पूर्व्ववचनस्य सुख्यकालम्पाश्वित्य गीणसप्यस्तिन साधनिमिति वचनस्य पूर्व्वपचले गीणेषु तेषु कालिध्विति वचनेन निरुक्त-सूत्रोक्तन्यायेन च वाध्यले ग्रुपमाण्येन काल्यितले इति यावत्। विषय-भेदेनिति, तयाहित्यादि, पश्च्याने पश्चीरमावे तत्स्वालीयाकं हुत्वे तदेवित संस्कारतत्त्वे विद्यतमिदं। उभयोपसं हारासामर्थ्ये सुख्यद्रस्य-सुख्यकालयोः समवायकरणासामर्थ्ये द्रव्यादरः। कर्वधीनत्वाभावादिति, तथाच स्वसाध्यस्येव विहितस्यानाद्रि दोषो नतु स्वासाध्यस्येतिभावः, ननु यदा सुख्यद्रव्यमिववानं तदामुख्यकालो मास्वित्यत ग्राह प्रजनीयलेति, द्रव्यद्वारा कर्याख्यनुष्ठिते सति कालस्य विश्वषण्यलं द्रव्याभावे कर्मानुष्ठानाभावात् तस्य विश्वषण्याभावात् द्रव्यापेत्तया च्यूनत्व-सिति भावः। सिद्दे कर्माख्युपसर्व्यन्तेन विश्वषण्यलेन उपस्थितत्वात् स्वरं नीयेति पाठे रोगादिना कालान्तरकाणे सुख्यकालपरित्यागस्याग्रस्थः

मेरेन व्यवस्थावनीयौ तथाहि धवाष्टकात्राहारौ कालान-राभावस्त्रच तत्कालानुरोधाहिहितद्रव्यालाभेऽि प्रति निहितद्रव्यमादाय मुख्यकालएव तत्करणं नतु वचनानुपात्तस्व च्छाकल्प्यगौग्यकालप्रतीह्यणं। तथाच छन्दोगपरिभिष्टं, स्थालीपाकं पशुस्थाने कुर्याद्यद्या-नुकल्पकं। त्रपयेत्तं सवत्साया स्तकस्था गोः पयस्य न्वित्यादि। यवान्दिकशाहादौ क्षणौकादस्यादिगौग्य-कालोऽस्ति तत्र मृताहादावद्वाद्यभावे तदनुरोधेन छपवासादिक्षपं प्रायस्त्रित्तं कृत्वा गौग्यकाले तत् कर्त्तव्यं तथाच लघुहारीतः, एकोहिष्टन्तु कर्त्तव्यं पाक्षेनेव सदा स्वयं। त्रभावे पाक्षपात्राणां तदहः समुपोषणं। तथा छन्दोग-परिणिष्टं, संस्कारा

परिहारादित्यर्थः। ननु तथापि कालस्य हेतुलात् कयं न तदादर इत्यत त्राह निभित्तलभावेणिति, साधारणनिमित्तलेनित्यर्थः विहरङ्गलात् पलहेतुभूतकर्मस्वरूपाघटकलात्, चकारात्परं नादर इति ग्रेषः द्रव्या-दर इत्यत्र हेतुमाह द्रव्यस्यित्यादि। ननु यागादिकर्मणः प्राधान्य-एव तिव्याहिकस्य प्राधान्यमित्यत ग्राह कर्मणः कारकलेन, साचात् सुख्यफलजनकलेन ग्रन्तरङ्गलात् प्राधान्यं यहा ननु कालस्यापि जन्यमात्रहेतुत्या कर्मानिर्वाहकत्यमस्तीत्यत ग्राह कर्मण इति व्रीहिभिर्जयेतित श्रुत्या कर्मणः करणत्यादित्यर्थः। ग्रन्तरङ्गलात् कर्मस्यरूपघटकत्वात् द्रीद्यादिकरणक्यागलेनैव पलहेतुत्वादितिभावः। ग्रन्तेदमवर्षयं। ग्रद्विणेन यजेतित श्रुत्यर्थवोधे ग्रप्रामाख्यज्ञानज्ञ-ननं पुनरुद्रात्यमात्रविच्छेदनिमित्तकादिचण्यागकर्त्यतावेधकरुपा-पिच्य लाघवात् प्रथमतो निरपेचादिचण्यागश्रुत्योद्रात्विच्छेदमामान्य-निमित्तकादिचण्यागकर्त्वयतावोधानन्तरं सर्वस्वदिचण्युत्या वोध-काले क्रमणोभयविच्छेदे समुच्यासन्थवग्रहेण केवलप्रतिहर्त्विच्छेद- श्विति थे तूम्मयमाद्धः। ननु प्रधान्दिक्षणां ये तूम्मयमाद्धः। ननु प्रधान्दिक्षणां ये तूम्मयमाद्धः। ननु प्रधान्दिक्षणां ये य्या गीणकालसत्ता तथा मुख्यकाले गीण द्रव्य-सत्तापि विद्यते का विनिगमना मुख्यद्रव्ययहणे द्रित चेदुच्यते यन तु विनिगमकावचनाभावस्तन यद्यपि क्रियायाः प्राधान्यात् कालोद्रव्यः हयमपि गुणभूतनेव तथायुभयोपसं हारासामर्थे। द्रव्यादरः कालस्य सूर्व्या-दिक्रियाघिटतस्य कर्नधीनत्वाभावाहर्ज्जनीयत्वसिद्धः अ-सिद्धिकाव्याद्विसित्तत्वमानेण वहिरङ्गत्वाच्। कालस्य निमत्तत्वं व्यक्तं भविष्ये। यतः कालं प्रवच्यामि निमत्तं व्यक्तं भविष्ये। यतः कालं प्रवच्यामि निमत्तं व्यक्तं भविष्ये। द्रव्यस्य तु यागसक्तपनिर्व्वाच् कत्वेनाभ्यहितत्वात् कर्मणः कारकत्वेनान्तरङ्गत्वाच्च।

निमित्तक सर्वे खदि चण्या गवीधक त्यन मतः पौर्वापीर्यं पूर्व दीर्व त्यमिति स्त्रोदा हरणं सामान्य विशेषाभ्यां श्वित हयं यत्रोक्षं तत्र पूर्व्योक्त सामान्य विशेषाभ्यां श्वित हयं यत्रोक्षं तत्र पूर्व्योक्त सामान्य विशेषः सङ्गोचकं यथा ब्राह्मणभ्या दिध दीयतां कौण्डिन गाय तक्र सित्रादि व्यक्त सिदं प्रकृतिविद्वित दृष्टान्ते न तथा हि प्रकृतिविद्विक्षिति रिति न्यायेन सामान्यतः प्रकृतिधर्मप्राप्ताा कुष्णा श्रिण प्राप्ता विशेष श्वत्याच तहाधक तया विक्रती यागे प्रशाविह्निता इति भवतु भवतु वोभयि वच्छेदे सर्वस्व दिण्य निष्क त्युक्तया श्राधिक्येनचाचरणं तथापि प्रकृतस्य सुद्ध मत्त्र प्रतिनिधिद्र श्रेण कार्यकरण्मिव श्रेयः नतु सुद्ध द्रश्वति गोणकालापिचणं गोणकाले तत्करणे प्रायिक्त श्वया सुद्ध मत्याले कार्याकरणे पापसुत्पयति नच गोणकाले तत्करणे प्रायिक स्वाप्त प्रवाद सुद्ध द्रवात्व सुद्ध मत्यान स्वाप्त प्रवाद सुद्ध द्रवात् रोधेन गोणकालापिचा क्रता कथित् गौर्वात् तथा यत्र सुद्ध द्रवात् रोधेन गोणकालापिचा क्रता कथित्वत् देवात् गोणकाले तदकरणे पापस्थितिरवस्थात् श्रत उक्तं वरमेका'हितः काले नाकाले लचकोटय इति, श्रः कार्यभयकर्त्तव्यं इत्यादिच। प्रथम

धुनादिप्रतिनिध्यभावे तु ब्रह्मवैवर्त्तः, उपवासासमधे-संदेकं विप्रनु भोजयेत्। तावहनानि वा द्याद्यइता-डिगुणं भवेत्। सहस्रसन्मितां देवीं जपेदा प्राणसंय-मान्। कुर्थोद्वादशसङ्गान् वा यथाशिक व्रतेनरः। देवीं गायवीं। कार्यपण्डराये, मक्यने सद-त्याने सत्यार्खेपरिवर्त्तने। फलस्लजलाहारी हदि णल्यं समार्पयेत्। अव यो ही चितः कश्चिहेणावी अति-तत्परः । निर्निसत्तमदीचायां नच च्ह्याधिवीडितः। अञ्चं वा यदि भुञ्जीत सृतां फलसवापि वा। अपराध-सहं तस्य न चमामि तु काध्यप। चिपामि नरके घोरी चुच्छल्यं सम जायते। निसित्तं प्रारखचान्द्रायणादि-ब्रतविभेषद्रति, दीचायां चसभेषप्राधनस्य विहितलाद-दीचायामिख्तां, चुद्याधिना पीड़ितः, सर्व्यमेतत् प्रद-र्भनमानं भन्तौ निर्विरोध इत्यर्धः। यज्ञादिकमप्पप-लचणिमिति जीमूतवाहनः। यत्र निमित्तं प्रारथचा-न्द्रायणादीति यदुत्तं, तत्र, चान्द्रायणादी भोजनस्या-वश्यकत्वाभावात्। किन्तु निमित्तं रविवाराद्य,पवास-

वचनमष्टकात्रां दिपरतया व्याख्यातमपि न सुन्दरं श्रष्टकादिश्रां वे गीणकालकल्पनायाः कुत्राप्यभावात्रमुख्यद्रव्यालाभेनेत्यनुरोधिलखना-सङ्गतेः, नच स्वकालादुत्तरोगीण इति सामान्यवचनवलादष्टकादेरिप गीणकालोऽस्तीतिवाच्यं स्ताहाविदिते तथिति वचनेन देये पितृणां श्राद्धित्वत्यनेन चाष्टकादे गीणकालिराकरणात्। यच्चीत्रं कालस्य निमित्तहेतुत्वेन दुर्वलत्वं तदप्यिकिच्चित्करं सुख्यकाले कार्यानुष्टानस्वेव सम्पूर्णकलं जनकत्वेन सुख्यकालसाङ्गकार्यानुष्टानयोस्तुत्वकचलात्, प्रतिनिधी फलहानेरावश्यकत्वेऽपि गीणकाले कर्माचरणे फलहयहाने।

पारणं जलपानक्षपं। दीचायासपि चक्तप्रामनं घ्राण-क्षपं, अन्यया, पुरोड़ाशोऽपि सीसीवा संपात हरि-वासरे। अभच्येण समः प्रोक्तः किं पुनशाशनिज्ञया, द्रित नारदीयं विकध्येत। घाणस्य चीभयक्षपतासाइ कालादर्शे श्रतिः, वित्रामान्नेयं तन्नेव प्राशितं नैवापा-शितञ्च सवतोति। पित्रासिख्पलत्त्वणं त्राकाङ्गयात्रवि-शिष्टलात्। तेनैकाद्रश्यां तदुभयच जलपारणं चक्-शिषघाणञ्ज विधायीयवासः कार्व्यः। त्रय चान्द्रायणादि-ग्रासपरिसंख्या। भोजनस्य रागप्राप्तत्वाद्वाप्राप्तप्रापकी-विधिः सचाहरहः सन्ध्यासुपासीतेत्वे वंद्धपः। नापि तज्ञन्गस्यावभ्यकत्वेन खायोगमाच्यवच्छेदफलकर्पो-नियमविधिः। सच तत्तियौ तत्तद्वासान् भुञ्जीतेवे-त्येवंरूपः। तथाच, श्रुत्या व्याद्यिमाणे तु यचावध्यं क्रिया क्वचित्। चोद्यते नियमः सोऽच ऋतावभिगमी-यथा। तथात्वे पितृमर्गादावपि भोजनं प्रसज्येत। हविष्यभोजनव्रतादावप्यपवासाभावश्रापद्येत । तज्ञचग-समकालमेवान्यभचगेऽपि न दोषः स्थात्। तस्यादगर्या

प्रायिश्वतस्य च यवणात् कालस्यप्राधान्याच, एकोहिष्टे पाकपाचाभावे यहीणकालादरणमुतं तत्पाकेमैव सदा स्वयमितिवचनपूर्वार्डेन पाकस्य नियमितवात्। यहा ग्रभावे पाकपाचाणामिति वहुवचनस्य गणार्थ-त्वेन ग्रामान्नादेरप्यभाव इति गस्यते इति प्रतिनिध्यामान्नादेः सम्भवे एकोहिष्टं मुख्यकाल एव कर्त्तव्यं सामान्यविशेषभावं विना श्रुति-विरोधे विषयभेदकत्यनया समाधानस्यासभवे श्रुत्योविरोधे न्यायस्तु वलवान् व्यवहारतः, इति वचनात्र्यायेन विरोधोवार्यः इति, पृत्तादि प्रतिनिधिनोपवासाचर्णे प्रधानस्योपवासस्य सिद्धः किन्तु तच स्वतन्त्र-

युतार्थस्य पित्यागादयुतार्थस्य कल्पनात्। प्राप्तस्य वाधादियं वं पितसंख्या विदोषिका, दू युक्तस्यार्थहान्य-न्यार्थकल्पनारागप्राप्तवाधकपदोषवयदृष्टायन्ययोगव्यवक्रे-दफालिका पितसंख्येव युक्ता। सा तु सित भोजने तक्त-कियो तक्तद्वासानेव भुञ्जीत नान्यदिखं वंक्ष्या। तस्या-स्तदितिक्तिभोजनाभावपरत्वेनोपवासेऽपि दोषाभावः। तथान्याच्य, यन्यार्थयूयमाणा च यान्यार्थप्रतिषिधिका। पितसंख्या तु सा द्वीया यथा प्रोचितभोजनं। यन्यथा, प्राजापस्यत्रते वाहमद्याद्याचितिसित्यन्कस्य यथाचित तु सध्याङ्के चतुर्विंयति भुद्ययद्वित ब्रह्मपुराणोक्तस्यायाचित-स्यालाभे वतलोपापत्तिः स्थात्। यथाचितन्तु स्वकीया-

कालविरहिण प्रयोजककर्त्रेव्यलेन च फलवच्चं खखोति, दानादानु-कल्पे च प्रधानस्थीपवासस्य अभावेन ततीऽपि न्यनफलिमिति प्रतिनिध्यभावेऽपौ त्युत्तं, व्रते व्रतिविषये व्रतप्रतिनिधितयेतियावत् एवं प्रागुता-हविश्वान मो जनादिकमध्यवयं दीचितोग्टहीतसन्त्रः, श्रदीचायां यज्ञावशेषदी वाराहिले, निमित्तमिलादिजीसूतवाहनमतं ग्रावश्यकला-भावादितिः तत्रभोजनविधेः परिसंख्यारूपत्वादितिभावः। यद्यपि व्रते-पञ्चगव्यपानादीनां कचित्शोधंकतयानिमित्तत्वमस्ति तथापि तत्पानस्य जलपानतुल्यतया नदोषः। स्रभच्येण इति वस्तृतो स्रवाप्यनादिभोजन' निषिद्धं जलपार्णमेव कर्त्तव्यिमितिनिमित्तान्तरमेवविवेचं अग्रनिक्रया-सामान्यद्रव्यभोजनं पित्रंग्र पित्रग्रेषद्रव्यं एतच नित्यापवासदिनमधि-क्वत्य वोध्यं जलपारणं रविवाराद्युपवासपारणदिनाभिप्रायकं पानस्याप्यशितत्वमनशितत्वच्चात्रं चक्घाणं दीचाभिप्रायकमिदस्पलचणं व्याबशेषभोजनस्थले तच्छेत्रवाणंबोध्यं केचित् दोचितइति नाइदी वायाचा निर्निमित्तं यदिशुचीत इत्यन्वयेन ग्रदी चितस्य।पि निषेध-द्रत्याहुः चान्द्रायणादिवचान्द्रायणादिव्रतस्थानीयग्रासभोजनपरिसंख्या-

नुइयोगेन पराइतंवस्त । तथाच यतिधर्सो उपनाः, भिचायनमनुद्योगात् प्राक् केनाप्यनिमन्तितं। अया-चितन्तु तहैच्यं भोक्तव्यं मन्दवतीत्। याज्ञवल्काः, त्रयाचिताइतंग्राह्यस्पिद्द्यत्तवस्यः। अन्यवकुलटा-षग्डपतितेभ्यस्तया डिष:। एतेन तदानीमयाचितत्वेन गर्हे स्थितसव्ययाचितिसति निरस्तं। प्राजापत्ये परि-संखां व्यत्तीकरीति गीतमः, अधापरंचाहं न कथञ्चन याचेतीत। तथा प्रायश्चित्तविवेक्षक्ष ज्ञिर्वादिजातप्राणि-वधे मन्त्राष्ट्रतप्रायनस्य प्रायसिक्तकपत्वात् भवानुगमन-निमित्तद्व धरीरशुविहितुक्षपत्वाभावाद्वान्तरनिवृत्तिर-वसीयतद्ति वद्धिः सर्जन प्रायस्त्रिते परिसंख्योता। दुर्गसिंहोऽपि यथाहभोजीत्यस्य सित भोजनेऽयाहसेवभुङ्ते नत्याहभित्यर्थः। नत्ययाहं भुङ्क्तएवेति नियसस्तयात्वे यहाऽच्चाखभावाङ्याइं न सुङ्क्ते तदा ब्रतलीप:स्यात् यया सानं मया कर्त्र व्यमेविति नियमे सत्यसानात् वतभङ्ग इत्याह । भय पारविनयस:। यदाप्यच चान्द्रायवा-दिवत् परिसंख्यासक्षवल्वणापि पार तीर क्षिसमाप्तावि-त्यसाचातीकत्पद्यः पारणभव्दीयद्यपि समाप्तिमाचमभि-धातुं समर्थस्त्यायुपवाससमापकभोजनएव लोकशा-ख्योः प्रयोगात् पङ्कजादिशन्दवत् प्रयोगाधीनयौगिकस्त-स्मादुपवासवतस्य चर्माङ्गं भोजनमभिधत्ते पारगणव्दः। तथाच देवलः, उपवासिषु सर्वेषु पृथ्वीच्ची पारणं अवत्। व्रत्। इत्यसादितद्गणपितिपारधातीचत्पत्तः कर्त्तत्युटासिद्धः प्रयोगाधीनः धोणिकः सामान्यशब्दस्य विश्वषपरतायाः सर्व्यसिद्धत्वेन निरूद्वाच्याः

2052

व्यन्यया तु फलस्याईं धर्मानेवी पसर्वति । धर्मीयमः । किञ्च यदि पारणसङ्गं न स्यात्तदा प्रतिनिधिविधानं नोपपद्येत, तदाह सएव। सङ्गर्ट विषमे प्राप्ते हाद्य्यां पारयेत् वायं। चिह्निस्तु पारणं कुर्यात् पुनर्नतां न दोषक्तत्। पारगन्तु भवेत् कयमिति वर्षक्तव्ये पाठः। नक्तं चयोदशीनक्तभोजनव्रतमिति। अव्भचगस्याशि-तानिशतिलेन श्रुताविभिधानात्तदुभयव्रतिसिंहः। यथा, या वीवे सर्व्य रसासासाम भनेना शितो उनशितय भन-तीति। एवञ्च, जलस्यापि नरश्रेष्ठ भोजनाङ्गेषजाहते। निखित्रिया निवर्त्तेत सह नैसित्तिकै: सदा, कालिकोपुराणीयं रागप्राप्तपरं। चतएवादिलपुराणे, पारणान्तं व्रतं च्चीयं व्रतान्ती दिजभीजनं। असमा-माप्ते बते पूर्वे नैव कुट्याइतान्तरं। इत्यञ्च उपवास-व्रते पारणनियमात् जलेन पारणं विधाय तद्दिने उपवा-सादिः कार्यः। अय भैमी, विषाधसीत्तरे, सग-शीर्वे शश्धरे माचे मासि प्रजापते। एकादश्यां सितेपचे सोपवासी जितेन्द्रियः। हाद्यां

कोयोगरूढोवा। पारणस्य नियमिताङ्गत्वे प्रमाणमाह तयाचेति, सङ्गटे त्रयोदशीत्रतादिप्राप्तनिवन्धनसङ्गटे। एवञ्च त्रताङ्ग्जलपाने अनिश्तत्वेन च भेषजाहते भेषजरूपजलपानादिकं विना निष्टत्तिर करणं नावसीदतीति कत्यतत्त्वाण्वे तिथितत्त्वेच सक्नुषट्तिलीभूत्वा सर्व्वपापः प्रमुच्यते निश्चहर्ष सहस्राणि स्वर्गलोक्षेमहीयते इति, स्रगशीर्ष श्रम्थर इति फलविश्वाय न भीमितिथिघटकं हादश्यामित्येकादस्युप- ज्ञचकं एकादशीं माघश्रक्षेकादशीं क्रत्यतत्त्वाण्वे विष्णुरहस्यं। माधि मासि सितेपचे एकादस्युपवासकृत्। हादश्वादशीभक्तत्यागस्य फल

तिलाचारं क्रवापापात् प्रस्चाते। तिलक्षायी तिलो-दर्शी तिलहोमी तिलोदकी। तिलस्य दाता भीका च षट्तिली नावसीद्ति। मत्साप्राणे, यदाष्टम्यां चतुर्देश्यां दाद्रश्यामय भारत। अन्येष्विप दिनर्देषु न शक्तस्त्वस्वीषित्ं। ततः पुखासिसां भीसतिथिं पाप-प्रणाशिनीं। उपोध्य विधिनानेन गच्छे दिख्योः परं पदं। भीमतिथिं भैमीत्वेन खातामेकादशीं। अय पार्चती-महोत्सवोत्तरैकाद्रश्य पवासः। आखिनशुक्रपचमधिकत्य कल्पतरी ब्रह्मपुरागं, उपवासश्च कर्त्तव्यएकादश्यां प्रजागरः। दाद्थां वासुदेवस प्रजितव्यस सर्चदा। श्रय श्यनाहिकालः। भविष्यनारहीययोः। मैत्राद्य-पादे खिपतीह विषावेषात्रमध्ये परिवर्त्तते च। पौषाा-वसाने च सुरारिहन्ता प्रवध्यते सासचतुष्टयेन । सैच-मन्राधा, वैषाव्यं श्रवणा, पौषां देवती । भविष्ये, निश-खापीदिवीत्यानं सन्ध्यायां परिवर्त्तनं। अन्यव पाद-योगे तु दाद्यामेव कारयेत्। एवञ्च पादयोगप्राप्ती फलाति गयः। ति दिधानं वामनपुरागो, एकाद्यां जगत्खामिणयनं परिकल्पयेत्। शिषाहिभोगपर्योद्धाः क्रता संपूज्य केशवं। अनुजां वाह्मणेभ्यस दाद्यां प्रयतः श्रुचिः । लञ्जा पीताब्वरधरं देवं निद्रां समा-नयेत्। अनुज्ञां लब्बे त्यन्ययः। एकादशीसमये दिवा

मशुते। यद्यपि सामान्यत एव एकादश्युपवासस्य जागरणस्य हादश्यां हिरपूजनस्य च नित्यत्वमिभिहितं तथाप्याश्विनश्रक्षपचे विश्वेषाभिधानं प्रतिनिध्याचरणनिवारणाय द्रतिवोधंर, वैणाव्यमधेर श्रवणमधरपादहये

भयनीयपरिकल्पनं राजी हादगीचि निद्रेति। विषा-धक्योत्तरे, खास्तीर्णगयनं क्रत्वा प्रीणयेद्वोगगायिनं। आषादश्वक्रहादश्यां विष्णुलोके महीयते। खास्तीर्ण-भयनं शोभनास्तरणयुक्तखट्वादि। वराहपुराणेऽपि श्रीभगवानुवाच, अन्यत्तु संप्रवच्यामि कक्षे संसार-मोचनं। कदस्वः कूटजश्चेव धवकोऽर्जुनकस्त्रया। एभिरभ्यर्चनं कुर्य्याहिधिदृष्टेन कक्षेणा। ततः संस्था-पनं क्रत्वा मम मन्त्रविधिः स्पृतः। नमोनारायणेयु क्वा इमं मन्त्रसृदीरयेत्। मेघान्यपि मेघग्यामं ह्युपा-गतं सिच्यमानां महीमिमां निद्रां भगवान् ग्रह्मातु लोकनाय वर्षास्त्रिमं प्रयतु मेघतन्दं। ज्ञात्वा च प्रयोव च देवनाय मासां श्रतुरोवेकुण्यस्य तु पश्य नाय। श्राषादश्वक्रहादश्यां सर्व्यशान्तिकरं भिवं। य एतेन विधानन भूमि से कक्षे कारयेत्। स पुमान्न प्रणश्चेत्तु,

अखव खापादिविहितनिशादिभित्रकाले दशमी प्रतिपदीय। मेघानि मेघाः क्लीवलं छान्दसं मेघस्याममिति लामितिशेषः। सिच्यमान् नामिमां महीं हि उपामगतिमत्यन्वयः, इमं निस्तिंशितं भवन्तं चलाहि चतुरः शिवं मोच्चदं प्रणस्थेत पतेत् सितेऽहिनि श्रक्लपचे आराधनाय सन्तोषाय अभिनूयमानः स्तूयमानः। ऋषिः सर्वचः ऋषे द्वीनार्थन् लात् विषयविशेषानिर्देशात् विनिगमनारिवर्दन ज्ञानस्य सर्वविषयकर्त्वं सभ्यते, वन्दितैरनिन्दितैर्वन्दनीयः। सेत्र अवणरेवतीनां क्रमेणादिः मधान् वसानेषु पादेषु प्रस्तापावर्त्तवोधनिमत्यन्वयः, श्रावर्त्तः पार्श्वपरिवर्तः प्राप्तान् विति निशादी नच्चत्रप्रप्तावित्यर्थः, ऋचामंयोग इतिनच्चताणामसम्भवे एकादस्यादिपञ्चतिथिषुनच्चताणा समभवे द्वादस्यां सन्धिसस्ये तत्वच सायं सन्ध्यासस्ये श्रयनावर्त्तने प्रातःसन्ध्यासस्ये उष्टानिमिति श्रेषः, संसारिषु युगे युगे। ययने कुटजिवधाना दिष्णुधि सीचरीय निषेधी उन्य । धवकः कि पित्यः। संस्थापनं
यायां। सूमि द्रित पृथित्याः संस्थापनं। एवसुक्तेन सन्तेण हिष्णं सुष्यापयेत्ततः। सुप्ते त्विय
जगन्नाय जगत्सुप्तं भवेदिदं। विवुद्धे त्विय वुद्धे तत्विम् वे चराचरं। इति सन्तेण पृजयेत्। प्राप्ते
भाद्रपदे सासि एकाद्यां सिते उन्हि। कटदानं भवेदिष्णी में चापूजा प्रवर्त्तते कटदानं पार्श्वपरिवर्त्तः।
वासक्षीय निवस्ते। एवं संपूज्य विधिव द्वादस्य द्वादयादिने। सन्तेणानेन देवेशं पार्श्वन परिवर्त्तयत्।
वासुदेव जगन्नाय प्राप्तेयं द्वाद्यी तव। पार्श्वन परिवर्त्तस्य सुखं स्विपित्त माधव। त्विय सुप्ते जगन्नाये
जगत् सुप्तं भवेदिदं। विद्युद्धे त्विय वुद्धे त जगदेतचराचरं। ब्रह्मपुराणे, एकाद्यान्तु युक्तायां कार्त्तिके
मासि कीयवं। प्रसुप्तं वोधयेद्वाची यद्धासित्तसमिन्वतः।

तियन्तरे पादयोगे यदिभिहितं तस्य प्रमाणमाह किं तस्वैत्राद्यपादेनित हगस्या यंशोयतपादे तेन यः पादोदिवाप्राप्त स्तेन वा किसित्यर्थः। सचासौ सेत्राद्यपादयेति समासे दग्रस्यंग्रेनइत्रात्त यत्पदाभावात् तेनान्वये तत् पदार्थानन्वयात्। परन्तु तत् पदमव्ययं जुञ्चतीयान्तं तथाच दग्रस्यंग्रेन सेत्राद्यपादेन योदिवा तेन सेत्राद्यपादेन यश्वप्रतिपदि तेनच सेत्राद्यपादेन किं इत्यर्थः, तथा दग्रस्यंग्रेन पौष्णग्रेषिण प्रतिपदि निध्य यश्च तेन पौष्णग्रेषिण किसित्यर्थः। यर्थश्वत्यार्थे उभयत्र दग्रमी प्रतिपदोव्यं जेनादुभयत्रेव तिथिपञ्चक्रमनुस्रतिसत्यस्य लाभः न च पौर्णम्सास्यां प्रतिपदि चतुईस्थाञ्च कदाचिदिपपौष्णग्रेषस्थ्यवीनस्वति एवं चतुईस्थां न सेत्राद्यपादस्थवद्यतिकथंदग्रमीप्रतिपदो वंर्ज्जनं अप्राप्ति

राची प्रसुप्तमित्यन्वयः वोधनन्तु हिवैव । वाराहे, कौसुदस्य तु सासस्य या सिता दादशी भवेत्। चर्च येद्यस्तु मां त्र तस्य पुरायमलं मृगु। यावतीकाहि वर्त्त यावत् लश्चेव साधवि। सङ्ज्ञोजायते तावद्व्यसक्तोनजायते। कौमुद्स्य कार्त्तिकस्य । साधवीति पृथिव्याः संबोधनं । क्तत्वा वै सस कक्षाणि दाद्ण्यां सत्परीनरः। समैववी-धनार्थाय द्रमं मन्त्रमुदीरयत्। महेन्द्रकद्वैरिभन्यमानी-भवान्द्रिष्ट्रितवन्द्रनीयः। प्राप्ता तवेयं किल कीमु-दाख्या जाग्रव्य जाग्रव्य च लोकनाय। मेघागतानिर्माल-पुर्णचन्द्रः भारदापुषाणि च लोकानाथ । यह दहानीति च पुग्यहेतो जाग्रव जाग्रव च लोजनाय। एवं कसीणि कुर्वी-रन् हाद्यां ये यशस्ति । मम भक्तानरश्रेष्ठास्ते यानित परमां गति'। अब मन्बदयपाठानन्तरं, उत्तिष्ठीतिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते। त्वया चोत्यीयमानेन उत्यितं भुवनचयं, इति सम्प्रदायागतस्तृतीयश्लोकदति वाचस्पतिमित्राः। शयनीत्वानमन्त्रास्तु कल्पतस्प्रस्रति ग्रन्थसंवादाल्लिखिताः। तदेवमेकादःयां दादभ्यां वा

योग्यस्य निषेधासकात् तथापि दश्मीप्रतिपदीर्वर्ज्जने न तात्पर्यं तिथिपञ्चते तथासकार्वं विधी तात्पर्यात्। अत्रेदसवधेयं द्वादशी चक्रपाणिन दित पद्मपुराणीयवचने विश्वातिथित्वेन द्वादश्यां श्रयना-दिकमुक्तमिति द्वादश्यामेव श्रयनादिकं एकादश्यामुत्यानं ब्रह्मपुराणे यदुक्तं तदेकादशीयुक्तद्वादश्यभिप्रायेण। अत्रपव दिवा एकादशीसमये श्रय्यानिसीणं रात्री द्वादशीचणे प्रस्वापनमुक्तं वराहपुराणे द्वादश्यामुन्त्यानस्थोक्तत्वाच सर्व्यत मन्त्रवाक्येऽपि द्वादश्यापव ग्रहणादिप तथा वाचं यसस्यती-यदाषादीपदमुक्तं तदेकादशीमारभ्य पौर्णमासीपर्यन्तं

रेवत्यन्तपादयीगवशाहिवोत्यानं नच चयोगाभावे तुं हाइ-प्यामेव कारयेदिति गुक्चरणाः। जीमृतवाहनस्त भविष्ये। आभाकासितपचेषु सैत्रप्रवण्यिती। आदि-मध्यावसानेषु प्रस्वापावर्त्तवोधनं। त्राभाकासितपचेषु आषाढ्भाद्रकार्त्तिक मुक्तपचेषु एषाञ्च दाद्र प्राप्ती मुख्यः कल्पः। अविष्यपुराणं। निश्चि खापोदिवीत्यानं सम्बायां परिवर्त्तनं। अन्यच पादयोगे तु दादश्यामेव कारयेत्। विषा्धसीत्तरे। विषा्दिवा न खिपिति नच राजी प्रवृध्यते। हादश्यामृ संयोगे पादयोगीन कारणं। अप्राप्ते हादशीस्त्रे उत्थानशयने हरे:। पादयोगेन कर्त्तव्ये नाहोराचं विचिन्तयेत्। वचनान्तरं, रेवत्य-न्तोयदा राची दाद्या च समन्वितः। तदा विव्धाते विषाुर्दिनान्ते प्राप्य रेवतीं। दिनान्ते चिधाविभक्तदिन-हतीयभागे दिवीत्यानिसत्यनुरोधात्। रात्री विवीधोवि-निहन्ति पौरान्। खापोदिवा राष्ट्रकुलं न्यभर्तुः। सन्ध्रा-दये खल्पफला धरिनी अवेत्रराणामपि रोगदुःखं। वराह-पुराणे, दाद्यां सन्धिसमये नचवाणामसभवे। श्राभा-

निद्राप्रवोधनयोः काल इति ज्ञापनार्थं तेन दिनपञ्चपूजाभिधानमन्धत्रापि सङ्गच्छते तत्रैकादश्यां श्रय्यानिर्माणकालः हादश्यां प्रस्तापनं
प्रागुक्तमन्त्राणां पाठस्तु तत्रैव त्रयोदश्यादिदिनत्रये सामान्यतः पूजापौर्णमासौकालेन क्रमेण निद्राग्रहणं प्रवोधाऽपि तथिति हरिनाथापाधायं प्रस्तयः। वस्तुतस्तु एकादश्यादिपञ्चतिथिषु निद्राप्रवोधकालत्वं
कापि मुनिवाक्येऽश्ववणात् हादस्यामेव श्रयनोत्थानविधानात् उत्थानस्य
च निद्रितस्थायोगाचेदं मतं न युक्तं परन्तु श्राषादृस्थेयमाषादृष्टि
कार्त्तिकस्थेयं कार्त्तिकौति व्युत्पत्था श्राषादृश्वातिकौपदे हादश्री-

कासितपचेषु शयनावत्त नादिक'। तदेव' शयनादी कालचतुष्टयं हाद्यां निशादी नचनमानयोगः। तद्भावे निशाद्यनाद्रेग तिथ्यन्तरे पाद्योगः। तस्याप्यभावे हाद्थ्यां सन्ध्रायां नचनमावयोगः। तस्राप्यभावे हाद्थ्यां सन्ध्यायासेवेति, वोधनन्तु द्वाद्थ्यां रात्नी रेवत्यन्तपाद्योगे दिनहतीयभागे दति विशेष:। विश्वाधमीतिरे, किं तन्भै चाद्यपादेन दशस्यं श्रेन योदिवा। पौषाशिषण किन्तेन प्रतिपद्यय योनिशि। इति दशमीप्रतिपदी-र्निषिधादेकाद्यादिपीर्णमासानानां तियीनामभानुज्ञानं युद्धपुरागे, सर्व्यदेवशयनादिकमुक्तं यथा, प्रतिपद्धन-दस्योक्ता पविचारोपणे तिथि:। श्रियादेव्यादितीया तु तिथीनामुत्तमा स्मृता। हतीया तु भवान्यास वतुर्यो तत्सुतस्य च। पञ्चमी सोमराजसा षष्ठी प्रोक्ता गुइस्य च। सप्तमी भास्करस्थाका दुर्गायाया-ष्टमी स्मृता । मातृणां नवमी प्राक्ता दशमी वासुकेस्तथा । एकाद्गी ऋषीगान्तु दाद्गी चक्रपाणिनः। चक्रपाणिन दूति पणव्यवहारद्रत्यसाद्यातोः। नयोदशौ त्वनङ्गस्य

परे न चैतादृश्च्युत्पत्था प्रतिपदादिग्रहणसभावात् तन्माचवरतः न सभावति विशेष्यवाचनपदासमिभिच्याहृताषादादिपदस्य धौर्णमास्थान्मव प्रयोगः साधुरिति वाच्यं प्रागुक्तवचनैननवान्धतया आषादृगं संविश्मिद्यत्र निद्रां त्युजति नान्तिन्धामित्यच हाद्ध्यामेव, सन्धानाने हाद्ध्यभावे निशाद्यादरेण हाद्ध्यां श्यनादिनं। किन्तन्भैचाद्यपादेति वचने दश्मीपद्पतिपत्पदे हादश्मीभिद्यपरे मतान्तरेऽपि तयोर्थयान्युतार्थासङ्गतेः। तन्मते चतुर्दशीपीर्णमास्योः सैचाद्यपाद पौष्णशेष-पादयोरसभावेन एकादश्यादिपञ्चनानुमतत्वासभावाञ्चेति, सम ब्रह्मणः,

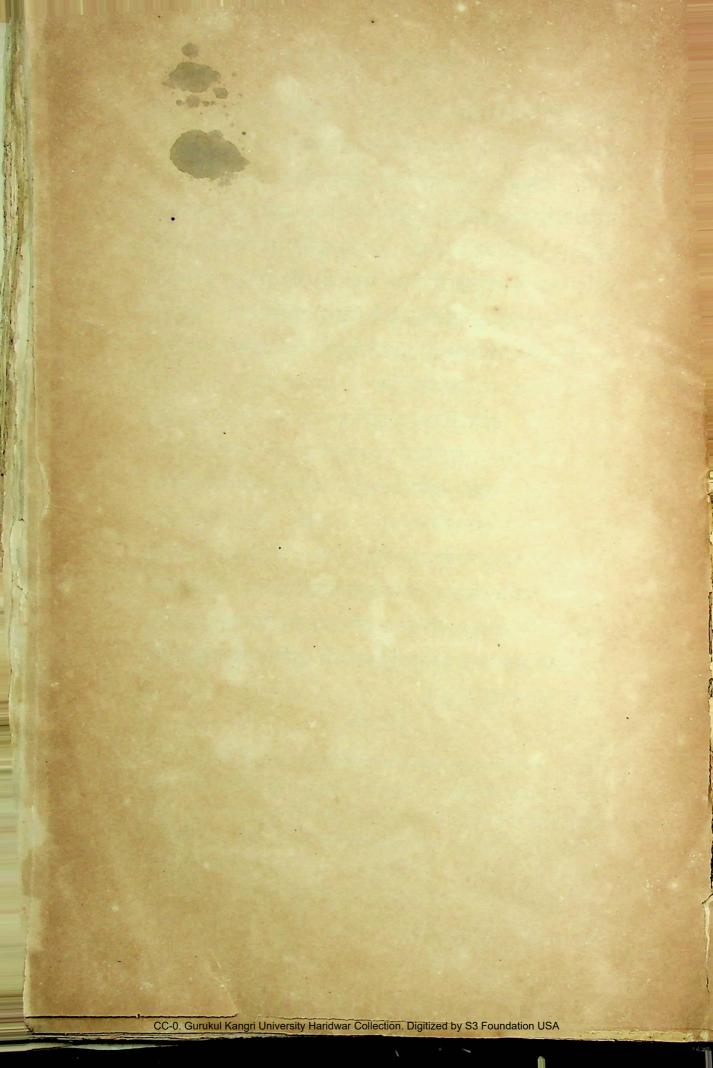
शिवस्रोत्ता चतुईशी। मम चैव मुनिशेष्ठ पौर्णमासी तिथि: स्मृता। यसा यसा तु देवसा यज्ञच वं तिथिश्व तसा देवसा तिसंख शयनावर्त्तनादिकः। हरिशयनादावाषाढ़ादिविधानात्तत्साहचर्यादन्येषासपि ज्योतिष ऽपि, व्रजति यदा मियुनं विहाय कर्कं त्यक्ता राजविवर्जितां तिथिं सूर्यः। भवति तदा नियतं दिराषादः सुरगयविधिर्दितीये सासि। राज्ञा चन्द्रेण विवर्जितां अमावस्रां। पूर्वकृष्णपचे मिथुने संक्रान्ते दूति श्रेष:। हरिनायोपाध्यायास्तु चीराश्री भेषपर्यक्षे याषाद्रां सम्बिभेहरिः। निद्रां त्यजित कार्त्तिक्यां तयोक्तं पूजयेत् सदा। ब्रह्महत्यासमं पापं चिप्रमेव व्यपोहति। हिंसात्मकैय किं तस्य यत्तैः कार्थ्यं महात्मनः। प्रखापे च प्रवोधेच प्रजि-तोयेन केशवः।. आषादशक्तीकादशीमारभ्य पीर्णमा-सीपर्यन्तं विष्णोनिद्राग्रहणक्षपश्यनसमयः। वैकाद्र्या गयनमभिधाय तदादिदिनपञ्चकी काकी-कथनं ब्रह्मपुरागो। वराहपुरागीये तु एकादशीका-

लीनसन्ते निद्राग्रहणाभिधान'। यमस्मृती पौर्णमास्मा गयनाभिधानं जाषादीपदस्यानुपाधस्त वैवं प्रवृत्तेः एवज्ज ब्रह्मपुरागा यदायेकाद्रध्या प्रवीधनम्तां तथापि तदादिदिनपञ्चकमेव प्वीधसमयः। तेन वराहपुराणे हादश्यां पुवीधाभिधानं। यसस्मृती कार्त्तिकां प्रवी-धासिधानं समञ्जसमिति एवमेव श्रीदत्तीपाध्यायाः। कल्पतकक्षतस्तु एकादश्यामेव शयनं प्वीधश्य। तावाषाठीकार्त्तिकीपदमेकादशीपरं आषादसीयं कार्त्त-कसेप्रयमिति व्यत्पत्ता न तत्पृत्ययानुपपत्तः अप-वादविषये क्वचिदुत्सर्गपृष्ठत्तेरित्यात्तः। श्रीभगवद्याक्यं, मच्छयने मदुत्याने मत्पार्श्वपरिवर्त्तने। फलमूलजला-हारी हृदि शल्यं ममार्पयेत्। फलाहारपदमशनगभं तेन सर्व्या अनशनपरतं। अत्र मलमासादिक्तत विशेषोमलिम्ब्चतत्त्वेऽनुसन्धेयः ॥ ॥ विक्वं गुक्वाक्यसा यद् साषितं सया। तत् चन्तव्यं वुधैरेव स्मृतितत्त्व-वुभृत्सया ॥ * ॥ दूतिवन्द्राघटीयशी हरिहरभद्दाचार्या-त्मजशीरघुनन्दनभद्दाचार्थ्यविरचिते स्मृतितत्त्वे एकादशी-तत्त्वं समाप्तम्॥ *॥

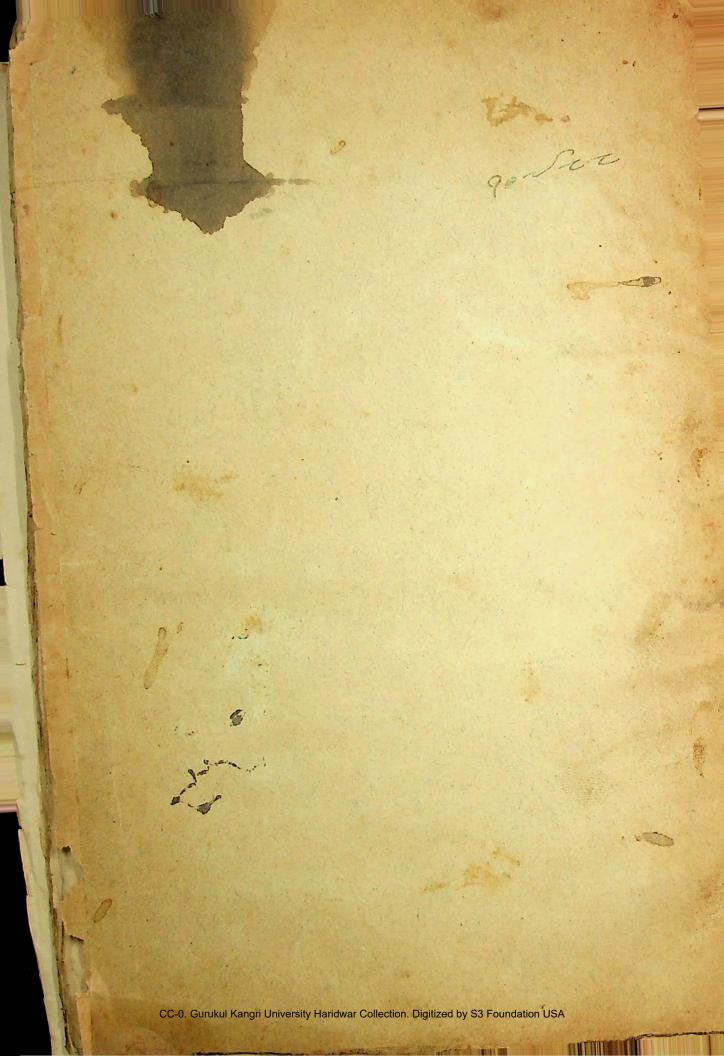
सम्पूर्णम्।

मोहन गोखामिमहाचार्य्यविरचितेकादशीतत्विटिएपनी संपूर्णा। शकः १७५० शाक्ते व्योमसुतादि-चन्द्रपरिमे शक्षं मुद्धः संस्मरन्। भाद्रे सूर्य्यजवासरेकतितथी पर्वच कृष्णेतरे। राधामोहन श्रमणः कृतिमिमां टीकां मुदैकादशीतत्वस्थेव धरामरोहिरिहरो यहाद ब्रक्तेस्वीत्र्यं।

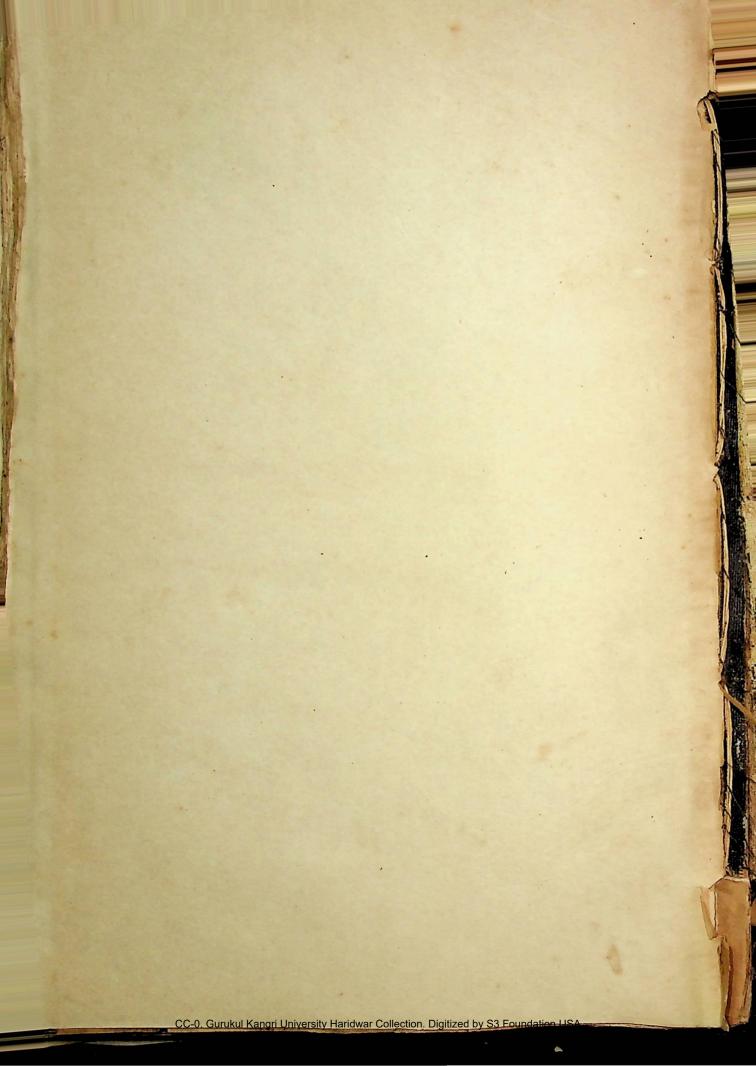
सम्पूर्णम्।



















63026 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,

पुस्तक लौटाने की तिथि ग्रन्त में ग्रिङ्कित है। इस तिथि को पुस्तक न लौटाने पर 🕏 देख नये पैसे प्रति पुस्तक श्रतिरिक्त दिनों का ग्रर्थदण्ड लगेगा।

1343.00008

Entered in Ograbase CC-0. Gurukul Kangri University Hariawar Collection. Digitized by S3 Foundation USA



